# बैंकिंग चिंतन-अनुचिंतन

बैंकिंग पर व्यावसायिक जर्नल


● वर्ष 22 ● अंक 1 ● अक्तूबर-दिसंबर 2009

# विश्वव्यापी आर्थिक संकट विशेषांक

सदस्य
ABCI
Member

# बैंकिंग चिंतन-अनुचिंतन

## विषय सूची


| | | |
|---|---|---|
| **संपादक मंडल** | | 1 |
| **संपादकीय** | | 2 |
| **साक्षात्कार** | | 4 |
| **परिक्रमा** | | 8 |
| • आर्थिक मंदी-विवेचनात्मक परिचय | डॉ. रमाकांत शर्मा | 9 |
| • मंदी के सामाजिक-आर्थिक प्रभाव | डॉ. सुरेश कुमार | 16 |
| • आर्थिक मंदी बनाम आर्थिक पुनर्संरचना | श्याम लाल गौड | 22 |
| • विश्वव्यापी आर्थिक संकट का सकारात्मक पक्ष | काज़ी मुहम्मद ईसा | 27 |
| • विश्वव्यापी आर्थिक संकट बनाम सैद्धांतिक असफलता | डॉ. रामप्रकाश सिंहल | 37 |
| • विश्वव्यापी आर्थिक संकट - आकलनों की चूक | डॉ. नरेन्द्र पाल सिंह | 42 |
| • मुक्त बाजार और आर्थिक मंदी | सुशील कृष्ण गोरे | 45 |
| • अत्यधिक दोहन से आता है आर्थिक संकट | विनय बंसल | 52 |
| • अब तक की आर्थिक मंदियां और उभरता विश्व | डॉ. राजीव कुमार सिन्हा | 62 |
| • सब प्राइम संकट और भारतीय परिदृश्य | संतोष श्रीवास्तव | 70 |
| • विश्वव्यापी आर्थिक संकट का मनोविज्ञान | कुमार परिमलेन्दु सिन्हा | 73 |
| • भारत–वैश्विक वित्तीय संकट के प्रभाव का प्रबंधन | डॉ. डी. वी. सुब्बाराव | 85 |
| • वैश्विक वित्तीय संकट : कारण और उसकी गतिमानता एवं भारत पर प्रभाव | सी. सी. मित्रा | 91 |
| • विश्वव्यापी आर्थिक संकट : भारत के परिप्रेक्ष्य में | विजय प्रकाश श्रीवास्तव | 99 |
| • अंतरराष्ट्रीय आर्थिक मंदी का भारत पर असर | निधि चौधरी | 104 |
| • विश्वव्यापी आर्थिक मन्दी और भारतीय बीमा उद्योग | डॉ. सुबोध कुमार | 110 |
| **अनुचिंतन** | | 116 |
| **लेखकों से/पाठकों से** | | 118 |

# संपादक-मंडल


## सदस्य

**डॉ. शरद कुमार**
निदेशक, सांख्यिकी और प्रबंध सूचना विभाग
भारतीय रिज़र्व बैंक, मुंबई

**के. सी. मिश्रा**
महाप्रबंधक
कृषि बैंकिंग महाविद्यालय, पुणे

**डॉ. रमाकान्त शर्मा**
महाप्रबंधक
भारतीय रिज़र्व बैंक, मुंबई

**डॉ. सुरेश कुमार**
उप महाप्रबंधक (राजभाषा)
भारतीय स्टेट बैंक, मुंबई

**प्रभुता व्यास**
वरिष्ठ उपाध्यक्ष
भारतीय बैंक संघ, मुंबई

**डॉ. गजेंद्र कुमार**
सहायक महाप्रबंधक (राजभाषा)
इलाहाबाद बैंक, कोलकाता

**उमाकांत स्वामी**
सहायक महाप्रबंधक (राजभाषा)
बैंक ऑफ बड़ौदा, मुंबई

## प्रबंध संपादक

**सुश्री रूपम मिश्र**
प्रभारी महाप्रबंधक (राजभाषा)
भारतीय रिज़र्व बैंक, मुंबई

## कार्यकारी संपादक

**पुष्प कुमार शर्मा**
उप महाप्रबंधक
भारतीय रिज़र्व बैंक, मुंबई

## सदस्य सचिव

**के.सी. मालपानी**
प्रबंधक (राजभाषा)



**भारतीय रिज़र्व बैंक**
राजभाषा विभाग
केंद्रीय कार्यालय, गारमेंट हाउस
वरली, मुंबई 400 018



इस पत्रिका में प्रकाशित लेखों में दिये गये विचार संबंधित लेखकों के हैं। यह आवश्यक नहीं है कि भारतीय रिज़र्व बैंक उन विचारों से सहमत हो। इसमें प्रकाशित सामग्री को उद्धृत करने पर भारतीय रिज़र्व बैंक को कोई आपत्ति नहीं है बशर्ते स्रोत का उल्लेख किया गया हो।



सुश्री रूपम मिश्र द्वारा भारतीय रिज़र्व बैंक, राजभाषा विभाग, गारमेंट हाउस, वरली, मुंबई 400 018 के लिए संपादित और प्रकाशित तथा मौज प्रिंटिंग ब्यूरो, मुंबई 400 004 में मुद्रित।

इंटरनेट http://www.rbi.org.in/hindi पर भी उपलब्ध। E-mail : rajbhashaco@rbi.org.in फोन 2498 2076 फैक्स 2498 2077

**मुखपृष्ठ : सुधाकर वरवडेकर**

# संपादकीय

प्रिय पाठको

निगुर्णस्य हतं रूपं दु:शीलस्य हतं कुलम्
असिद्धस्य हता विद्या, अभोगेन हतं धनम्

**-चाणक्य नीति**

अर्थात् गुणहीन मानव की सुंदरता व्यर्थ ही होती है, और यदि शील नहीं है तो कुल को निन्दा का भागी होना पड़ता है, बुद्धि रहित विद्या व्यर्थ होती है और धन को न भोगने या केवल जोड़ते ही रहने से धन व्यर्थ हो जाता है।

चाणक्य नीति के ये शब्द एक ऐसा संकेत देते हैं कि धन का संग्रह सिर्फ धन को ही व्यर्थ नहीं करता बल्कि पूरी प्रणाली को ध्वस्त कर देता है क्योंकि उसकी जड़ में होता है मनुष्य का लालच। धन एक ऐसा आकर्षण है जो पहले चरण में मनुष्य को सक्रिय बनाता है फिर उसमें कर्मठता पैदा करता है और फिर अगले चरण में लालसा का बीजारोपण करता है और फिर धीरे-धीरे यह लालसा लालच में बदल जाती है। वस्तुत: कर्मठता और लालसा जीवन स्तर को उठाने का एक आधार होती हैं। परंतु जब यह अति में परिवर्तित होती है तो विनाश की पहली सीढ़ी प्रारंभ हो जाती है। वो कहते है ना *''अतिलोभो विनाशाय''*।

विश्वव्यापी आर्थिक संकट का बीज इसी अति लोभ की धरती पर उगा और उसने जंगली कांटेदार बेल की तरह पूरे विश्व की अर्थव्यवस्था को अपने चंगुल में ले लिया। धन के उस लालच ने सपनों के महल खड़े कर दिए - ताश के पत्तों की तरह और फिर आंख खुलने से पहले ही सारे सपने लड़खड़ाकर गिर पड़े और धराशायी हो गये विश्व के सबसे मजबूत अर्थ तंत्र।

धन कमाना, धन सहेजना, धन खर्च करना और धन बढ़ाना यह चार चरण होते हैं जिन्हें पुख्ता अर्थव्यवस्था के चार स्तंभ के रूप में देखा जा सकता है। परंतु अति विकसित अर्थ-व्यवस्था वाले देशों ने लालच की अंधी दौड़ में इन स्तंभों को नकारते हुए आगे बढ़ने की कोशिश की और परिणाम............। जबकि भारतीय अर्थव्यवस्था अपने सिद्धांतों पर बनी रही। यहां के चिंतक अपनी परंपराओं को आधुनिकता के जल से सींचते रहे ताकि जड़ें मजबूत रहें और प्रगति भले ही धीमी हो, पर निरंतर होती रहे। यही रहा हमारी अर्थव्यवस्था का कवच।

लालच का एक और भी पक्ष है और वह है -

घटं भिन्द्यात् पटं छिन्द्यात् कुर्यात रासभरोहणं
येन केन प्रकरेण प्रसिद्ध: पुरुषो भवेत् ..।

अर्थात् किसी-न-किसी रूप में अपने आपको आगे बनाए रखने की भूख - जैसा कि पंक्तियों में बताया गया है - मटका बजाकर या कपड़े फाड़कर या गधे पर चढ़कर यानी कि येनकेन प्रकार से अपने आपको प्रसिद्ध करने की लालसा। जब धन के लालच के साथ जुड़ गयी सबसे आगे रहने की भूख - प्रसिद्ध रहने की भूख तब विश्व की पूरी अर्थव्यवस्था में प्रलय मच गया। अति विकसित देशों में व्याप्त धन का लालच और प्रसिद्धि पाने या आगे रहने की भूख इतनी ज्यादा हो गयी कि अनुभव सिद्ध सिद्धांतों को अनदेखा कर दिया गया और परिणाम हुआ ... ...। भारतीय बैंकिंग तंत्र अपने सिद्धांतों के लिए अपनी अलग पहचान रखता है और यही कारण है कि विश्व के आर्थिक संकट की आँधी ने कोशिश तो बहुत की अपनी चपेट में लेने के लिए पर हम लगभग अप्रभावित से बने रहे क्योंकि हम आज भी अपनी जड़ों से जुड़े हैं भले ही वह चाणक्य नीति में हो या आधुनिक नीति निर्माताओं के चिन्तन में।

## अनुचिंतन

यह अंक विश्वव्यापी आर्थिक संकट को समझने और उसके प्रभाव और प्रति-प्रभाव को समझने का एक प्रयास है। विभिन्न लेखों में इस संकट की विश्लेषणात्मक समीक्षा हमें देखने को मिलेगी और साथ ही हमें मिलेगा भारतीय अर्थव्यवस्था का मजबूत आधार। हो सकता है लेखों के बीच दोहराव देखने को मिल जाए पर विषय की व्यापकता को देखते हुए ऐसा होना क्षम्य है। ''साक्षात्कार'' में इस बार आपकी मुलाकात आंध्रा बैंक के अध्यक्ष एवं प्रबंध निदेशक, श्री आर.एस.रेड्डी से करवायेंगे। आशा है पहले की तरह यह अंक भी आपको पसंद आयेगा। आपकी प्रतिक्रिया हमारे लिए सुधार का मार्गदर्शन करती है, अत: प्रतीक्षा रहेगी। अस्तु,

सादर,

(रूपम मिश्र)

## साक्षात्कार

# निर्णय लेने की क्षमता ही आपको आगे बढ़ाती है ...

"साक्षात्कार" स्तम्भ का प्रारंभ जब किया गया तब इतने प्रतिसाद का अनुमान नहीं था - क्योंकि सामान्यत: लोग ऐसे स्तम्भ सरसरी तौर पर ही पढ़ते हैं। परंतु पाठकों ने हमारे इस अनुमान को झूठा सिद्ध कर दिया क्योंकि प्रत्येक अंक के साथ साक्षात्कार पर प्राप्त प्रतिक्रियाओं की संख्या में लगातार बढ़ोतरी हो रही है। कई बार तो लोग बैंकों के अध्यक्षों के नामों का भी सुझाव दे देते हैं। यहां तक कि बड़े सहकारी बैंकों के कार्यकारी अधिकारियों के साक्षात्कार के साथ-साथ वित्तीय एवं मुद्रा बाजार से जुड़े अधिकारियों के साक्षात्कार की मांग भी होने लगी है। यह इस स्तम्भ की उपलब्धि है और इसका पूरा श्रेय पाठकों को जाता है।

इस बार हम आपकी मुलाकात करवा रहे हैं आंध्रा बैंक के अध्यक्ष एवं प्रबंध निदेशक **श्री आर.एस.रेड्डी से।** अपनी बात को स्पष्ट रूप से कहने वाले श्री रेड्डी उन अधिकारियों के प्रति भी अपना आभार व्यक्त करना नहीं भूले जिन्होंने उन्हें प्रेरणा दी। अपनी अच्छाइयों का सही इस्तेमाल करना भी एक गुण है और यह श्री रेड्डी में कूट-कूट कर भरा है। आत्मविश्वास से लबरेज होकर जब वे बोलते हैं तो उनके चेहरे पर अनुभव की आभा छलकती है। उन्होंने अपनी बात हिंदी-अंग्रेजी मिश्रित भाषा में कही परंतु जो भी कहा वह बहुत ही प्रेरणादायक और अनुभवसिद्ध कहा। आइये, अब मिलते हैं उनसे कार्यकारी संपादक डॉ.पुष्पकुमार शर्मा के माध्यम से। उनसे हुई बातों का सारांश प्रस्तुत है।

● सर, एग्रीकल्चर में पोस्ट ग्रेज्युएट होने के बावजूद आप बैंकिंग से कैसे जुड़े।

☛ माफ कीजिएगा, पहले तो मै यह बताना चाहता हूं कि पूरी तरह हिंदी नहीं बोल पाऊंगा। बीच-बीच में थोड़ी अंग्रेजी आएगी तो आप देख लेना। मैं जब एग्रीकल्चर में पीजी करके निकला तो कहीं दिमाग में प्रॉयोरिटी सेक्टर लेंडिंग शब्द था। उस समय जॉब की इतनी परेशानी नहीं थी। मेरे पास डिग्री थी - मैंने बैंक ऑफ इंडिया में अप्लॉय किया और सिलेक्ट हुआ। एक बात बताऊं आपको, डिग्री या क्वॉलिफिकेशन यह एक अलग चीज है - जबकि सबसे महत्वपूर्ण होता है डिसीजन लेना और मैं यह मानता हूं कि मेरे में यह क्वॉलिटी है। मैंने जब बैंक ज्वॉइन किया तो मेरा अनुभव यही रहा कि आपको यह पता होना चाहिए कि क्या राईट है और क्या रॉंग। मुझे लगता है डिग्री से बढ़कर डिसीजन लेने की कॅपेसिटी ज्यादा महत्वपूर्ण है।

● जब आपने बैंक ज्वॉइन किया 30-35 साल पहले, तो बैंक का पहला दिन आपको याद होगा - कैसा लगा था उस दिन।

☛ ......बहुत अच्छी तरह याद है - मैं यूनिवर्सिटी में पीएचडी कर रहा था - हावड़ा मेल में बैठा और चेन्नै स्टेशन पर पहुंचा - मैं उतरा - बिल्कुल अकेला सड़क पर - घूमता रहा - वापस आने की सोचता रहा - मन में आया अच्छा खासा पीएचडी कर रहा था कहां आ गया - फिर अपने आपसे कहा - "लेट मी ट्राई फॉर वन वीक" मन

में थोड़ा विश्वास आया, हिम्मत आयी - पूरा दिन शहर घूमा और फिर बैंक ज्वॉइन कर लिया। लेकिन नहीं - ऐसा नहीं हुआ - आप यकीन नहीं करेंगें - मैं आठ महीने लगातार काम करता रहा - घर से दूर - अकेला। तब मुझे लगा, अपनी पोजीशन को छोड़कर कहीं जुड़ जाना होता है - इन्वाल्व हो जाता हूं - बहुत कुछ बातें हैं और दूसरी बात मैंने यह महसूस की कि जब भी जिम्मेदारी आती है हम अकेले ही होते हैं और हमें उसे निभाना होगा।

- आप इतने साल बाद एक अध्यक्ष के रूप में आंध्रा बैंक में आए तब कैसे लगा।

☛ हं...हं...आप तो मेरे मन में उतरने जा रहे हैं। जैसा मैंने कहा - जिम्मेदारी के लिए आप अकेले ही होते हैं - आप उसे बांट नहीं सकते - क्योंकि आपको निर्णय लेना है और यही अध्यक्ष के रूप में महसूस करना पड़ता है - सच कहूं मेरे मन में बहुत सारी शंकाएं थीं - जैसा कि हम सभी जानते हैं - हर आदमी की एक इमेज होती है और कहते हैं कि आदमी के कहीं भी पहुंचने के पहले उसकी ख्याति वहां पहुंच जाती है, इमेज वहां पहुंच जाती है। मेरे साथ भी ऐसा ही हुआ - पर मेरे अपने कुछ तरीके हैं। मैं एक्सटरनल मोटीवेशन पर विश्वास करता हूं - मैंने देखा आप आगे बढ़ते हैं तो लोग आपकी सहायता के लिए खुद आगे आते हैं। मेरा तो यह मानना है आदमी को अपने भीतर देखना चाहिए - दूसरे क्या सोचते हैं वह बाद की बात है - आप कुछ कर के सॅटीस्फाई होते हैं तो वह आपकी उपलब्धि है।

- एक अध्यक्ष के रूप में आपके कुछ ड्रीम्स (सपने) होंगे - क्या है बतायेंगे?

☛ जरूर, मैं जब आंध्रा बैंक में आया तो मुझे लगा कि कॅपेसिटी का पूरा यूटीलाइजेशन नहीं हो रहा है, आइसोलेशन ज्यादा था - मेरा सपना यही था कि मैं इस बैंक को मिड साइज से बिग साइज का बनाऊं। एक ऐसी इमेज पैदा करूं कि लोगों को लगे कि यह मेरा बैंक है। जनरली क्या होता है - लोग अपने गोल छोटे-छोटे सेट करते हैं और उनके पूरा न होने पर निराश होते है परेशान होते हैं। मेरा सोचना उल्टा है - आप बड़े सपने देखें, बड़े लक्ष्य बनाओ - क्योंकि सपने कंटीन्यू होने चाहिए। इससे आप अपने सामने चुनौती खड़ी करेंगे और जब ऐसी चुनौती होगी तब या तो आप सफल होंगे या फिर सफलता के आस-पास होंगे। हमारी सोच ऐसी होनी चाहिए - छोटे सपने निराश करते हैं - बड़े सपने चुनौती देते हैं - जब चैलेंज आपके सामने होगा तो आप एक्स्ट्रा एक्टिव बनेंगे, क्रिएटीव बनेंगे ...... है ना सोचने वाली बात।

- एक बैंक में लम्बे समय तक काम करने से एक इमोशनल बाइंडिंग हो जाती है परंतु जब नये बैंक में सीएमडी के रूप में जाते हैं तो अगली जिम्मेदारी आ जाती है। इन दोनों में आप संतुलन कैसे करते हैं।

☛ Difficult Question rather - इसका उत्तर डिफीकल्ट है। यह सही है कि इमोशनल और प्रोफशनल दोनों तरह की बाइंडिंग होती है। दोनों को संभालना बहुत कठिन होता है - पर ऐसा कहते हैं ना कि हममें जो भी परिवर्तन आता है उसे स्वीकार करना होता है, हम एक बैंक से जुड़ते हैं - रास्ते बनाते हैं - रिलेशनशिप बनाते हैं और एक स्थिति आती है जब हमें एकदम से किसी बदलाव का सामना करना पड़ता है और उस बदलाव की अलग तरह की अपेक्षाएं होती हैं। ऐसी स्थिति में आपको डिटेचमेंट भी आना चाहिए। एक उम्र के बाद जब हम उस इमोशनल बाइंडिंग की बात करते हैं तो देखा जाए तो वहां वे लोग भी नहीं होते हैं जिनके कारण आप जुड़े होते हैं। क्योंकि बैंक के साथ हमारे संबंध लोगों से होते हैं और जब आप देखते हैं - अरे वह तो है ही नहीं - अरे वे तो रिटायर्ड हो गये - उनकी जगह कोई और बैठा है। सो..इस तरह से फेडआउट करना पड़ता है उस इमोशनल बाइंडिंग को।

- सर, आप अपने जीवन में सबसे ज्यादा प्रभावित किससे रहे।

☛ सबसे पहले तो मैं अपने पैरेन्ट्स को अपना रोल मॉडल

मानता हूं। यहां आपकी भाषा में कहें तो अपना आदर्श मानता हूं। मेरे बचपन को, मेरे ग्रँड फादर ने बहुत ज्यादा प्रभावित किया - मैं उनके जैसा बनना चाहता हूं और फिर कई लोग मेरे जिंदगी में आए लेकिन सबसे ज्यादा प्रभावित किया मुझे बैंक ऑफ इंडिया के सीएमडी, श्री के.वी.कृष्णमूर्ति साहब ने। आप जानते हैं, वे क्रोनिक हार्ट पेशन्ट थे - लेकिन इतनी एनर्जी से भरे हुए थे कि हम लोग चकरा जाते थे। ''ही वाज वेरी क्लियर इन हिज थॉट'' - अगर एक बार उन्होंने सोच लिया कि ''दिस हैज टू बी डन'' फिर दुनिया की कोई ताकत उन्हें हिला नहीं सकती थी। मुझे याद है बिस्तर पर बीमार पड़े होते हुए भी ''ही वाज डिस्कसिंग बैलेंस-शीट'' सच कहते हैं भगवान ने उनको ''एक्सट्रा ऑर्डिनरी'' शक्ति दी थी। मेरा एक सुझाव है कि यदि आप बिलिव करते हैं तो उस पर टिके रहिए मजबूती के साथ - आप और मजबूत बन जाएंगे। मुझे एक बात याद है यूनियन के जनरल सेक्रेटरी को मैंने ट्रान्सफर किया था क्योंकि मैं ऐसा जरूरी समझ रहा था - जब मुझ पर कई तरह के दबाव आए और मैं अपनी बात पर टिका रहा और बाद में सभी ने इस बात को माना कि मैं सही था। यह मैं अपनी तारीफ में नहीं कह रहा हूं बल्कि यह बताना चाहता हूं कि यदि आप किसी चीज में विश्वास कर रहे हैं तो उस विश्वास को बनाए रखें। मेरा ऐसा भी मानना है कि हमें अपनी असफलता से डरना नहीं चाहिए - अरे भई.. हम किसी भी समस्या के लिए अगर समाधान ढूंढ रहे हैं और हम पूरी तरह सफल नहीं होते तो वह कोई असफलता नहीं - अरे भई हमने कोशिश तो की - कम-से-कम यह तो संतोष होना चाहिए कि समाधान की दिशा में कुछ कदम आगे तो बढ़े। मैं जब यहां आया था तो सीबीएस के लिए टार्गेट बनाना था - मैंने सात महीने का टार्गेट दिया। पूरे बैंक में खलबली मच गई - ऐसा कैसे हो सकता है - जब मैंने कहा - कोशिश तो करो ... और फिर रिजल्ट सभी जानते हैं - हमने केवल सात महीनों में सारी शाखाओं को सीबीएस से जोड़ दिया - लोग तो कहेंगे ही ... कोशिश बहुत जरूरी है - हो सकता है Most of the time हम रॉंग हो जाए - पर एक बार तो सही होंगे।

● **सर, बैंकिंग एक सर्विस सेक्टर है और ग्राहक आज डिमांडिंग स्थिति में है। ऐसे में आप किस प्रकार की चुनौतियां महसूस करते हैं।**

☛ अरे भई.. आज सब कुछ एक क्लिक पर मिलता है और आज आपने ग्राहक को यह क्लिक पकड़ा दी - अब तो मांग बढ़ेगी ही - और यही वक्त हमारे लिए अपने आपको अपग्रेड करने का है। कांस्टैंट अपग्रेड होते रहना चाहिए। आप हर प्रकार के ग्राहक की डिमांड पूरी कर सकते हैं ... और यदि ऐसा नहीं करेंगे तो भई ग्राहक तो भाग जायेंगे। उसके पास तो बहुत सारे विकल्प हैं - एक बैंक नहीं तो दूसरा बैंक तैयार है।

● **सर, लोग आज बचत करने के बजाए खर्च करना पसंद करते हैं, ऐसे में लोगों को बैंकिंग से कैसा जोड़ा जाए।**

☛ देखिए साहब, एक बात मैं साफ कर देता हूं - आजकल बैंकों में लोग बचत के लिए नहीं आते, सुविधा के लिए आते हैं - अपने पैसों से किस तरह की सुविधा उन्हें मिल सकती है - उसको समझने के लिए आते हैं - SB Account खोलना एक बहाना होता है - आजकल बैंक नहीं एक एडवाइज़र चाहिए जो उनके फंड का मैनेजमेंट करें। हमने अपने बैंक में इसी प्रिंसीपल को लागू किया और हमारी ग्राहक संख्या बढ़ने लगी। मैं समझता हूं कि आजकल बैंकों के बीच इसी बात का कॉम्पीटीशन ज्यादा हो रहा होगा कि कौन-सा बैंक ग्राहकों का ज्यादा बढ़िया एडवाइज़र है।

● **आजकल फी-बेस सर्विसेज या आफ बैलेंस-शीट एक्टीविटिज ज्यादा हो गयी हैं - आप आंध्रा बैंक में इस बारे में क्या सोचते है ...**

☛ भई, मुफ्त की सेवा का जमाना तो गया - अब तो हर चीज की लागत है - अब सेवा फंड बेस्ड हो या नॉन फंड बेस्ड हो उसकी कीमत तो चुकानी होगी। ग्राहक इस बात को समझता है और वह कीमत चुकाने में पीछे नहीं हटता। कोई तो सेवा की - इसी सिद्धांत से हमने अपनी इन्कम को बढ़ाना शुरू कर दिया।

● सर, इन्कम की बात चली तो सवाल यह उठता है कि आपने टोटल इन्कम में तो बढ़ोतरी कर ली परंतु दूसरी तरफ आपने अपने एक्सपेंडिचर (खर्च) भी कम कर दिए - यह कैसे किया।

☛ इसका उत्तर बड़ा आसान है - बैंकों में जनरली दो तरह के खर्च होते हैं, इंटरेस्ट एक्सपेंडिचर और दूसरा नॉन इंटरेस्ट एक्सपेंडिचर। हमने इन दोनों को कम किया और तीसरा होता है एम्पलॉई का एक्सपेंडिचर। मैंने सबको मोटीवेट किया और यह भी संकेत दे दिया कि मैं एक-एक खर्च पर नजर रखे हुए हूं। इसमें मेरी सहायता कंप्यूटर ने बहुत की। हम महीने की पहली तारीख को हरेक के आंकड़े चेक करता हूँ। बस सारे खर्चे रेग्यूलेट हो गये।

● आपको नहीं लगता कि भारतीय बैंकों को अग्रेसिव मार्केटिंग करनी चाहिए।

☛ लगता तो है पर मैं कुछ और तरीके से सोचता हूं - अग्रेसिव मार्केटिंग से कुछ नहीं होता - वस्तुत: आप जो प्रॉमिस कर रहे हैं - उसे पूरा करना आना चाहिए। दूसरे शब्दों में कहें तो खुले मन से पूरी ट्रान्सपरेंसी के साथ कहिए कि यह हमारा प्रोडक्ट है और हम आपको यह दे रहे हैं। मुझे मैनेजमेंट का एक सूत्र याद आ रहा है जिसमें उल्टे पिरामिड का एक चित्र होता है - ऊपर ''हां'' लिखा होता है और नीचे ''ना''। एक बैंकर को इसी सिद्धांत को मानना चाहिए - जहां तक हो सके हां, हां, हां रखिए। इससे आपकी कमिटमेंट दिखायी देगी और ग्राहक का विश्वास आप जीत पायेंगे। मैं तो एक योजना बना रहा हूं जिसमें इस प्रकार का कार्यक्रम होगा कि रेडियो या टीवी पर, जिसमें बिना किसी बैंक का नाम लिये हुए हम आम जनता को बैंकिंग की जानकारी देंगे। यह फाइनेन्शियल लिटरेसी में हमारा रोल होगा।

● सर, आप भावी बैंकरों को कोई सलाह देना चाहेंगे।

☛ कोई खास नहीं। बस इतना ही कि आप जो भी बनना चाहते हैं बने - अपने पर विश्वास रखें, अपने काम पर विश्वास रखें क्योंकि आपके काम ही आपके संस्कार होते हैं। मैं यह मानता हूं कि लक्ष्यों की तुलना में साधन ज्यादा महत्वपूर्ण है। मुझे लगता है मेरे इस सूत्र को समझकर आप सफलता तक पहुंच सकते हैं ...गलत तो नहीं कह रहा हूं ना!

**प्रस्तुतीकरण :**

**डॉ. पुष्पकुमार शर्मा**

ANDHRA BANK
(A Government of India undertaking)
Adding excellence to performance
Crosses 1 lakh crore Business
&
Achieves 100% CBS
Total Business Rs.1,03,818 cr
Gross NPA 0.83%
Net NPA 0.18%
Q-4 Net Profit 61.94%
CRAR 13.22%

# परिक्रमा

## आंध्रा बैंक कर्मचारी महाविद्यालय, हैदराबाद

आंध्रा बैंक कर्मचारी महाविद्यालय कॉर्पोरेट लक्ष्यों की उपलब्धि के लिए बैंक को ज्ञान का निरंतन समर्थन देने का स्रोत है। कर्मचारियों के ज्ञान में वृद्धि करना और उनके नेतृत्व गुणों को बेहतर बनाने के लिए महाविद्यालय हमेशा प्रयास करता रहता है।

कर्मचारी महाविद्यालय आईएसओ 9000:2001 से सप्रमाणित संस्थान है और हैदराबाद में जुब्ली हिल्स के एक शांतिपूर्ण और पॉश इलाके में स्थित है।

महाविद्यालय में 4 चैनल (2 सामान्य प्रशिक्षण कार्यक्रमों के लिए और 2 आईटी के प्रशिक्षण लिए) नवीनतम उपकरणों की सुविधाओं के साथ सुसज्जित है। इन 4 चैनलों के माध्यम से 100 उम्मीदवारों को एक साथ प्रशिक्षण दिया जा साकता है। महाविद्यालय में प्रतिभागियों के लिए हॉस्टल और मनोरंजन की सुविधा उपलब्ध है।

महाविद्यालय के संकाय सदस्यों की संख्या 11 है, जिन्हें विभिन्न क्षेत्रों में विशेषज्ञता प्राप्त है। तथापि, उन्हें कृषि बैंकिंग, विदेशी मुद्रा, औद्योगिक ऋण, मानव संसाधन प्रबंधन और सूचना एवं प्रौद्योगिकी आदि विषयों पर विशेष ध्यान देने के लिए विभिन्न समूहों में बांट दिया गया है।

हिन्दी में सत्र लेने व बैंकिंग विषयों पर हिन्दी माध्यम से प्रशिक्षण कार्यक्रम का समन्वय करने के लिए महाविद्यालय में विशेष रूप से हिंदी संकाय का पद सृजन किया गया है। महाविद्यालय के सभी संकाय सदस्य हिन्दी और अग्रेंजी में सत्र लेने में सक्षम हैं।

महाविद्यालय में आयोजित प्रत्येक प्रवेश प्रशिक्षण कार्यक्रम में भारत सरकार की राजभाषा नीति पर एक सत्र और हर आईटी से संबंधित प्रशिक्षण कार्यक्रम में द्विभाषी सॉफ्टवेयर पर एक सत्र के अलावा महाविद्यालय में व्यावसायिक प्रशिक्षण अधिक संख्या में हिन्दी माध्यम से आयोजित किये जाते हैं।

महाविद्यालय के पुस्तकालय में विभिन्न विषयों पर पुस्तकें एवं संदर्भ साहित्य उपलब्ध हैं। पुस्तकालय में हिन्दी की लगभग 200 पुस्तकें हैं।

### प्रशिक्षण की कार्यप्रणाली

- कक्षा में व्याख्यान/परिचर्चाएं
- प्रतिष्ठित संस्थाओं से अतिथि संकाय को बुलाना
- प्रमुख प्रलेखों की साफ्ट कॉपी की व्यवस्था करना
- एक्जिट परीक्षाओं का आयोजन
- केस अध्ययन, अभ्यास
- सामूहिक कार्य एवं प्रस्तुति
- इन-बास्केट अभ्यास
- सफल प्रबन्धकों, स्टार निषादकों एवं कार्यपालको से विचार-विमार्श की व्यवस्था
- शाखा साफ्टवेयर का अनुरूपण
- व्यावहारिक समस्याएं एवं समाधान
- हैंडस ऑन सत्र

### प्रशिक्षणोत्तर मूल्यांकन

अभिनिर्धारित कुछ कार्यक्रमों के संबंध में महाविद्यालय प्रभावपूर्णता पर एक सर्वेक्षण करता है। प्रशिक्षण तिथि के एक महीने के बाद प्रशिक्षित स्टाफ के बारे में, प्रशिक्षणोत्तर परिदृश्य में शाखा पर उनके विनिर्दिष्ट कार्यनिष्पादन पर प्रबन्धकों से फीडबैक प्राप्त किया जाता है। प्राप्त जानकारी का एक रेटिंग पद्धति के द्वारा विश्लेषण किया जाता है एवं कुछ पैरामीटर के आधार पर प्रशिक्षण प्रभावपूर्णता सूची की गणना की जाती है एवं जानकारी उच्च प्रबन्धन को प्रस्तुत की जाती है।

**प्रस्तुतीकरण :**
**डॉ. पुष्पकुमार शर्मा**

# आर्थिक मंदी-विवेचनात्मक परिचय

● डॉ. रमाकांत शर्मा
महाप्रबंधक
भारतीय रिज़र्व बैंक, मुंबई

आर्थिक मंदी आजकल सबसे चर्चित विषय बना हुआ है। विभिन्न देशों की अर्थव्यवस्था विश्वव्यापी मंदी से आक्रांत है। इससे निजात पाने के लिए जहां विभिन्न देश अपने-अपने स्तर पर कई कदम उठा रहे हैं, वहीं विश्व स्तर पर भी सम्मिलित रूप से कई कदम उठाए गए हैं। इस मंदी से हर संस्था और हर व्यक्ति किसी न किसी रूप में प्रभावित हो रहा है। यह जानने-समझने की कोशिश की जा रही है कि मंदी क्या होती है, क्यों होती है इसके क्या दुष्परिणाम  होते हैं और इनसे कैसे बचा जा सकता है। इस परिप्रेक्ष्य में, आइये हम आर्थिक मंदी के स्वरूप पर एक नजर डालें।

> आर्थिक सांख्यिकीविद् जूलियस शिलस्कन ने मंदी की पहचान के लिए कई व्यावहारिक सुझाव दिये थे, जिनमें से एक सुझाव यह था कि लगातार दो तिमाहियों तक सकल घरेलू उत्पाद में यदि गिरावट बनी रहती है तो यह माना जाए कि हम मंदी की स्थिति से गुजर रहे हैं।

## आर्थिक मंदी - परिभाषा

*''देश भर की आर्थिक गतिविधियों में ऐसी गिरावट जो कई माह तक चले और जो सामान्यत: सकल घरेलू उत्पाद, वास्तविक व्यक्तिगत आय, कृषीतर रोजगार, औद्योगिक उत्पादन तथा थोक और खुदरा बिक्री में कमी के रूप में परिलक्षित हो।'' (नेशनल ब्यूरो ऑफ इकॉनामिक रिसर्च, यू.एस.)*

*''सामान्य व्यावसायिक क्रियाकलापों में लगातार दो तिमाहियों तक गिरावट को आर्थिक मंदी कहा जा सकता है जिसके परिणामस्वरूप वास्तविक सकल राष्ट्रीय उत्पादन में भी गिरावट दिखाई देती है।'' (डिक्शनरी.कॉम)*

*''अर्थव्यवस्था की समस्त गतिविधियों में कई माह तक लगातार चलने वाली उल्लेखनीय गिरावट को आर्थिक मंदी कहा जाता है। यह गिरावट औद्योगिक उत्पादन, रोजगार, वास्तविक आय तथा थोक और खुदरा बिक्री में स्पष्टत: दिखाई देती है।'' (वर्ल्डनेटवेब)*

*''मंदी आर्थिक गतिविधियों में काफी समय तक चलने वाली सामान्य गिरावट को कहा जाता है। मंदी की स्थिति के दौरान कई समष्टि-आर्थिक निर्देशक एक ही चाल से चलते हुए दिखाई देते हैं। सकल घरेलू उत्पाद, रोजगार, निवेश व्यय, क्षमता-उपयोग, पारिवारिक आय तथा व्यापारिक लाभ सभी में गिरावट आती है।'' (विकिपीडिया)*

उपर्युक्त परिभाषाओं से मंदी का निम्नलिखित स्वरूप उभर कर सामने आता है :

- व्यावसायिक क्रियाकलापों में कम से कम लगातार दो तिमाहियों तक गिरावट होना
- वास्तविक सकल राष्ट्रीय उत्पादन में गिरावट आना
- यह गिरावट अर्थव्यवस्था के समस्त क्षेत्रों में काफी लम्बे समय तक दिखाई देती है, जिनमें औद्योगिक उत्पादन, रोजगार, वास्तविक आय, थोक तथा खुदरा बिक्री, निवेश व्यय, क्षमता-उपयोग, पारिवारिक आय तथा व्यापारिक लाभ शामिल हैं।

## मंदी की पहचान

वर्ष 1975 में न्यूयार्क टाइम्स में प्रकाशित अपने लेख में आर्थिक सांख्यिकीविद् जूलियस शिलस्कन ने मंदी की पहचान के लिए कई व्यावहारिक सुझाव दिये थे, जिनमें से एक सुझाव यह था कि लगातार दो तिमाहियों तक सकल घरेलू उत्पाद में यदि गिरावट बनी रहती है तो यह माना जाए कि हम मंदी की स्थिति से गुजर रहे हैं। उनके द्वारा दिये गये अन्य सुझावों की अपेक्षा इस सुझाव को अधिक व्यावहारिक पाया गया और आज मंदी को अक्सर ऐसी अवधि के रूप में परिभाषित किया जाता है जिसमें कम से कम दो तिमाहियों से सकल घरेलू उत्पाद में

लगातार गिरावट आ रही हो या वास्तविक आर्थिक संवृद्धि नकारात्मक रही हो।

मंदी की पहचान के लिए यूं तो अधिकांशत:जूलियस शिलस्कन द्वारा दिए गए उपर्युक्त मापदंड को ही अपनाया जाता है, पर कुछ अर्थशास्त्री इस हेतु बेरोजगारी की स्थिति का आकलन करना बेहतर समझते हैं और यह मानते हैं कि यदि बारह महीनों की अवधि के दौरान बेरोजगारी में कम से कम 1.5 प्रतिशत की वृद्धि हो जाए तो इसका अर्थ यह हुआ कि मंदी की स्थिति बन गई है।

यदि सकल घरेलू उत्पाद में 10 प्रतिशत या उससे अधिक की गिरावट आती है या वह तीन-चार वर्षों तक बनी रहती है तो यह गंभीर रुख ले सकती है। इसे मंदी (recession) के बजाय घोर आर्थिक मंदी (depression) के नाम से जाना जाता है।

## मंदी के संकेत

ऊपर हमने यह देखा है कि मंदी की पहचान कैसे की जाती है। अब हम यह देखेंगे कि मंदी आने के पहले कौन से संकेत मिलने लगते हैं? हालांकि एकदम सटीक संकेत मिलना संभव नहीं है, पर अर्थशास्त्री निम्नलिखित को संभावित मंदी का संकेतक मानते हैं-

- शेयर बाजार में लगातार भारी गिरावट आना
- बेरोजगारी में लगातार वृद्धि होना
- व्यावसायिक लाभ में लगातार कमी होना
- उत्पादन में निरंतर गिरावट होना
- प्रमुख आर्थिक सूचकांक में गिरावट आना
- स्थावर संपदा अर्थात् जमीन जायदाद के मूल्यों में निरंतर गिरावट आना, फिर भी, बिक्री न होना
- ऋणों की चुकौती में गिरावट आना
- अनिवार्य वस्तुओं के दामों में भारी तेजी होना
- कंपनियों द्वारा भर्ती पर रोक लगाया जाना
- दैनिक व्ययों के लिए बचत का उपयोग किया जाना
- बड़ी कंपनियों के लाभ में कमी आना
- क्रेडिट कार्ड के जरिये खरीद में वृद्धि होना

उपर्युक्त में से सभी या कई घटनाओं का होना इस बात का संकेत देने लगता है कि अर्थव्यवस्था मंदी की ओर बढ़ रही है। अत: यह आवश्यक है कि ऐसे लक्षणों के दिखाई देते ही मंदी को रोकने के लिए आवश्यक कदम उठाए जाएं।

## मंदी के कारण

मंदी क्यों होती है, इसका अभी तक अर्थशास्त्री कोई सटीक जबाव नहीं ढूंढ पाए हैं। अलग-अलग विद्वानों ने इसके लिए अलग-अलग कारणों को जिम्मेदार ठहराया है। जिस बात पर सभी अर्थशास्त्री सहमत हैं, वह यह है कि मंदी एक ऐसी स्थिति है, जिससे बचा नहीं जा सकता। दूसरे शब्दों में, किसी भी अर्थव्यवस्था को मंदी की स्थिति से गुजरना ही होता है। वास्तव में, 1930 के दशक में हुई भीषण आर्थिक मंदी के इतने वर्षों बाद भी मंदी हमारे लिए रहस्यमय बनी हुई है और इसके कारणों का पता लगाने के प्रयास विभिन्न स्तरों पर निरंतर किये जाते रहे हैं। इन प्रयासों के फलस्वरूप, इस संबंध में कई सिद्धांत सामने आए हैं। इनके आधार पर मंदी के कारणों को निम्नानुसार क्रमबद्ध किया जा सकता है:-

> जिस बात पर सभी अर्थशास्त्री सहमत हैं, वह यह है कि मंदी एक ऐसी स्थिति है, जिससे बचा नहीं जा सकता। दूसरे शब्दों में, किसी भी अर्थव्यवस्था को मंदी की स्थिति से गुजरना ही होता है।

**1. व्यापार चक्र** - मंदी आने का एक मुख्य कारण व्यापार चक्र को माना जाता है। इस सिद्धांत के अनुसार विभिन्न कारणों से अर्थव्यवस्था में तेजी और मंदी का दौर आना अवश्यंभावी है। यह कहा जाता है कि अर्थव्यवस्था को संतुलित तथा नवोन्मेषी बनाए रखने के लिए उसमें विस्तार और संकुचन का होना जरूरी है। इसीलिए संभवत: स्वयं प्रकृति ने इसके लिए व्यवस्था की है। यह उल्लेखनीय है कि कुछ अर्थशास्त्रियों ने व्यापार चक्र के लिए सूर्य में होने वाले परिवर्तन-चक्र से कृषि तथा उससे संबंधित उद्योगों पर पड़ने वाले अनुकूल और प्रतिकूल परिणामों को उत्तरदायी माना है। यही कारण है कि तेजी और मंदी के दौर स्वाभाविक रूप से बल्कि एक आवधिक

क्रम में आते -जाते रहते हैं। लेकिन, यह सिद्धांत अचानक आई मंदी की स्थिति का स्पष्टीकरण नहीं दे पाता।

**2. ब्याज-दरों में लगातार होने वाली वृद्धि** - कुछ विद्वान इसका कारण ब्याज-दरों में लगातार होने वाली वृद्धि को मानते हैं, क्योंकि इससे ऋण लेना मंहगा हो जाता है और व्यावसायिक कार्यों के लिए धन की कमी हो जाती है। व्यावसायिक गतिविधियों का मंद पड़ जाना अर्थव्यवस्था की अन्य गतिविधियों को भी विपरीत रूप से प्रभावित करता है तथा आर्थिक मंदी की स्थिति उत्पन्न हो जाती है।

**3. समग्र मांग में कमी आना** - मंदी का एक अन्य कारण समग्र मांग में कमी आना है। यह उपभोक्ताओं के विश्वास में कमी से उत्पन्न होता है। समग्र मांग में कमी आने के अपने कई कारण हैं। लेकिन, जब वस्तुओं और सेवाओं की मांग में कमी आने लगती है तो वह व्यावसायिक उत्पादन में कमी के रूप में सामने आती है, जिससे मंदी का दुष्चक्र शुरू  हो जाता है।

**4. मुद्रा की आपूर्ति  पर कड़ा नियंत्रण** - सामान्य तौर पर अर्थशास्त्री इस बात से सहमत हैं कि मंदी का एक बड़ा कारण अर्थव्यवस्था में मुद्रा की आपूर्ति पर कड़ा नियंत्रण लगाना है। हर देश का केंद्रीय बैंक अपनी मुद्रा के आंतरिक और बाहरी मूल्य को स्थिर रखने की दृष्टि से मौद्रिक उपायों का सहारा लेता है। जब मुद्रा की आपूर्ति को विवेकहीन ढंग से नियंत्रित किया जाता है तो सामान्य आर्थिक और व्यावसायिक क्रियाओं के लिए आवश्यक धन की कमी हो जाती है, जिससे ये गतिविधियां शिथिल हो जाती हैं और मंदी की स्थिति बन जाती है। इसी प्रकार, विवेकहीन तरीके से मुद्रा की मात्रा बढ़ाने के कारण भी मंदी पनप सकती है, क्योंकि मुद्रास्फीति को बल मिल सकता है जो उत्पादन की लागत बढ़ाने का कारण बनती है। लागत में वृद्धि से वस्तुओं और सेवाओं के मूल्यों में वृद्धि होती है, जिसकी वजह से उनकी मांग कम हो जाती है और इस प्रकार मंदी का दुष्चक्र सक्रिय हो जाता है।

**5. फर्म या उद्योग विशेष की मूल्य-नीति में होने वाले परिवर्तन -** कुछ विद्वान मंदी की शुरूआत का कारण किसी विशेष फर्म या उद्योग की मूल्य-नीति में होने वाले परिवर्तन को मानते हैं। कई बार कोई फर्म या उद्योग विशेष अपने मुख्य उत्पाद में थोड़े नवोन्मेष के साथ उसके मूल्य में पहले की अपेक्षा काफी वृद्धि कर देता है। इसके परिणामस्वरूप उसकी मांग में भारी कमी आ जाती है। मांग में कमी आने से उद्योग का उत्पादन कम होता है, जिससे बेरोजगारी बढ़ती है। यह बेरोजगारी अन्य उद्योगों के उत्पादों की मांग में भी कमी लाती है और यह सिलसिला चल पड़ता है। मंदी के इस कारण के पक्षधर इस बात का हवाला देते हैं कि मंदी का प्रभाव सभी उद्योग-धंधों पर समान नहीं होता। कुछ उद्योग-धंधे इससे ज्यादा प्रभावित होते हैं और ये वही होते हैं जो मंदी की स्थिति के लिए जिम्मेदार होते हैं।

**6. शेयर बाजार में गिरावट** - शेयर बाजार के लुढ़कने को भी मंदी के एक कारण के रूप में लिया जाता है। शेयर बाजार के लुढ़कने से निवेशकों का विश्वास हिल जाता है, जिसके परिणामस्वरूप निवेश में कमी आती है। यह कमी शेयरों में निवेश तक ही सीमित नहीं रहती, बल्कि उन कंपनियों को मिलने वाले ऋण में कमी के रूप में भी सामने आती है, जिनके शेयर काफी गिर जाते हैं। इसका कारण यह है कि सामान्यत: यह माना जाता है कि जिन कंपनियों के शेयर गिर रहे हैं, उनका कार्यनिष्पादन ठीक नहीं है। इसलिए ऐसी कंपनियों को ऋण लेने में भी कठिनाई होने लगती है। इसके परिणामस्वरूप उनके उत्पादन में कमी होती है, जो मंदी की स्थिति बनने के आधार का काम करती है।

**7. सरकार की नीतियां** - सरकार की नीतियों को भी मंदी का कारण माना जाता है। यदि सरकार बचत का बजट बनाती है, भारी टैक्स लगाती है, कठोर लाइसेंस नीति अपनाती है, निर्यातों पर रोक लगाती है, विदेशी निवेश को प्रतिबंधित करती है या फिर उद्योग-धंधों को बढ़ावा देने की नीति नहीं अपनाती तो निश्चित तौर पर मंदी की स्थिति को आमंत्रित करती है।

**8. पेट्रोल के मूल्यों में भारी वृद्धि** - तेल के मूल्यों में होने वाली भारी वृद्धि को भी मंदी के लिए उत्तरदायी पाया गया है। इसके मूल्यों में अचानक और भारी वृद्धि होने से माल वहन की लागत बढ़ती है जो वस्तुओं और सेवाओं के मूल्यों को काफी बढ़ा देती है। साथ ही, उपभोक्ताओं की वास्तविक आय में भी

कमी लाती है क्योंकि उन्हें यातायात और परिवहन के लिए तो अधिक खर्च करना ही होता है, वस्तुओं और सेवाओं के मूल्यों में हुई वृद्धि के कारण भी अधिक व्यय करना पड़ता है। इस प्रकार, एक ओर वस्तुएं और सेवाएं मंहगी होती हैं और दूसरी ओर उन्हें खरीदने वालों की क्रय शक्ति में कमी आती है। ये दोनों कारण मिल कर उत्पादन पर विपरीत असर डालते हैं, जिससे अर्थव्यवस्था की अन्य गतिविधियां भी प्रतिकूल रूप से प्रभावित होती हैं और मंदी की स्थिति को पनपने का आधार मिलता है। अर्थशास्त्रियों ने उदाहरण सहित इस बात पर बल दिया है कि जब-जब पेट्रोल के मूल्यों में भारी वृद्धि हुई है, मंदी का असर देखने को मिला है। इसका एक कारण यह भी है कि पेट्रोल के मूल्यों में वृद्धि से परिवहन और यातायात के साधन तो मंहगे होते ही हैं, कार तथा अन्य वाहनों की मांग भी घटती है, जिससे उनका उत्पादन घटता है। वास्तव में, पेट्रोल के मूल्यों में वृद्धि से प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से समस्त व्यावसायिक गतिविधियां और व्यक्ति किसी न किसी रूप में प्रभावित होते हैं और अर्थव्यवस्था पर इसका व्यापक असर पड़ता है, जो मंदी के रूप में सामने आता है।

**9. युद्ध** - युद्ध के कारण भी मंदी उत्पन्न होती है क्योंकि इन पर सरकार को भारी राशि खर्च करनी पड़ती है। इसके लिए उसे भारी कर तो लगाने पड़ते ही हैं, कागजी मुद्रा के आवश्यकता से अधिक मुद्रण का भी सहारा लेना पड़ता है। निश्चित तौर पर इससे भारी मुद्रास्फीति को बल मिलता है। यह मुद्रास्फीति देश की करेंसी के आंतरिक और बाहरी मूल्य को पूरी तरह खत्म तक कर सकती है। इससे उत्पन्न विकट स्थिति से बाहर निकलने के लिए कई बार कई देशों को नई मुद्रा तक जारी करनी पड़ी है। मुद्रास्फीति किस प्रकार मंदी का कारण बनती है, इस पर ऊपर पहले ही चर्चा की जा चुकी है।

**10. जमीन-जायदाद के मूल्यों में भारी वृद्धि** - यह देखा गया है कि जब भी जमीन-जायदाद के मूल्य बहुत ऊपर चले जाते हैं और काफी समय तक नीचे नहीं आते तो इसके कारण मंदी की स्थिति बनने लग जाती है। ऐसा इसलिए होता है कि इस क्षेत्र में अरबों रुपया लगा होता है, पर बहुत ऊंची कीमतों के कारण जमीन-जायदाद की मांग में काफी कमी आने लगती है। मांग में कमी आने से इस बड़े उद्योग में नकदी की कमी महसूस की जाने लगती है। फलस्वरूप, ये अपने स्टाफ में कमी करने लगते हैं और जिन संस्थाओं से इन्होंने ऋण लिया होता है, उन्हें ऋण की चुकौती नहीं कर पाते। जमीन-जायदाद की खरीद-बिक्री और निर्माण कार्य से बड़ी संख्या में संस्थाएं और व्यक्ति जुड़े रहते हैं। उन सभी की आय में भी कमी आती है तथा आपूर्तिकर्ताओं के उत्पादन में कमी के कारण, बेरोजगारी का स्तर बढ़ता है, जिससे समग्र मांग में गिरावट आने लगती है और अर्थव्यवस्था मंदी की चपेट में आ जाती है।

**11. कानून और व्यवस्था की खराब स्थिति** - देश में कानून और व्यवस्था की बिगड़ी स्थिति के कारण भी मंदी उत्पन्न होती है क्योंकि इससे उद्योग-व्यवसाय पर विपरीत प्रभाव पड़ता है तथा उपभोक्ता का विश्वास भी डगमगाता है। भय के वातावरण में जहां व्यावसायिक गतिविधियां सफलतापूर्वक नहीं चलाई जा सकतीं, वहीं उपभोक्ता भी खरीद करने से बचते हैं। जिस देश की आंतरिक व्यवस्था ठीक नहीं होती, उस देश के विदेशी व्यापार पर तो प्रतिकूल असर पड़ता ही है, विदेशी निवेश पर भी बुरा असर पड़ता है। उस देश के बैंकों तथा अन्य वित्तीय संस्थाओं में रखा धन असुरक्षा के कारण अन्य देशों में जाने लगता है। इन सभी कारणों से अर्थव्यवस्था की सभी गतिविधियां बुरी तरह प्रभावित होती हैं तथा इसका परिणाम मंदी के रूप में सामने आता है।

**12. अन्य देशों की मंदी का असर** - वैश्वीकरण के इस युग में अन्य देशों में होने वाली आर्थिक गतिविधियों से कोई भी देश प्रभावित हुए बिना नहीं रह पाता। आयात या निर्यात पर बहुत ज्यादा निर्भर रहने वाले देश इससे तुरंत प्रभावित होते हैं। एक देश की मंदी उन सभी देशों को देर-सबेर प्रभावित करने लगती है, जिनसे उसका लेनदेन होता है। इसका सीधा सा कारण यह है कि वैश्वीकरण और उदारीकरण के कारण एक देश का व्यवसाय अन्य देशों पर पहले से कहीं ज्यादा निर्भर रहने लगा है। इन देशों में होने वाली आर्थिक और व्यावसायिक गतिविधियों से ये परस्पर प्रभावित होते हैं। अब तो एक देश की कंपनियां कई देशों में व्यवसाय करती हैं। जिन देशों में उनका कारोबार फैला है, उनमें से किसी में भी होने वाली गिरावट से अन्य देशों में उसके कारोबार पर असर पड़ना स्वाभाविक है।

जब किसी बड़े देश में मंदी शुरू होती है तो उसका असर

उन देशों पर बहुत तेजी से पड़ता है जो उसे किए जाने वाले निर्यात पर निर्भर होते हैं। साथ ही, बड़े देश /देशों से मिलने वाली आर्थिक सहायता और निवेश पर भी इसका बुरा असर होने के कारण वे भी मंदी की गिरफ्त में आने लगते हैं। इस प्रकार, यह देखा जा सकता है कि किसी देश की आंतरिक गतिविधियां तो मंदी के लिए जिम्मेदार हो ही सकती हैं, अन्य देशों में होने वाली मंदी के कारण भी उसे मंदी की स्थिति से गुजरना पड़ सकता है।

जैसा कि पहले उल्लेख किया जा चुका है, आर्थिक मंदी के एकदम सटीक कारणों की अभी भी खोज जारी है और ये रहस्य बने हुए हैं। पर, यह कहा जा सकता है कि उपर्युक्त कारणों में से एक या कई कारण मिल कर मंदी की स्थिति उत्पन्न करते हैं। मंदी के कारण/कारणों के संबंध में जिस एक बात पर सहमति है, वह यह है कि मंदी ऐसी घटना/घटनाओं की उपज है जिनसे अर्थव्यवस्था की सभी गतिविधियां एकसाथ या फिर एक-एक कर विपरीत रूप से प्रभावित होती हैं। इन घटनाओं में विशेष रूप से मुद्रास्फीति का बे-लगाम होना, ब्याजदरों में भारी वृद्धि तथा किन्हीं कारणों से उपभोक्ताओं के विश्वास में कमी आने से प्रभावी मांग में कमी आना शामिल है।

## मंदी का दुश्चक्र

मंदी के कारणों पर चर्चा करते समय हमने मंदी के दुश्चक्र पर भी नजर डाली है। तथापि, इसे निम्नानुसार स्पष्ट किया जा सकता है:-

- मंदी का सबसे बड़ा दुष्परिणाम व्यावसायिक लाभ में गिरावट के रूप में सामने आता है
- व्यावसायिक लाभ में कमी से उत्पादन में कमी आती है
- उत्पादन में कमी से कर्मचारियों की छंटनी होती है तथा कार्यरत कर्मचारियों के वेतन/भत्तों में कटौती होती है
- कर्मचारियों की छंटनी तथा वेतन में होने वाली कमी से वस्तुओं और सेवाओं के लिए उनकी मांग में कमी आती है
- वस्तुओं और सेवाओं की मांग में कमी के कारण उत्पादन में और कमी आती है।

इसके परिणामस्वरूप और कर्मचारी हटाए जाते हैं तथा कार्यरत स्टाफ के वेतन और भत्तों आदि में कटौती की जाती है, इससे वस्तुओं और सेवाओं की मांग में और कमी आती है, जिससे उत्पादन में और कमी करनी पड़ती है। इस प्रकार, अर्थव्यवस्था मंदी के ऐसे दुष्चक्र में फंस जाती है जिससे बाहर निकलना आसान नहीं रह जाता।

## मंदी के दुष्परिणाम

मंदी का दुश्चक्र ही इसका सबसे बड़ा दुष्परिणाम है। यदि इन दुष्परिणामों को हम गिनाना ही चाहें तो वे इस प्रकार होंगे:-

- व्यावसायिक लाभ में कमी आना
- बेरोज़गारी का तेजी से बढ़ना
- कंपनियों/फर्मों आदि क़ा एक के बाद एक बंद होना या अर्थक्षम न रह जाना
- बड़ी कंपनियों को कच्चा माल, पुर्जे, मशीनें, मजदूर आदि की आपूर्ति करने वालों का धंधा बंद होना या बहुत कम रह जाना
- कर्मचारियों के वेतन और भत्तों में कटौती, जिससे प्रभावी मांग में कमी आना
- नकदी की भारी कमी महसूस किया जाना
- जमीन -जायदाद की मांग में भारी कमी या कोई मांग न रह जाना
- ऋण के लिए कोई मांग न होना या बहुत ही कम मांग रह जाना, जिससे वित्तीय संस्थाओं के कारोबार पर विपरीत असर पड़ना
- ऋणों की वसूली न होने के कारण भी वित्तीय संस्थाओं के समक्ष संकट की स्थिति पैदा होना
- शेयर बाजारों का बुरी तरह गिरना जिससे देश के निवेश वातावरण पर बुरा असर पड़ना
- विदेशी निवेशकों का हतोत्साहित होना तथा अपनी पूंजी निकालना
- करेंसी के बाह्य मूल्य का गिरना
- निधियों की भारी कमी होना

- सभी स्तरों पर असुरक्षा की भावना पनपना

उपर्युक्त के अलावा मंदी के और भी दुष्परिणाम हो सकते हैं जिनमें युवा लोगों में निराशा की भावना फैलना तथा अपराधों का बढ़ना आदि शामिल हैं। इन सभी दुष्परिणामों के कारण मंदी की स्थिति भयावह लगती है और यह कहा जाता है कि मंदी से तो तेजी भली जिसमें हालांकि मंहगाई होती है लेकिन व्यवसाय और रोजगार तो चलते रहते हैं।

## मंदी के सुपरिणाम

अब तक हमने मंदी के दुष्परिणामों पर चर्चा की है। मंदी की स्थिति को कीन्स जैसे अर्थशास्त्रियों ने भयावह माना है क्योंकि इससे सभी आर्थिक गतिविधियां विपरीत रूप से प्रभावित होती हैं और यदि समय रहते सरकारी हस्तक्षेप नहीं किया गया तो यह उस दुष्चक्र में फंस जाती है, जिसका ऊपर वर्णन किया गया है। इसमें एक बार फंसने के बाद बाहर निकलना बहुत कठिन हो जाता है और उद्योग-धंधे पूरी तरह से चौपट होने लगते हैं तथा लोगों के भूखों मरने की नौबत आ जाती है। विश्व में मंदी को आर्थिक आतंक के तौर पर देखा जाता है क्योंकि आज के वैश्वीकरण के युग में यह एक-एक कर सभी देशों को अपनी चपेट में लेती जाती है। जिस मंदी का इतना भयावह रूप प्रस्तुत किया जाता है क्या उसके कुछ सुपरिणाम भी हो सकते हैं? यह कहा जाता है कि हर विनाश में नए जीवन की संभावनाएं छिपी होती हैं और उससे बेहतर जीवन को आधार मिलता है। यदि गहन दृष्टि से विचार किया जाए तो मंदी को भी ऐसा रचनात्मक विनाश माना जा सकता है जो बाजार अर्थव्यवस्थाओं के लिए प्रेरक बल का काम करता है। आइये देखें, यह कैसे होता है-

- इससे अर्थव्यवस्था की गलतियों को समझने और उनसे उबरने का अवसर मिलता है
- नीति-निर्माताओं को भी अपनी नीतियों की त्रुटियों को जानने-समझने तथा उन्हें दूर करने का मौका मिलता है
- मंदी से उबरने के लिए नई तकनीक और प्रौद्योगिकी विकसित की जाती है। इससे नई तकनीक और प्रौद्योगिकी को बल मिलता है, जो अर्थव्यवस्था को पहले की अपेक्षा अधिक गतिशील तथा आधुनिक बनाने में सहायक होता है। यदि मंदी की स्थिति नहीं आती तो संभवत: पुरानी तकनीक/ प्रौद्योगिकी जारी रहती और उसमें सुधार की दिशा में इतनी तेजी से कदम नहीं उठाए जाते। इस प्रकार, यह कहा जा सकता है कि मंदी नई तकनीक और प्रौद्योगिकी की ओर ले जाती है।
- मंदी से ग्रस्त उद्योग नए उत्पादों के लिए प्रयास करते हैं और उनमें विविधता लाने की कोशिश करते हैं ताकि उनके लिए मांग उत्पन्न की जा सके। अत: मंदी उत्पादकों को अपने उत्पादों में नयापन लाने के लिए तथा नए उत्पाद विकसित करने के लिए प्रेरित करती है।
- मंदी का एक सकारात्मक परिणाम यह होता है कि उत्पादन के साधनों का कुशल उपयोग होने लगता है ताकि लागत को घटाया जा सके। साथ ही, संसाधन वहां अंतरित होने लगते हैं जहां उनका उत्पादक कार्यों में उपयोग किया जा सकता हो। इससे उत्पादन के साधनों का बेहतर और कुशल पुनर्वितरण सुनिश्चित होता है।

हर विनाश में नए जीवन की संभावनाएं छिपी होती हैं और उससे बेहतर जीवन को आधार मिलता है। यदि गहन दृष्टि से विचार किया जाए तो मंदी को भी ऐसा रचनात्मक विनाश माना जा सकता है जो बाजार अर्थव्यवस्थाओं के लिए प्रेरक बल का काम करता है।

- मंदी से प्रभावित सभी देश एक-दूसरे की सहायता को आगे आते हैं, जिससे अंतर्राष्ट्रीय सहयोग और समन्वयन को बल मिलता है।
- मंदी से उबरने के लिए सरकारों और केंद्रीय बैंकों द्वारा सकारात्मक कदम उठाए जाते हैं। करों में छूट मिलती है, रोजगार के नए अवसर उत्पन्न किए जाते हैं तथा सरकार के स्तर पर संवेदनहीनता में कमी आती है।
- अकुशल उद्योग और फर्में या तो बंद हो जाती हैं या फिर अपने अस्तित्व के संघर्ष में स्वयं को कुशल बनाने के लिए हर संभव कदम उठाती हैं, जिनसे अर्थव्यवस्था पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता है।

इस प्रकार, यह देखा जा सकता है कि मंदी काफी हद तक अर्थव्यवस्था के ढीले पेंचों को कसने का काम करती है तथा

उसे बेहतरी की ओर ले जाने का साधन बनती है।

## मंदी से उबरने के उपाय

मंदी का दुश्चक्र चूंकि स्वचालित होता है, इसलिए यदि इसमें हस्तक्षेप नहीं किया जाए तो यह निरंतर बना रहता है और इससे बाहर निकलना लगभग असंभव हो जाता है। इसलिए यह आवश्यक ही नहीं, बल्कि अनिवार्य है कि इससे बाहर निकलने के लिए सुनियोजित प्रयास किए जाएं। ये प्रयास तीन स्तर पर किए जाते हैं, जो निम्नानुसार हैं:-

**सरकार के स्तर पर** - मंदी से बाहर निकलने के लिए सरकार की भूमिका बहुत महत्वपूर्ण हो जाती है। सरकार अपनी राजकोषीय नीति में बदलाव के जरिये मंदी की स्थिति से निपटने का प्रयास करती है। मंदी की स्थिति में सरकार से यह अपेक्षा की जाती है कि वह रोजगार उत्पन्न करने वाले कदम उठाए। प्रसिद्ध अर्थशास्त्री कीन्स तो यहां तक कहते हैं कि यदि तत्काल बड़ी योजनाओं को कार्यान्वित करना संभव न हो, तो गड्ढे खोदने और उन्हें फिर से भरवाने का काम ही शुरू कर दिया जाना चाहिए ताकि लोगों को रोजगार मिले और वे वस्तुओं और सेवाओं की मांग में वृद्धि करके व्यावसायिक क्रियाओं में जान फूंक सकें।

इस संबंध में सरकारें घाटे का बजट बनाने के अलावा जो अन्य कदम उठाती हैं, उनमें शामिल हैं-करों में छूट देना ताकि लोगों के हाथ में खर्च करने के लिए अतिरिक्त पैसा रहे, कंपनी करों में कमी करना ताकि उत्पादन की लागतों में कमी आए और उनकी मांग बढ़ सके, निर्यात उन्मुख उद्योगों के लिए विशेष सहायता पैकेज प्रदान करना, अनिवार्य आयातों को छोड़कर अन्य आयातों पर प्रतिबंध लगाना या उनमें कमी करना, जिन उद्योगों/कंपनियों की हालत बहुत खराब हो उन्हें प्रत्यक्ष आर्थिक सहायता प्रदान करना आदि।

इसके साथ ही, सड़कें, परिवहन, बांध, जलमार्ग जैसी आधारभूत सुविधाओं वाली परियोजनाएं भी सरकारों द्वारा शुरू की जाती हैं ताकि विकास के साथ-साथ लोगों को रोजगार मिल सके और मंदी के दुश्चक्र को तोड़ा जा सके। इस प्रकार, ऐसे समय सरकार का उद्देश्य ऐसे सभी कदम उठाना होता है जिनसे रोजगार के अवसर उत्पन्न हों तथा व्यावसायिक क्रियाओं को गति मिले।

**केंद्रीय बैंक के स्तर पर** - जहां सरकार राजकोषीय नीति के माध्यम से मंदी से बाहर निकलने के लिए प्रयास करती है, वहीं उसके पूरक के रूप में केंद्रीय बैंक मौद्रिक नीति के जरिये लोगों के हाथों में अधिक पैसा पहुंचाने और व्यवसाय तथा उद्योगों के लिए ऋण की उपलब्धता सुनिश्चित करने जैसे कदम उठाता है। इस हेतु केंद्रीय बैंक ब्याज दरों में कमी करता है, सांविधिक चलनिधि अनुपात तथा प्रारक्षित नकदी निधि अनुपात में कमी लाता है ताकि बैंकों के पास उधार देने के लिए अधिक पैसा उपलब्ध हो और वे पहले की अपेक्षा कम ब्याज दर पर ऋण दे सकें। इससे व्यवसाय के लिए कम दर पर अधिक ऋण उपलब्ध हो जाता है, जिससे व्यावसायिक गतिविधियों को सक्रिय बनाया जा सकता है। ऐसे समय में केंद्रीय बैंक खुले बाजार के कार्यकलापों के भाग के रूप में प्रतिभूतियां खरीदने का काम भी करता है ताकि लोगों/संस्थाओं के हाथ में अधिक पैसा पहुंचाया जा सके और वे वस्तुओं और सेवाओं की अधिक मांग करके व्यावसायिक कार्यों को गति दे सकें और अधिक उत्पादन तथा अधिक रोजगार का सिलसिला शुरू हो सके। जरूरत पड़ने पर केंद्रीय बैंक कागजी मुद्रा छाप कर मुद्रा की आपूर्ति बढ़ाने में भी संकोच नहीं करते।

**उद्योग/व्यवसाय स्तर पर** - मंदी से प्रभावित उद्योग भी इसका प्रभाव कम करने तथा मंदी की स्थिति से बाहर आने के लिए अपने स्तर पर कई कदम उठाते हैं, जिनमें अनावश्यक व्यय को कम करना, उत्पादन के साधनों का बेहतर तथा कुशल उपयोग करना, नई तकनीक अपनाना, उत्पाद में सुधार करना और विविधता लाना तथा विपणन संबंधी नीतियों में परिवर्तन लाना आदि शामिल हैं।

इस प्रकार, मंदी के दुश्चक्र को तोड़ने के लिए राजकोषीय नीति तथा मौद्रिक नीति दोनों का सहारा लिया जाता है। साथ ही, उद्योग भी अपने स्तर पर ऐसे कई कदम उठाते हैं, जिनसे वे मंदी के जाल से बाहर निकल सकें। ये सम्मिलित प्रयास विशेष रूप से वस्तुओं और सेवाओं की प्रभावी मांग में वृद्धि करने पर केंद्रित होते हैं ताकि व्यावसायिक क्रियाकलापों को नवजीवन मिल सके और अर्थव्यवस्था फिर से पटरी पर आ सके।

# मंदी के सामाजिक-आर्थिक प्रभाव

● डॉ.सुरेश कुमार
उप महाप्रबंधक (राजभाषा)
भारतीय स्टेट बैंक, मुंबई

मंदी आज का सबसे चर्चित विषय है। और हो भी क्यों न, वह आदमी को आर्थिक और सामाजिक दोनों मोर्चों पर सीधे प्रभावित जो करती है! मंदी सकल देशी उत्पाद यानी जीडीपी में गिरावट के रूप में, या कहिए, जीडीपी उत्पन्न करनेवाली आर्थिक गतिविधियों में गिरावट के रूप में प्रतिबिंबित होती है। जीडीपी वर्ष के दौरान किसी देश के समस्त अंतिम उत्पादों और सेवाओं का मूल्य होता है। यह आर्थिक गतिविधियों का सबसे व्यापक माप और आर्थिक निष्पादन का प्रधान संकेतक होता है। यह देश की भौतिक सरहदों के भीतर उत्पन्न उसके उत्पादन, आय और व्यय का कुल मूल्य होता है। भौतिक सरहदों के बाहर देश के लोगों या संपत्ति द्वारा विदेशों में सृजित आय और विदेशों द्वारा उस देश में सृजित की जाने वाली आय मापने के लिए सकल राष्ट्रीय उत्पाद यानी जीएनपी की अवधारणा काम आती है। जीएनपी या जीडीपी में से मूल्यह्रास यानी डिप्रीसिएशन या टूट-फूट यानी वियर-एंड-टियर का खर्च घटाए जाने पर निवल राष्ट्रीय उत्पाद यानी एनएनपी और निवल देशी उत्पाद यानी एनडीपी ज्ञात होते हैं। इन परस्पर-संबद्ध अवधारणाओं में से देश में जारी आर्थिक गतिविधियों के स्तर की माप के रूप में जीडीपी सबसे ज्यादा प्रयुक्त होता है।

> आर्थिक गतिविधियाँ व्यवसाय-चक्र यानी बिजनिस साईकल की चार स्थितियों अथवा चरणों से गुजरती है-मंदी यानी रिसेशन, महामंदी यानी डिप्रेशन, समुत्थान यानी रिकवरी और तेजी यानी बूम। जब जीडीपी और रोजगार घट रहे हों, तो अर्थव्यवस्था में मंदी कही जाती है जो गहरी होने पर महामंदी में तब्दील हो जाती है।

मंदी कहलाए जाने के लिए जीडीपी में होनेवाली गिरावट कम से कम छह महीने तक जारी रहनी जरूरी है। आम तौर पर वह नौकरियों में छँटनी, बढ़ती बेरोजगारी, फुटकर बिक्री में कमी और आवास एवं कार बाजारों में सुस्ती के रूप में नजर आती है। मंदी जीडीपी, रोजगार और कारोबार में भारी गिरावट की स्थिति है। सुनामी से पहले समुद्र के स्तर में गिरावट की तरह मंदी इस बात का प्राकृतिक चेतावनी-संकेत है कि आर्थिक सुनामी आ रही है।

परस्पर व्यापार करनेवाले देशों में मंदी एक-दूसरे की मंदी के कारण हो सकती है।

आर्थिक गतिविधियाँ व्यवसाय-चक्र यानी बिजनिस साईकल की चार स्थितियों अथवा चरणों से गुजरती है-मंदी यानी रिसेशन, महामंदी यानी डिप्रेशन, समुत्थान यानी रिकवरी और तेजी यानी बूम। जब जीडीपी और रोजगार घट रहे हों, तो अर्थव्यवस्था में मंदी कही जाती है जो गहरी होने पर महामंदी में तब्दील हो जाती है। जब उत्पादन और रोजगार बढ़ रहे हों, तो अर्थव्यवस्था समुत्थान के चरण में कही जाती है जो उत्पादन के पूर्ण रोजगार के स्तर पर पहुँचने तथा उद्योगों के अधिकतम क्षमता में काम करने पर तेजी में बदल जाता है। तेजी अक्सर मुद्रास्फीतिकारी अवधि होती है। तेजी की उच्चतम स्थिति 'चरम' यानी 'पीक' और निम्नतम स्थिति 'गर्त' यानी 'ट्रफ' कहलाती है। मंदी 'पीक' के गुजरने और 'ट्रफ' की ओर लुढ़कने पर शुरू होती है। ट्रफ से ऊपर की ओर उठने पर रिकवरी शुरू होती है जो समृद्धि अथवा पीक की ओर ले जाती है। लेकिन समृद्धि के शिखर पर पहुँचने पर पुन: गिरावट शुरू हो सकती है और अर्थव्यवस्था में पुन: मंदी आ सकती है।

मौजूदा मंदी के बारे में तीन बातें कही जा सकती हैं--

- एक, यह भारत में भली-भाँति मौजूद है।
- दूसरे, यह बाकी दुनिया में भी है।
- तीसरे, इसकी शुरुआत संयुक्त राज्य अमेरिका यानी यूएसए से हुई।

यूएसए में इसकी स्थिति पर प्रकाश डालते हुए पिछले वर्ष राष्ट्रपति-चुनाव से ठीक पहले 18 अक्तूबर 2008 को नोबल पुरस्कार-विजेता अर्थशास्त्री अमर्त्य सेन ने एनडीटीवी को दिए गए एक साक्षात्कार में कहा था, *''भरोसे की कमी ने यूएसए को मंदी में धकेल दिया है।''*

और यही वह वजह है, जिससे मंदी आती है। लोगों का भरोसा टूट जाता है जिससे वे अपनी गतिविधियों में कटौती कर देते हैं जिसके परिणामस्वरूप दूसरे भी अपनी गतिविधियों में कटौती कर देते हैं।

## वैश्विक प्रभाव

वैश्वीकरण के इस युग में कोई देश विश्व-अर्थव्यवस्था में आनेवाले उतार-चढ़ावों से अछूता नहीं रह सकता। यह सोचना अपरिपक्वता होगी कि यूएसए के संकट और मंदी का कोई असर विश्व के बाकी देशों पर नहीं होगा। पिछली सदी में कहा जाता था कि जब यूएसए छींकता है तो दुनिया को जुकाम पकड़ लेता है। वही हो रहा है, आज दुनिया भयंकर आर्थिक संकट में है। यूएसए और अन्य प्रमुख विकसित देशों में बड़ी सरकारी पहलों के बावजूद आर्थिक संकट वित्तीय क्षेत्र से व्यापक अर्थव्यवस्था तक तेजी से फैल रहा है और सभी क्षेत्रों के उत्पादन को प्रभावित कर रहा है। विश्व के जीडीपी का एक-चौथाई यूएसए का है और वहाँ किसी भी उल्लेखनीय स्लोडाउन के परिणामी-प्रभाव अन्यत्र पड़ने लाजिम हैं। विश्व के प्राय: सभी देशों में उसका असर महसूस किया जा रहा है।

प्रमुख अंतरराष्ट्रीय बैंकों को हुए नुकसान का असर विश्व के सभी देशों पर पड़ना स्वाभाविक है, क्योंकि इन बैंकों के प्राय: सभी देशों में निवेश-हित हैं।

आज पूरा विश्व अमेरिकी वित्तीय संकट की प्रतिक्रिया का सामना कर रहा है। भारत सहित अनेक देशों के केंद्रीय बैंक नकदी की स्थिति सुधारने के लिए कार्य कर रहे हैं। बाजारों की अस्थिरता के कारण लोग अपना पैसा शेयर बाजार में लगाने से डर रहे हैं।

जमीन-जायदाद का क्षेत्र यानी रियल इस्टेट सेक्टर वर्तमान वित्तीय संकट का एक अन्य शिकार है। गिरते बाजार का सामना करने के लिए रियल इस्टेट व्यवसायी बेहतर और आकर्षक प्रस्तावों और स्कीमों द्वारा संभावित खरीददारों को आकर्षित कर रहे हैं।

अमेरिका का बैंकिंग और वित्तीय क्षेत्र सबसे ज्यादा प्रभावित हुआ है। लीमन ब्रदर्स का दिवाला पिट गया। बाद में सितंबर 2008 में अमेरिकी सरकार ने फैनी मैक और फ्रेडी मेई को उसका अधिग्रहण करने के लिए तैयार किया। एआइजी मंदी का एक और शिकार बना, जिसने भारी नुकसान उठाया। एक अन्य विशाल बैंक मैरिल लिंच ने भी खुद को दिवालिया घोषित कर बैंक ऑफ अमेरिका के साथ लगभग 50 बिलियन डॉलर का सौदा कर लिया। अभी हाल ही में अमेरिका के 7 और बैंक मंदी की भेंट चढ़ गए हैं।

पूरे पश्चिमी यूरोप में स्थिति गंभीर हो गई है। यूके में एचएसबीसी, स्टैंडर्ड चार्टर्ड, रॉयल बैंक ऑफ स्कॉटलैंड और बार्कलेज़ जैसे बैंक पुन: पूँजीकरण की कोशिशों में लगे हैं और बैंक ऑफ इंग्लैंड उनमें ऋणों के जरिये नकदी झोंक रहा है। ब्रिटेन ने बंधक कंपनी ब्रैडफोर्ड एंड बिंगले का नियंत्रण अपने कब्जे में ले लिया है। बेल्जियम में सरकार ने फोर्टिस बैंक का आंशिक नियंत्रण अपने हाथ में ले लिया है, जिसकी देनदारियाँ बेल्जियम के जीडीपी से भी कहीं ज्यादा हैं। आइसलैंड में सरकार ने देश के तीन सबसे बड़े बैंकों का राष्ट्रीयकरण कर दिया है और डेनमार्क में नेशनल बैंक ने 1884 में स्थापित और ज्यादातर राजधानी क्षेत्र में शाखाएँ तथा रोसकिल्डे में मुख्यालय वाले विशाल रोसकिल्डे बैंक के वित्तीय संकट में पड़ने पर 24 अगस्त 2008 को उसका अधिग्रहण कर लिया। डॉयचे बैंक तक आर्थिक संकट की गिरफ्त में आ चुका है, जिसकी देनदारियाँ जर्मनी के जीडीपी की लगभग 80% हैं।

जापान में रियल इस्टेट कंपनियाँ गहरा आघात झेल रही हैं और क्षेत्रीय बैंकों को अशोध्य ऋण बट्टे खाते डालने को बाध्य कर रही हैं। दुबई का ऋण-संकट तो बिलकुल ताजा है, जहाँ की सरकारी कंपनी दुबई वर्ल्ड रियल इस्टेट बूम के दौरान लिए गए 80 अरब डालर का ऋण चुकाने में असमर्थ

हो गई है और जिसने 59 अरब डालर का ऋण चुकाने के लिए मई 2010 तक का समय माँगकर पूरी दुनिया में हड़कंप मचा दिया है। इससे न केवल बैंकों के ऋणों की वसूली रुक गई है, वरन् दुनिया भर के शेयर बाजार लुढ़क गए हैं। दुबई में प्रॉपर्टी मार्केट का बुलबुला फूटने से ये हालात बने हैं, जहाँ रियल इस्टेट बाजार अपने पीक से आधे से भी ज्यादा गिर गया है। चर्चित टीवी-कार्यक्रम 'बिग बॉस' के एक प्रतियोगी कमाल खान के एक बयान के अनुसार दुबई-स्थित उसका 100 करोड़ रुपए की कीमत का बंगला अब केवल 40 करोड़ रुपए का रह गया है।

मंदी का माहौल, नकदी की कमी, माँग में गिरावट, गिरती विकास-दर और बाजार की अनिश्चितता आर्थिक महामंदी के कुछ सर्वाधिक नजर आनेवाले पहलू हैं। सब-प्राइम ऋणों के चूककर्ताओं के छोटे-से मुद्दे से शुरू हुआ मामला अब एक वैश्विक चिंता का विषय बन गया है। कुछ लोगों का यह लालच लाखों-करोड़ों लोगों की परेशानी का सबब बन गया है।

## भारत पर प्रभाव

अमेरिका का मौजूदा संकट भारतीय अर्थव्यवस्था पर व्यापक प्रभाव डाल रहा है।

### *स्टॉक्स और शेयर*

पिछले तीन सालों में हमारा शेयर बाजार विदेशी संस्थागत निवेशकों (एफआइआइज़) द्वारा किए जानेवाले भारी निवेशों के चलते नई ऊँचाइयाँ छू रहा था। किंतु जब इन एफआइआइज़ की (ज्यादातर यूएस और यूरोप में स्थित) मूल कंपनियों ने सब-प्राइम समस्या के परिणामस्वरूप खुद को गंभीर ऋण-संकट में पाया, तो अपने देश में अपनी देनदारियाँ चुकाने के लिए इन निवेशकों के पास भारतीय शेयर बाजारों से पैसा निकालने के अलावा कोई चारा न बचा।

एफआइआइज़ भारतीय स्टॉक्स के मुख्य खरीददार थे और बाजार से उनके निकलने का परिणाम बाजार पर विपत्ति के रूप में आना अवश्यंभावी था। पिछले वर्ष तक खरीददारी कर रहे एफआइआइज़ अब भारत में अपने स्टॉक्स बेचने लगे। नतीजतन हमारा शेयर बाजार लुढ़ककर नीचे पहुँच गया।

शेयर बाजार अर्थव्यवस्था के उत्साह को प्रतिबिंबित करता है और कम लाभ का मतलब है कम लाभांश और इसलिए कम उत्साह। विदेशी कंपनियों द्वारा उच्च मुद्रास्फीति और नुकसानों की भरपाई के लिए अपनी निवेशित राशियाँ निकाल लेने से भारत के शेयर बाजार तेजी से नीचे लुढ़क गए।

### *डॉलर के मुकाबले रुपया*

चूँकि एफआइआइज़ द्वारा भारत में अपने स्टॉक्स बेचने से प्राप्त धन अपने देश को भेजे जाने से पूर्व डॉलरों में रूपांतरित किया जाना जरूरी होता है, अतः डॉलर की माँग अचानक बढ़ गई। चूँकि ज्यादा से ज्यादा एफआइआइज़ डॉलर खरीद रहे हैं, अतः रुपया डॉलर के मुकाबले अपनी ताकत खो रहा है। जब तक डॉलर की माँग ऊँची रहेगी, रुपया डॉलर के मुकाबले कमजोर होता रहेगा।

### *उधार*

वर्तमान वित्तीय संकट ने भारतीय उद्योगों को भी सीधे प्रभावित करना शुरू कर दिया है। पिछले कुछ सालों में कंपनियों द्वारा पूँजी जुटाने की दो ही सबसे पसंदीदा पद्धतियाँ थीं-शेयर बाजारों के जरिये और आसान ब्याज-दरों पर बाह्य उधार। शेयर बाजार खुद लहूलुहान हैं, इसलिए वहाँ से धन जुटाना संभव नहीं। जहाँ तक वैश्विक बाजारों से बाह्य उधारों का सवाल है, तो वह विकल्प भी आसान नहीं रहा।

### *विदेशी उधार*

पिछले एक साल में ही भारत ने विदेशी ऋणदाताओं से 29 बिलियन डॉलर का उधार लिया था और 34 बिलियन डॉलर विदेशी प्रत्यक्ष निवेश (एफडीआइ) प्राप्त किया था। अत्यधिक जोखिम-विमुख बन चुके विदेशी ऋणदाताओं के अंतरराष्ट्रीय पूँजी प्रवेश को प्रतिबंधित कर देने पर वित्तीय प्रणाली और रियल इकॉनॉमी दोनों क्षतिग्रस्त होंगी। एकाएक 9% की संवृद्धि असंभव लगने लगी है और अगर हम इस वर्ष

और अगले वर्ष भी 7% की संवृद्धि हासिल कर लें तो हमें खुश होना चाहिए।

*बैंकिंग*

हमारे बैंक नकदी-संकट का सामना कर रहे हैं जिससे बाजार में भी नकदी की कमी हो गई है। भारतीय बैंकिंग क्षेत्र मुश्किल दौर से गुजर रहा है। लीमन ब्रदर्स और मेरिल लिंच ने भारतीय बैंकों के स्टॉक्स में भारी रकम लगाई थी जो डेरिवेटिव्स में निवेश की गई थी। लीमन ब्रदर्स और मेरिल लिंच के गंभीर रूप से प्रभावित होने का आइसीआइसीआइ बैंक पर बुरा प्रभाव पड़ा, जिसने लीमन के बांड्स में निवेश किया था। यहाँ तक कि एक्सिस बैंक पर भी इसका दुष्प्रभाव पड़ा, पर छोटे स्तर पर।

दूसरी ओर भारत के पक्ष में एक सकारात्मक बात यह है कि भारतीय बैंक सब-प्राइम संकट के बुरे प्रभाव से कमोबेश सुरक्षित हैं। अगर हम भारतीय बैंकों के तुलनपत्रों पर एक सरसरी निगाह डालें तो संपार्श्विकीकृत कर्ज दायित्वों (सीडीओज) जैसे जटिल लिखतों में उनका निवेश प्राय: शून्य है। भारत में प्रमुख बैंकिंग प्रणाली और कार्य अभी भी सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों के हाथों में है, जो जरूरतमंद लोगों/कंपनियों को ऋण देने के मामले में अत्यधिक सतर्क हैं। इसलिए हमें भारत में सब-प्राइम संकट का दोहराव देखने को नहीं मिलेगा। हालाँकि भारत में बड़े अमेरिकी/यूरोपीय बैंक मौजूद हैं और हालाँकि कुछ भारतीय बैंकों (जैसे आइसीआइसीआइ बैंक) की कुछ विदेशी अनुषंगियों यानी सब्सिडियरीज का सब-प्राइम हानियों में हिस्सा है, लेकिन भारतीय बैंकिंग क्षेत्र के समग्र आकार की तुलना में उनकी मौजूदगी बहुत छोटी है। इसलिए कम से कम इस प्रमुख मोर्चे पर हमें चिंतित होने की जरूरत नहीं।

*ऋण लेने में कठिनाई*

मंदी में बैंक और वित्तीय संस्थान ऋण देने के कम इच्छुक होते हैं। फिलहाल यह समस्या समवर्ती ऋण संकट के कारण है जो ऋणों की उपलब्धता घटा रहा है। इसका मुख्य कारण नकदी का अभाव और आसान दरों पर धन की अनुपलब्धता है। वर्तमान संकट के कारण प्राय: सभी बैंकों और गैर-बैंकिंग वित्तीय कंपनियों ने वैयक्तिक और व्यावसायिक ऋणों का संवितरण रोक दिया है।

*व्यावसायिक लाभों में कमी*

वैश्विक बाजार से सीधे जुड़े उद्योगों के लाभों में कमी आई है और उनमें और कमी आ सकती है। सूचना प्रौद्योगिकी (आइटी), बिजनिस प्रोसेस आउटसोर्सिंग (बीपीओ), टेल्कॉम और इंजीनियरिंग, ऑटो उद्योग, विमानन और पर्यटन, वित्तीय सेवा, बुनियादी सेवा, निर्यात आदि सभी क्षेत्र मंदी की आँच झेल रहे हैं। उपभोक्ता-वस्तुओं की माँगों में कमी आई है। आवास और जमीन-जायदाद का क्षेत्र सबसे ज्यादा प्रभावित हुआ है।

## भारतीय जॉब मार्केट पर प्रभाव

बेरोजगारी मंदी का सीधा परिणाम होता है। आर्थिक गतिविधि में गिरावट से रोजगार में सीधी गिरावट दर्ज की जाती है। मंदी के दौरान यह प्रमुख चिंता होती है। अगर उत्पादन के लिए माँग गिरती है तो श्रम की माँग भी गिरती है। यह समस्या अक्सर मंदी से सर्वाधिक प्रभावित क्षेत्रों में केंद्रित होती है। उदाहरण के लिए वर्तमान माहौल में वित्त और आवास बाजार के जॉब विनिर्माण और स्वास्थ्य क्षेत्रों की तुलना में ज्यादा खतरे में हैं। आए दिन विभिन्न उद्योगों और कंपनियों में छँटनी और पिंक स्लिपों की खबरें सुनने को मिल रही हैं। लाखों लोगों की नौकरियाँ छूट चुकी हैं। नए कर्मचारियों की भर्ती की दर भी घट गई है, जिसने जॉब मार्केट की तसवीर और स्वरूप बिलकुल बदलकर रख दिया है।

इंडिया बजट डॉट एनआइसी डॉट इन पर दिए गए सरकारी आँकड़ों से इसका अंदाजा लगाया जा सकता है। श्रम और रोजगार मंत्रालय के अंतर्गत आनेवाले श्रम ब्यूरो द्वारा अक्तूबर-दिसंबर 2008 के दौरान करवाए गए 2,581 इकाइयों के नमूना-सर्वेक्षण पर आधारित 'भारत में आर्थिक मंदी का रोजगार पर प्रभाव' शीर्षक रिपोर्ट के अनुसार इस अवधि में लगभग आधे मिलियन कामगारों के रोजगार खत्म

हो गए। रत्न और आभूषण, परिवहन और ऑटोमोबाइल क्षेत्र सबसे ज्यादा प्रभावित हुए, जहाँ रोजगार में क्रमशः 8.58%, 4.03% और 2.42% गिरावट दर्ज की गई। वस्त्र क्षेत्र में 0.91% कामगारों की नौकरियाँ जाती रहीं। दिसंबर 2008 की तुलना में जनवरी 2009 में रोजगार की स्थिति का आकलन करने के लिए किए गए एक अन्य नमूना-सर्वेक्षण के अनुसार जनवरी 2009 में 1 लाख जॉब खत्म हो गए। वाणिज्य विभाग, वाणिज्य और उद्योग मंत्रालय द्वारा करवाया गया 402 निर्यातक इकाइयों का नमूना-सर्वेक्षण अगस्त 2008 से मध्य-जनवरी 2009 के बीच 1,09,513 लोगों की नौकरियाँ (प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष) खत्म होने की जानकारी देता है। वाणिज्य विभाग द्वारा पूर्व में (अगस्त-अक्तूबर 2008 की अवधि के लिए) करवाए गए विभिन्न क्षेत्रों, खासकर परिधान एवं वस्त्र, चर्म, इंजीनियरिंग, रत्न और आभूषण, हस्तशिल्प, खाद्य एवं खाद्य प्रसंस्करण, खनिज और समुद्री उत्पाद जैसे रोजगारोन्मुख क्षेत्रों की निर्यात से जुड़ीं 121 कंपनियों के नमूना-अध्ययन से 1,792 करोड़ रुपए के निर्यात-आदेशों और लगभग 65,507 नौकरियों के नुकसान का पता चला है। अगस्त 2008 से 9 फरवरी 2009 और अगस्त 2008 से 28 फरवरी 2009 की अवधियों के दो अन्य सर्वेक्षण क्रमशः 1,17,602 और 1,19,159 लोगों की नौकरियाँ (प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष) खोने की सूचना देते हैं।

हालाँकि बाद के सर्वेक्षण स्थिति में सकारात्मक बदलाव के संकेत देते हैं। श्रम ब्यूरो द्वारा जनवरी से मार्च 2009 के दौरान 21 केंद्रों पर 3,192 इकाइयों को लेकर करवाया गया एक सर्वेक्षण कुछ चुनिंदा क्षेत्रों में एक चौथाई मिलियन रोजगार बढ़ने की जानकारी देता है। रोजगार में बढ़ोतरी दर्ज करनेवाले क्षेत्रों में रत्न और आभूषण (3.08%), वस्त्र (0.96%), आइटी-बीपीओ (0.82%), हथकरघा-बिजलीकरघा (0.56%) और ऑटो-मोबाइल (0.10%) शामिल हैं। अभी हाल ही में 9 दिसंबर 2009 के इकनॉमिक टाइम्स में प्रकाशित ग्लोबल स्टाफिंग सर्विसिज फर्म मैनपावर द्वारा करवाया गया रोजगार संभावना सर्वेक्षण यानी इंप्लॉयमेंट आउटलुक सर्वे का आकलन तो और भी ज्यादा उत्साहवर्धक है। इस सर्वेक्षण के मुताबिक भारत में शुद्ध रोजगार संभावना (भर्ती से जुड़ी योजनाओं को मापने का मानक) वर्ष 2010 की पहली तिमाही के लिए 39 फीसदी है, जो सर्वेक्षण में शामिल 35 देशों में सबसे ज्यादा है। सर्वेक्षण में किए गए क्षेत्रवार विश्लेषण से पता चलता है कि भर्तियों का उत्साह सभी क्षेत्रों में देखने को मिल रहा है। सेवा, लोक प्रशासन, शिक्षा, खनन और निर्माण, बैंकिंग और वित्त, बीमा, रियल इस्टेट, थोक और खुदरा व्यापार क्षेत्रों में नौकरी तलाशनेवाले लोग 2010 की शुरुआत में भर्तियों को लेकर बढ़िया माहौल की उम्मीद कर सकते हैं। जुलाई-सितंबर 2009 की अवधि के दौरान भारतीय अर्थव्यवस्था में हुई 7.9% की संवृद्धि भी आशाजनक तसवीर पेश करती है।

## कैसे बचें?

फिर भी यह नहीं कहा जा सकता कि संकट पूरी तरह टल गया है। भारत भी वैश्विक वित्तीय संकट से न तो अछूता है, न सुरक्षित। इसलिए बाकी दुनिया की तरह हमें भी इससे बचने के उपाय करने होंगे। क्रेडिट कार्ड और वैयक्तिक ऋणों जैसे उच्च ब्याज-दर वाले कर्ज चुकाना, बंधक या आवास-ऋणों का अधिभुगतान, सस्ते पुनर्वित्त की तलाश, स्वास्थ्य बीमा करवाना, बाहर खाने या घूमने में कटौती, छोटी-छोटी मात्राओं में खरीददारी करने के बजाय बड़ी मात्रा में खरीददारी, धूम्रपान और मद्यपान का त्याग, खर्च में कटौती, नई पूँजी में निवेश करने से बचना, जॉब बदलने से बचना (क्योंकि कंपनियाँ अक्सर अंत में आनेवाले को पहले निकालती हैं) जैसे आम उपाय सभी के लिए उपयोगी हो सकते हैं।

मंदी को अपने रिश्तों में दरार पैदा न करने दें। आर्थिक मंदी रिश्तों में, यहाँ तक कि घरों में टूट का कारण भी बन सकती है। अमेरिका और यूरोप जैसे पश्चिमी देशों में यह सचमुच हो रहा है। वहाँ पराजय की भावना आम है और सभी आयु-वर्गों के लोग संबंध-परामर्शदाताओं, यहाँ तक कि मनोचिकित्सकों तक से संपर्क कर रहे हैं। वाशिंगटन एंड ली विश्वविद्यालय में अर्थशास्त्र के प्रोफेसर ऑर्थर एच गोल्डस्मिथ ने व्यावहारिक अर्थशास्त्र के एक अंग के रूप में बेरोजगारी के मनोवैज्ञानिक

प्रभाव पर शोध किया है। गोल्डस्मिथ बताते हैं कि मौजूदा आर्थिक संकट की वजह से रोजगार, सेवानिवृत्ति की तैयारी, बच्चों खासकर जो कॉलेज में पढ़ रहे या दाखिल होनेवाले हैं, की जरूरतों का इंतजाम आदि सभी स्तरों पर भय व्याप्त है और अमेरिकी समाज की भावनात्मक तंदुरुस्ती पर मंदी का गहरा असर पड़ने का डर है।

भारत में भी इस तरह का असर पड़ने की संभावना से इनकार नहीं किया जा सकता। भारत न तो आर्थिक असर से और न ही मनोवैज्ञानिक असर से अछूता रह सकता है।

क्या मैं नकार दिया जाऊँगा/नकार दी जाऊँगी? अब जबकि मेरी नौकरी छूट चुकी है, क्या मैं अभी भी 'उस' की नजरों में आकर्षण का केंद्र बना रह सकता/सकती हूँ? क्या हमें अभी शादी का खयाल छोड़ देना चाहिए? क्या हमें बच्चे की पैदाइश स्थगित कर देनी चाहिए?...इस तरह के सवाल युवक-युवतियों के मन में घुमड़ रहे हैं। सगाइयाँ और शादियाँ टूट रही हैं।

एक लिहाज से यह अच्छा भी है। जो रिश्ते केवल दूसरे की धन-दौलत पर आश्रित हैं, उनका उसकी धन-दौलत जाने के साथ ही खत्म होना अच्छा। किंतु अगर आप कठिन समय का सामना मिलकर कर सकते हैं, तो फिर मंदी क्या माने रखती है! आप व्यवसाय-चक्र के गर्त में होने पर भी खुद को जगत के शीर्ष पर महसूस करेंगे। बल्कि मंदी आप दोनों को कहीं ज्यादा नजदीक ले आएगी और आपके अटूट रिश्ते का आधार बनेगी। जब पैसे की तंगी हो और तनाव का स्तर ज्यादा, तभी पता चलता है कि आप दोनों सचमुच एक-दूसरे के लिए बने हैं या नहीं।

कुछ भी हो, मंदी को खुद पर हावी मत होने दीजिए। किसी मित्र से मिलिए। अपनी चिंताएँ बाँटिए। लोग हैं जो आपको सुनना चाहेंगे। लोग हैं जिन्हें आप सुन सकते हैं। अगर आप रिश्तेदारों, सहकर्मियों, दोस्तों और परिचितों के सामने नहीं खुलना चाहते तो आपको सुनने के लिए गैरसरकारी संगठन हैं। संबंध-परामर्श यानी रिलेशनशिप काउंसलिंग पर कई वेबसाइटें भी हैं, जो नि:शुल्क परामर्श देती हैं।

## संवेदनशील क्षेत्र को उधार - बैंक समूहवार*

(मार्च अंत के अनुसार)

(प्रतिशत)

| क्षेत्र / बैंक समूह | सरकारी क्षेत्र के बैंक | | निजी क्षेत्र के बैंक | | निजी क्षेत्र के पुराने बैंक | | विदेशी बैंक | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| | 2008 | 2009 | 2008 | 2009 | 2008 | 2009 | 2008 | 2009 |
| 1 | 2 | 3 | 4 | 5 | 6 | 7 | 8 | 9 |
| पूंजी बाजार # | 1.7 | 1.5 | 5.6 | 3.1 | 2.3 | 1.8 | 3.3 | 3.6 |
| स्थावर संपदा @ | 15.8 | 14.8 | 28.9 | 27.6 | 16.7 | 17.3 | 23.2 | 26.8 |
| पण्य | 0.0 | 0.0 | 0.0 | 0.0 | 0.7 | 0.7 | 0.1 | 0.0 |
| **संवेदनशील क्षेत्र को कुल अग्रिम** | **17.5** | **16.3** | **34.5** | **30.7** | **19.7** | **19.8** | **26.6** | **30.5** |

* : संबंधित बैंक समूह के कुल ऋणों और अग्रिमों के प्रतिशत के रूप में संवेदनशील क्षेत्र को दिए गए ऋण।

# : पूंजा बाजार के जोखिम में निवेश तथा अग्रिम दोनों शामिल हैं।

@ : स्थावर संपदा के जोखिम में प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष दोनों उधार शामिल हैं।

स्रोत : भारत में बैंकिंग की प्रवृत्ति एवं प्रगति संबंधी रिपोर्ट 2008-09

# आर्थिक मंदी बनाम आर्थिक पुनर्संरचना

● श्याम लाल गौड
महाप्रबन्धक (सेवानिवृत्त)
भारतीय रिज़र्व बैंक, पुणे

आर्थिक मंदी के अनेक और व्यापक अर्थ हैं जो अधिकांश अर्थशास्त्रियों द्वारा प्रकट/व्यक्त तकनीकी शब्दावली से मंडित होते हैं जिन्हें समझने और उनका अर्थ निकालने के लिए अच्छी माथापच्ची करनी पडती है। इस आलेख में आर्थिक मंदी का सामान्य अर्थ है किसी देश में आर्थिक गतिविधियों/कार्यकलापों में कमी हो जाना जो घटती बिक्री, बढ़ती बेरोजगारी, निवेश में गिरावट जैसे कारकों का परिणाम होती हैं, कुछ का अस्तित्व लोप हो जाता है। मंदी की मार बहुत भयावह होती है और अर्थव्यवस्था में विश्वास डिगा देती है। मंदी से सर्वाधिक प्रभावित आम आदमी होता है जो त्रस्तता का अनुभव कर असहायता की स्थिति में चला जाता है और पूरा अर्थतन्त्र-चरमराने लगता है।

क्यों?- दो शब्दों से बना यह शब्द विशाल मायने रखता है। किसी भी घटना के घटित होने का कोई तो कारण अवश्य होता है यह सत्य है लेकिन वर्तमान वैश्विक मंदी के संदर्भ में प्राकृतिक आपदाओं का कोई योगदान प्रतीत नहीं होता। मानव की भौतिक लिप्सा, सरल मुद्रा से सामाजिक प्रतिष्ठा अर्जन, संभ्रांत और अभिजात्य वर्ग में प्रवेश के लिए भौतिक सुविधाओं का जुटाना, उच्च रहन -सहन, तड़क-भड़क वाले परिधान, सितारा होटलों और क्लबों की रंगीन जिन्दगियां जीने के लिए मानव द्वारा हर तरह के हथकन्डे अपनाए जाने लगे हैं। संभ्रात अभिजात्य का मापदंड मात्र पैसा ही है यह छद्म विश्वास विश्वव्यापी आयाम ग्रहण कर चुका है और इसे पाने के लिए कुछ कर दिखाने के लिए, दौड में आगे निकलने के लिए हर कोई इस चूहा दौड़ में शामिल होना चाह रहा है। नवोन्मेष कर रहा है। फिर मानव की आदिम इच्छा दूसरों पर आर्थिक आधिपत्य थोपने की रही है वह भी इस दिशा में कार्य कर रही है। वस्तुत: ये सभी कारक/तथ्य ही आज की इस वैश्विक मंदी के मूल में रहे हैं।

> इस संकट का प्रारम्भिक स्रोत अमेरिका जो विश्व की सबसे उन्नत अर्थव्यवस्था मानी जाती है, से होना पाया जाता है। संकट के मूल में बैंकों/वित्तीय संस्थाओं द्वारा स्वप्रेरित अथवा अन्य दलालों द्वारा रचित कार्यप्रणाली के अन्तर्गत ऐसे आवास/अन्य ऋणों को प्रदान करने से हुई जहाँ ऋणकर्ता की न तो कोई निश्चित आय थी, न कोई नौकरी या संपत्ति।

### वैश्विक मंदी का विवेचन

वर्तमान वैश्विक मंदी मानव निर्मित है इस बारे में कोई दो राय नहीं हैं। इसके मूल में आगे निकलने की दौड़ में सभी सुरक्षा उपायों/समय सिद्ध मापदंडों को तिलांजलि देकर ऊपर और ऊपर जाने की मानवीय लिप्सा रही है। इस संकट का प्रारम्भिक स्रोत अमेरिका जो विश्व की सबसे उन्नत अर्थव्यवस्था मानी जाती है, से होना पाया जाता है। संकट के मूल में बैंकों/वित्तीय संस्थाओं द्वारा स्वप्रेरित अथवा अन्य दलालों द्वारा रचित कार्यप्रणाली के अन्तर्गत ऐसे आवास/अन्य ऋणों को प्रदान करने से हुई जहाँ ऋणकर्ता की न तो कोई निश्चित आय थी, न कोई नौकरी या संपत्ति। दूसरा मुख्य कारण, ज्यादा ग्राहक पटाने के लिए निर्धारित ब्याज दर से कम पर ऋण प्रदान करने की होड से बैंकों के पास संदिग्ध ऋणों की मात्रा लगातार बढ़ने लगी। ऐसी स्थिति में ऋणकर्ता की ऋण शोधन की क्षमता के बारे में सहज ही आकलन किया जा सकता है लेकिन यदि कोई जान बूझकर जीवित मक्खी निगलना चाहे तो उसे क्या कहा जायेगा। भीड़तन्त्र की अर्थव्यवस्था में जब ऐसा क्रम एक बार शुरू हो जाता है तो अन्य लोग/संस्थाएं बिना आगा-पीछा सोचे उसे अपनाने लगती हैं ताकि वे इस चूहा दौड़ में पिछड न जाएं। यह विष-वृक्ष विशाल से विशालतर होता गया और जब तक लोग/बैंक इसकी विकरालता को समझें, सतर्क हों, पानी सिर से गुजर चुका था। जब बैंकों ने इसके परिणाम आकलित करने शुरू किए उनकी चलनिधि सूख चुकी थी, व्यवस्था पंगु हो चुकी थी। बैंक न तो ऋण देने की स्थिति में

रह गये थे और न ही एक दूसरे को आवश्यकता के समय उधार देने-लेने में। ऐसी स्थिति में जो शृंखलागत परिणाम होते हैं वे भी आने शुरू हो गये। अविश्वास के इस वातावरण में अंतर बैंक लेन-देन लगभग बन्द हो गये, बाजार से पूंजी जुटाना लगभग असंभव हो गया। इस प्रकार की जोखिम के संकेत 2005 में ही दिखाई देने लग गये थे जो 2008 के आते आते चरम सीमा पर थे।

## संक्रामक रोग

वैश्वीकरण के संदर्भ में किसी एक देश का आर्थिक संकट उसी देश तक सीमित नहीं रह जाता। वह छूत की बीमारी की तरह जहाँ भी निरोधक उपाय कमजोर नजर आते हों फैल जाता है। यही वैश्विक आर्थिक मंदी के साथ हुआ। शीघ्र ही इसकी चपेट में यूरोप व एशिया के देश आने लग गये। वैसे भी अमेरिका जैसी सुदृढ़ मानी जाने वाली अर्थव्यवस्था को यदि छींक भी आ जाए तो अधिकांश देशों की अर्थव्यवस्था को जुकाम लगने में देर नहीं लगती। यही हुआ भी। बेरोजगारी बढ़ने, मांग में कमी, क्रय शक्ति में ह्रास जैसे कारणों से समग्र आर्थिक गतिविधियां शिथिल होने लगीं और संस्थाओं के एक के बाद एक विफल होने के समाचार अखबारों के मुखपृष्ठ पर छपने लगे।

## खाओ-पियो और मौज उड़ाओ ढाँचा ध्वस्त

उपभोग की अर्थव्यवस्था का मूल मंत्र ही खाओ-पियो मौज उड़ाओ और वर्तमान में जी कर खुश रहो है। वहां आवश्यकता के समय के लिए बचत को हीन नजर से देखा जाता है। जब ताश के पत्तों सदृश्य निर्मित यह ढाँचा ध्वस्त होने लगा तो सरकारें भी चेती और आनन फानन में कच्चे-पक्के सहायता राहत पैकेज पीडित संस्थाओं को संकट से उबारने के लिए बनाए जाने लगे। लेकिन करदाताओं की भारी राशि का इन सहायता पैकेजों में उपयोग भी अनेक प्रतिष्ठित और जमे हुए बैंकों को फेल होने से बचा नहीं पाया। धड़ाधड़ अनेक बैंक और वित्तीय संस्थाए इस महामारी की चपेट में आ गयीं। प्रकाशित अनुमानों के अनुसार कोई 25 के आसपास बैंक अमेरिका में ही डूब गये।

## भारत पर प्रभाव

वैश्वीकरण के इस दौर में विभिन्न देशों के आर्थिक कार्यकलाप अब स्थानिक स्तर पर ही सीमित नहीं रह गये हैं। अर्थव्यवस्थाएं अब एक दूसरे पर अंतर-आश्रित हैं। भारत पर भी इस वैश्विक मंदी का प्रभाव पडना स्वाभाविक था। भारत की विकास दर जो लगभग 9 प्रतिशत के आसपास चल रही थी 2009 की पहली तिमाही तक 6 प्रतिशत के आसपास आ गई। शेयर बाजार नीचे आने लगा, बेरोजगारी तथा उससे जुड़ी अन्य समस्याएं भी सिर उठाने लगीं। निर्यात व्यापार में भी निरन्तर कमी के संकेत मिलने लगे। यद्यपि वित्तीय स्थिति से जनित वैश्विक समस्याओं से भारत अछूता नहीं रहा लेकिन सौभाग्य से भारत में बैंकिंग के क्षेत्र की कठोर कार्य प्रणाली या केन्द्रीय बैंक की व्यावहारिक मुद्रा नीति, सरकारी सतर्कता को जिसे कभी कभी लोग रुढ़िवादी भी कहने से नहीं चूकते, ने स्थिति को संभाले रखा। यह बहुत बड़ा प्रश्न है अनुत्तरित ही रहे तो शायद अच्छा है। लेकिन आम धारणा यह है कि देश को रिज़र्व बैंक की नीतियों के प्रति कृतज्ञ रहना चाहिए जो इस वैश्विक संकट से देश को किसी हद तक बचाने में मददगार रही और चुनौतियों का सामना करने में सफल रही। कोई बडी वित्तीय संस्था या बैंक फेल नहीं हुआ और आर्थिक गतिविधियों में शिथिलता तो अवश्य आई लेकिन वे गिरकर संभलती रही और आगे चलने को तत्पर हैं। धराशायी नहीं हुई।

## आर्थिक पुनर्संरचना

भारत में वैश्विक मंदी का प्रभाव तो पड़ा है जो स्वाभाविक भी था क्योंकि विश्व की अधिकांश अर्थव्यवस्थाएं अब एक दसरे पर किसी न किसी रूप में परस्पर आश्रित हैं लेकिन सर्वथा कुन्द हो गई हों ऐसा नहीं हुआ। हम लडखडाए हैं गिरे नहीं। हमारी अर्थव्यवस्था के मूल आधार समय की कसौटी पर तथाकथित विकसित अर्थव्यवस्था की अपेक्षा अधिक खरे उतरे हैं, मजबूत साबित हुए हैं। देश में कोई बैंक फेल नहीं हुआ, कोई बडा सहायता पैकेज किसी वित्तीय संस्था या बैंक को संकट से उबारने या जीवनदान देने के लिए नहीं बनाया गया न उसकी आवश्यकता ही प्रतीत हुई। हां कुछ

चिंताएं अवश्य उभरकर आई हैं जो गंभीर रूप धारण कर अर्थतन्त्र को खोखला न बना दें ऐसे निरोधक उपाय किये जाने जरूरी होंगे और एक व्यावहारिक नीति अपनानी होगी।

## आर्थिक पुनर्संरचना-सार्थक सोच कारगर नीति-अन्धानुकरण नहीं

आर्थिक आधार को सुदृढ़ बनाए रखने के लिए जरूरी है कि विकास की मुख्यधारा का संयोजन बहुजन हिताय हो। मात्र धन उपलब्ध करा देने, आकर्षक योजनाएं बना देने से विकास के लक्ष्य प्राप्त नहीं किए जा सकते। कुछ वास्तविक चिंताएं हैं जिनका निराकरण एक व्यावहारिक/तर्कसंगत और विवेकपूर्ण नीति को अपनाने से ही किया जा सकेगा जो वस्तुत: पुनर्संरचना प्रयास के मुख्य अवयव होने चाहिएं उनमें से कुछ की चर्चा यहां की जा रही है।

### *बढ़ती महंगाई पर अंकुश*

सभी विकास और कल्याणकारी योजनाओं/ कार्यक्रमों और विकास प्रयासों को बढती मंहगाई अंगूठा दिखाने की क्षमता रखती है। यह दुश्चक्र की ऐसी शृंखला है जो सभी अनुमानों को ध्वस्त कर अवसाद का निर्माण करने की क्षमता रखती है। आप सहज कल्पना कर सकते हैं, 80 रुपये किलो की दाल (तूर दाल शायद सौ रुपये किलो से भी ऊपर), 20 रुपये किलो के गेहूँ या ज्वार जिनकी पिसाई भी 4 रुपये किलो, 38 रुपये किलो की चीनी, 35 रुपये किलो का गुड, 20 रुपये किलो के आलू, 20 रुपये किलो प्याज, 5 रुपये का एक नींबू कितने देशवासियों की क्रय क्षमता के भीतर होगा। इसे मौसमी प्रवृत्ति बताकर या कुछ आयात की व्यवस्था कर या प्राकृतिक आपदाओं की आड लेकर इसे न्यायोचित बताना या सामान्य बात कहकर टाल देना या इससे पल्ला झाड़ लेने की प्रवृत्ति या प्रयास घातक सिद्ध हो सकते हैं। सुरसा के मुँह की तरह बढ़ती महंगाई पर अंकुश लगाना सबसे बड़ा मुख्य प्रश्न नीति निर्धारकों के समक्ष होना चाहिए और उसके समाधान की व्यावहारिक सोच और उपाय भी। इस समस्या से निपटने के लिए अनुदान की नीति (या राजनीति) कोई अच्छी या स्थायी फल देने वाली नीति सिद्ध नहीं होगी।

### *बचत ढाँचा और मजबूत हो - प्रोत्साहन मिले*

तथाकथित विकसित अर्थव्यवस्थाओं में बचत प्रवृत्ति क्षीण से क्षीणतर होती जा रही है। उपभोक्ता प्रेरित अर्थतन्त्र में खाओ पिओ और मौज उड़ाओ का परिणाम सभी जग देख चुका है। यह विकृत सोच साबित हुआ है। कतिपय देशों की तर्ज पर या नकल पर सरकारी संसाधनों में वृद्धि के लिए बचत पर कर लगाना बहुत दुर्भाग्यपूर्ण होगा और ऐसा कोई भी कदम अर्थव्यवस्था के विकास में आम आदमी की सहभागिता कम करने वाला जन विरोधी कदम होगा। ऐसे संवेदनशील मामले में विदेशों के अंधानुकरण की बात नहीं सोची जानी चाहिए। बचत का उपयोग देश के विकास में अर्थतन्त्र को मजबूत बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता रहा है और करता भी रहेगा। इसे किसी विकलांग/विकृत सोच के अधीन अस्त-व्यस्त करना देश के हित में नहीं होगा। बचत पर किसी भी स्तर पर किसी भी चरण में कोई कर न लगे यह बचत के हित में एक समय सिद्ध तर्क रहा है। कतिपय लोगों द्वारा नई कर संहिता के नाम पर सुझाए गए उपाय जिनमें बचत राशि को परिपक्वता के चरण में कराधीन करने की बात कही गई है, सर्वथा अव्यवहारिक और घातक सोच सिद्ध होगी जो बचत और निवेश प्रवृत्ति को हतोत्साहित करेगी। एशिया के सफल अर्थव्यवस्था वाले अनेक देशों-चीन, सिंगापुर, मलेशिया इत्यादि में बचत दर गत शताब्दी से लगभग 40 प्रतिशत के आसपास चली आ रही है। भारत में भी यह अच्छी रही है। वस्तुत: भारतीयों के लिए बचत एक प्रवृत्ति नहीं जीवन शैली का अंग है। इसे तिरोहित करने का कुप्रयास नहीं किया जाना चाहिए। अमेरिका में जहां बचत दर किसी वर्ष शून्य पर आ गई थी के परिणाम सामने हैं जो चेतावनी सूचक हैं और अब वहां बचत को बढ़ावा देने की बात पर जोर दिया जाने लगा है। सहायता पैकजों पर पैसा लुटाने के लिए येन-केन प्रकरेण संसाधन जुटाने की प्रवृत्ति पुनर्संरचना का अंग नहीं होनी चाहिए।

### *अनुत्पादक व्यय-प्रदर्शन खर्चे घटाए जाएं- मूल तन्त्र विकास पर ज्यादा खर्च हो*

मूल तन्त्र विकास एक ऐसा निवेश है जो अधिकांश लोगों

के जीवन यापन को न केवल सरल बनाता है वरन् विकास के लाभों के समान वितरण की दिशा में उठाया गया उचित कदम सिद्ध होता है। सैर सपाटे, उच्च तारा होटलों में सम्मेलन/परिचर्चाएं, अनेक आयोगों/कमेटियों की रचना आदि अनेक ऐसे क्षेत्र हैं जो सर्वथा अनुत्पादक हैं जिन पर अंकुश लगाया जाना चाहिए। वैभव के प्रदर्शन पर किए जाने वाले व्यय जो वास्तव में सामाजिक दृष्टि से हेय होने चाहिए को बढ़ावा नहीं दिया जाना चाहिए और न ही उनको महिमामंडित कर उनका व्यापक प्रचार-प्रसार होना चाहिए। किसी श्रीमंत द्वारा अपने किसी संबंधी/मित्र को किसी अवसर पर उपहार में करोड़ो रुपयों की वस्तु देना, वैवाहिक समारोहों पर करोड़ों रुपये का अपव्यय करना आर्थिक दृष्टि से तो गलत परम्परा है ही सामाजिक समरसता के भी अनुरूप नहीं है।

## *गरीबों के देश में कुछेक लोगों के आसमान छूते वेतन-भत्ते-सुविधाएं-खुली छूट न हो*

कुछ विकसित अर्थव्यवस्था वाले देशों के लोगों ने अनेक वित्तीय उत्पादों का आविष्कार किया है जिन्हें वस्तुत: नया और आकर्षक नाम दिया गया है। लेकिन उनके मूल में सट्टेबाजी के माध्यम से त्वरित गति से पैसा बनाना रहा है। सट्टेबाजी वाले उत्पाद बाजार में एक बुलबुला बनाते हैं जो थोड़े समय बाद फूट जाता है और लाखों निर्दोष लोगों को बर्बाद करने के साथ ही अर्थतन्त्र को भी हिला देता है।

गत दिनों से एक सार्थक बहस का मुद्दा जन-चर्चा के लिए अखबारों में देखने को मिला है जिसमें कुछेक लोगों जिनमें तथाकथित उद्योग रत्नों द्वारा अपने आपको करोड़ों रुपये महीने के परिश्रमिक का दिया जाना उचित ठहराने के प्रयास किए गये हैं। इन पर तीव्र प्रतिक्रिया भी हुई है। ऐसी सुविधाओं के अभाव में प्रतिभा पलायन के खोखले दावे भी उठाये जा रहे हैं। जिस देश की बहुसंख्यक आबादी औसत 90 रुपये रोजाना पर जिन्दगी गुजर बसर करती हो वहां कुछ सौ लोगों को करोड़ों रुपये महीने का वेतन और अन्य सुविधाएं दिया जाना कोई भी विवेकशील व्यक्ति न्यायोचित नहीं ठहरा सकता। अगर हम सच का सामना करने से न कतराते हों तो कटु सत्य यही है कि इस प्रकार की प्रवृत्ति ने ही विश्व को मंदी की ओर धकेला है, भारत में इस सोच को पुनर्संरचना का अंग नहीं बनने दिया जाना चाहिए। कुछ गिने चुने लोग देश में अधिकांश संसाधनों पर कुंडली मार कर बैठ जाएं ऐसा न तो देश हित में होगा और न ही एक सार्थक प्रगतिशील नीति का अंग। हम अवश्य ही ऐसे अर्थतन्त्र की रचना की दिशा में नहीं बढ़ रहे, जहां किसी एक व्यक्ति की संपदा दुनिया के सैकड़ों देशों के घरेलू उत्पाद से भी अधिक हो।

## *तेल के मूल्यों में बेतहाशा वृद्धि-घरेलू उत्पादन बढ़े*

विश्व की अर्थव्यवस्थाओं को मंदी की और धकेलने में कच्चे तेल की कीमतों में बेतहाशा वृद्धि भी एक बडा कारण रही है। हमारे देश में तेल के बडे भंडार होने की संभावनाए हैं, कुछ का पता भी लगा लिया गया है उनका दोहन राष्ट्रहित में यथाशीघ्र किया जाना जाहिए। ऐसे महत्व के आधारभूत संसाधनों को कानूनी पचड़ों में उलझाकर किसी प्रकार का व्यक्तिगत लाभ उठाने या वर्चस्व स्थापित करने की प्रवृत्ति को सहन नहीं किया जाना चाहिए। विश्व के तेल मूल्यों में होने वाले बड़े उतार-चढ़ाव के प्रभाव को घरेलू उत्पादन को बढ़ावा देने से ही कम किया जा सकता है। विदेशों से आयात पर कम से कम निर्भरता तथा वैकल्पिक ऊर्जा स्रोतों में ज्यादा निवेश और उनका उचित विकास और दोहन पुनर्संरचना का अनिवार्य अंग होना चाहिए।

## *सट्टेबाजी की प्रवृत्ति पर अंकुश*

कुछ विकसित अर्थव्यवस्था वाले देशों के लोगों ने अनेक वित्तीय उत्पादों का आविष्कार किया है जिन्हें वस्तुत: नया और आकर्षक नाम दिया गया है। लेकिन उनके मूल में सट्टेबाजी के माध्यम से त्वरित गति से पैसा बनाना रहा है। सट्टेबाजी वाले उत्पाद बाजार में एक बुलबुला बनाते हैं जो थाड़े समय बाद फूट जाता है और लाखों निर्दोष लोगों को बर्बाद करने के साथ ही अर्थतन्त्र को भी हिला देता है। अर्थतन्त्र के हित में कुछ लोगों को अधिकांश के हितों से

खिलवाड करने की प्रवृत्ति वाले कार्यों की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए।

## *उचित अनुकूल ब्याज दरें- सामंजस्य*

ब्याज दरों का आर्थिक गतिविधियों पर सीधा प्रभाव पडता है। वास्तव में अर्थतन्त्र की ये मूल व्यवस्थाएं होती हैं। ब्याज दरों की न्यूनता और अधिकता दोनो ही घातक हैं। इनमें उचित सामंजस्य बनाए रखना अत्यंत महत्वपूर्ण है। देश की आवश्यकताओं के अनुरूप उचित ब्याज दर ढाँचा अपनाया जाना महत्त्वपूर्ण है।

## संकेतक पहचानिए

आर्थिक उपाय साधन हैं साध्य नहीं। इनका उचित संयोजन विकास प्रक्रिया को गति देने वाला होना चाहिए अवरुद्ध करने वाला नहीं। विकास की परिकल्पना भी एकांगी नहीं होनी चाहिए बहुजन हिताय होनी चाहिए। हमारा उद्देश्य कदाचित भी ऐसे अर्थतन्त्र की संरचना की कल्पना नहीं होना चाहिए जहां कुछेक व्यक्तियों के समूह के पास दुनिया की अनेक अर्थव्यवस्थाओं (शायद 140 राष्ट्रों) से भी अधिक संपदा/आर्थिक संसाधन संचित हों और वे उन पर कुंडली मारकर बैठ जाए और सभी आर्थिक नीतियों को प्रभावित करने की क्षमता अर्जित कर लें। आर्थिक पुनर्संरचना के लिए आज ऐसे अर्थशास्त्रियों की जरूरत है जो समय के संकेत पर अच्छी पकड़ रखते हों और जन साधारण की अपेक्षाओं के अनुरूप संरचना के सुधार में योगदान दे सकते हों। आर्थिक संरचना/पुनर्संरचना का आधार समय पर संकेतकों को पहचाना और उनके अनुरूप नीति निर्धारण करना होना चाहिए न कि आग लगने पर कुआँ खोदने वाली आपात नीति का अनुसरण करना।

---

### प्राथमिक चलनिधि का वास्तविक / संभाव्य निर्मोचन: सितंबर 2008 के मध्य से

(करोड़ रुपये में)

| | उपाय / सुविधा | राशि |
|---|---|---|
| 1. | सीआरआर में कटौती | 1,60,000 |
| 2. | एमएसएस प्रतिभूतियों की अनवाइंडिंग/वापसी-खरीद/उन्हें मुक्त करना | 1,55,544 |
| 3. | खुला बाजार परिचालन (खरीद) | 80,080 |
| 4. | मीयादी रिपो सुविधा | 60,000 |
| 5. | निर्यात ऋण पुनर्वित्त में वृद्धि | 26,576 |
| 6. | अनुसूचित वाणिज्य बैंकों (क्षेत्रीय ग्रामीण बैकों को छोड़कर) के लिए विशेष पुनर्वित्त सुविधा | 38,500 |
| 7. | सिडबी / एनएचबी / एक्जिम बैंके के लिए पुनर्वित्त सुविधा | 16,000 |
| 8. | एसपीवी के माध्यम से एनबीएफसी के लिए चलनिधि की सुविधा | 25,000 |
| 9. | **कुल (1 से 8)** | **5,61,700** |
| | *ज्ञापन:* | |
| | सांविधिक चलनिधि अनुपात (एसएलआर) में कटौती | 40,000 |

**टिप्पणी :**

1. मद 3 में 2009-10 की पहली छमाही के दौरान 80,000 करोड़ रुपए की प्रस्तावित ओएमओ खरीद की तुलना में 2009-10 के दौरान अब तक (27 जुलाई तक) ओएमओ की खरीद के 33,439 करोड़ रुपए शामिल है।

2. इसमें 5,000 करोड़ रुपए का एक ऑप्शन शामिल है।

**स्रोत** : वर्ष 2009-10 के लिए मौद्रिक नीति संबंधी वक्तव्य की पहली तिमाही की समीक्षा।

# विश्वव्यापी आर्थिक संकट का सकारात्मक पक्ष

● काज़ी मुहम्मद ईसा
सहायक महाप्रबंधक
भारतीय रिज़र्व बैंक, कोलकाता

हार्वर्ड अर्थशास्त्र प्रोफेसर केनेथ गलब्रेथ ने कहा था कि - इतिहास कई बार भयानक रूप से स्वयं को दोहराता है, और नष्ट एवं कष्ट का दर्द संभवत: स्वत: ही सर्वोत्तम विनियामक होता है। कल्पना कीजिए कि यदि सब-प्राइम संकट के समय भारत के समस्त बैंक और वित्तीय संस्थाओं का स्वामित्व अमरीका के पास होता तो क्या होता। संकट कोई भी हो, प्राकृतिक अथवा आर्थिक दोनों स्थितियों में विनाश के संकेत पहले से ही प्रकट होने लगते हैं। प्राय: यह कहा जाता है कि- ''यह तूफान आने से पहले का सन्नाटा है।'' संकेत जिस रूप में भी हो, यदि उसके अनुरूप सावधानी से कदम उठाए जाते हैं तो बहुत अधिक क्षति अथवा विनाश से बचाव किया जा सकता है। संकट प्राकृतिक हो अथवा आर्थिक दोनों के केंद्र में मनुष्य ही होता है। नुकसान आखिरकार मानव-समाज का होता है। आर्थिक योजनाएं यदि नियंत्रण से बाहर हो जाएं तो वे किसी भी प्रकार से अनुकरणीय नहीं होती हैं। अभी आठ वर्ष पूर्व विश्व में 21वीं सदी का पुरज़ोर स्वागत किया गया था और तरक्की व खुशहाली की दुआएं मांगी गई थीं। आर्थिक व्यवस्था को तेज-रफ्तार से विकास-पथ पर ले जाने के सपने संजोए गए थे तथा सुनहरे भविष्य की ओर, एक नई सुबह की तरफ सुरंग के उस पार एक नई रोशनी का ख्वाब बुना गया था। वर्तमान शताब्दी अभी घुटनों के बल आगे बढ़ी ही थी कि

> संकट प्राकृतिक हो अथवा आर्थिक दोनों के केंद्र में मनुष्य ही होता है। नुकसान आखिरकार मानव-समाज का होता है। आर्थिक योजनाएं यदि नियंत्रण से बाहर हो जाएं तो वे किसी भी प्रकार से अनुकरणीय नहीं होती हैं।

सितंबर, 2008 के अमरीकी सब-प्राइम संकट ने उसे धराशायी कर दिया। पूरा विश्व सकते में था और उदीयमान अर्थव्यवस्थाओं के समक्ष केवल प्रश्न विद्यमान थे। राजनीतिक और सामाजिक दासता का उल्लेख तो आमतौर पर किया जाता रहा है, किंतु आर्थिक दासता अथवा पराधीनता का यह दुश्चक्र ऐसा क्या है जो वालस्ट्रीट के ढहने पर समूचे विश्व को अपनी चपेट में ले लेता है। अमीर गिरता है तो खड़े होने में वक्त नहीं लगता, किंतु गरीब गिरता है तो उसकी कमर ही टूट जाती है। विकसित और विकासशील अर्थव्यवस्थाओं की दौड़ में बड़ा अंतर है। एक गिरते ही संभल जाती है तो दूसरी को गिरकर संभलने में समय लगता है क्योंकि दोनों की आर्थिक स्थिति भिन्न होती है। पिछले वर्ष की दीपावली इतनी रौशन नहीं थी जितनी कि इस साल। 15 सितंबर, 2008 को लीमन ब्रदर्स धराशायी हो गया, मेरिल लिंच, एआईजी तथा एचबीओएस औंधे मुंह गिर गए। अमरीका में जोखिम भरे आवास ऋण ने ऐसा संकट उत्पन्न किया कि बड़े से बड़े दिग्गज बैंक दिवालिया घोषित हो गए। अर्थव्यवस्था के वाहक स्वयं आर्थिक तंगी के शिकार हो गए जिसका परिणाम यह हुआ कि अमरीकी आर्थिक प्रणाली चरमरा गई। प्रतिदिन कोई न कोई बैंक फेल होते गए। लाखों लोगों की नौकरी चली गईं और लाखों के वेतन कम कर दिए गए। कंपनियां घाटे में चली गई और अनगिनत उद्योगों के दरवाज़ों पर ताले लटक गए। देखते-देखते अमरीकी बैंक प्रमुखों, कार्यपालकों तथा बैंकिंग प्राधिकारियों की नीदें उड़ गईं। कोई भी तरीका कारगर नहीं हो रहा था।

### विश्वव्यापी संक्रामक सब-प्राइम संकट: घटनाक्रम

वर्ष 2008 का वित्तीय संकट अचानक नहीं फूटा। इसके अनेक कारण थे। कई वर्षों से आग सुलग रही थी। सबसे

लीमन ब्रदर्स

प्रमुख वित्तीय बाज़ार की अस्थिरता थी। आर्थिक तबाही का यह महाप्रलय कुछ इस प्रकार से घटित हुआ:

अमरीकी अर्थव्यवस्था कमोबेश ऋण पर आधारित है। ऋण, विकास और रोज़गार दोनों को प्रोत्साहित करता है, बशर्ते उसका उपयोग विवेकपूर्ण तरीक़े से किया जाए। अमरीका में ऋण के उपयोग की स्थिति पर नियंत्रण समाप्त होता गया, मार्गेज दलाल, ऋण प्राप्त करने में बिचौलिये की भूमिका निभाते-निभाते उन ऋणों को फीस लेकर मार्गेज-समर्थित आस्तियों के रूप में अन्य निवेशकों को प्रदान करने लगे और इस प्रक्रिया ने गति पकड़ ली। ऐसे जोखिमपूर्ण मार्गेज सार्वजनिक होते गए तथा मार्गेज दलालों की चांदी हो गई। वे उसे निवेश के रूप में इस्तेमाल करते हुए अन्य एवं अन्य एवं अन्य को बेचते रहे और ग्राहकों को समायोजित मार्गेज दर (एआरएम) के लिए प्रोत्साहित किया। यह दर बाज़ार ब्याज दर से भी कम थी। हज़ारों लोगों ने ऋण लेकर आवास में इस उम्मीद पर निवेश कर दिया कि बाद में अच्छा खासा मुनाफा कमाया जाएगा। किंतु, ऐसा नहीं हुआ। अनेक मार्गेज बिचौलिये टाइम बम बन गए और मैदान छोड़कर गायब हो गए। आवास से प्रत्याशित लाभ लुप्त हो गया, मार्गेज-समर्थित आस्तियों (अधिकांशत: आवास ) के संबंध में उनके मालिक अपना ऋण चुकाने की स्थिति में नहीं रहे। मार्गेज पर दिए गए भारी ऋण वापस नहीं हुए, फलस्वरूप निवेशक संस्थाओं और कर्ज देने वाली वित्तीय संस्थाओं के खज़ाने ख़ाली हो गए और उनके पास खाली झोला लिए हुए ऋण वापसी की प्रतीक्षा करने के विकल्प के सिवा कुछ नहीं बचा। मार्गेज-समर्थित प्रतिभूतियों में भारी क्षति के कारण अनेक बैंकों एवं निवेशक फर्मों में धन-स्त्राव हो गया, हज़ारों बिल्डर और श्रमिक अपना कारोबार खो बैठे। आवास मूल्य इतने गिरे कि आवास-मालिक ऋण चुकौती के एवज में घरों की चाबियां ऋणदाताओं को देने को तैयार थे। इसके मद्देनज़र बैंकों ने अपनी उधार-आवश्यकताओं को थोड़ा सख्त बनाया भी, लेकिन तब तक काफी देर हो चुकी थी। अनेक बैंकों एवं वित्तीय संस्थाओं का विलय हो गया और कुछ को सरकारी बेल-आउट से राहत मिल गई, किंतु जिनका भाग्य ने साथ नहीं दिया वे बुरी तरह ध्वस्त हो गए। परिणाम यह हुआ कि नये ऋणों के स्त्रोत पूरी तरह विलुप्त हो गए।

अमरीका के दो बड़े वित्तीय संस्थानों–फेडरल नेशनल मार्गेज एसोसिएशन (फेनी मे) तथा फेडरल होम लोन मार्गेज कार्पोरेशन (फ्रेडी मैक) को सरकारी नियंत्रण में ले लिया गया। जिस समय वित्तीय संकट उत्पन्न हुआ अमरीका में आवास ऋण-बाज़ार का लगभग आधा हिस्सा इन दोनों संस्थाओं के पास था। ये दोनों संस्थाएं कमर्शियल बैंकों द्वारा वितरित आवास-ऋण को खरीदती थीं, उसे नया रूप देकर बीमा कंपनियों या दीर्घावधि के निवेश में इच्छुक अन्य वित्तीय संस्थाओं को बेचती थीं, इस प्रकार ये कमर्शियल बैंकों के लिए सेकंडरी बाज़ार उपलब्ध कराती थीं। फेनी मे छोटे आवास ऋण खरीदकर उसे बड़े निवेश-उत्पाद के रूप में बेचती थी जबकि फ्रेडी मैक बड़े ऋण लेकर ऐसा ही कार्य करती थी। उन्होंने लगभग 5 ट्रिलियन अमरीकी डालर मार्गेज दायित्व की गारंटी ली थी। आवास बाज़ार का संकट शुरू होने पर ये दोनों बैंक प्रतिदिन लाखों डालर की दर से धन गंवा रहे थे और वित्तीय बाज़ार से उनके पैर उखड़ रहे थे। अमरीका ने सरकारी खज़ाने से 800 अरब डालर का उत्प्रेरक पैकेज देकर उन्हें दिवालिया होने से बचा लिया, क्योंकि एक तो ये सरकारी थे, दूसरे इनमें चीन, जापान आदि देशों का भारी मात्रा में निवेश था। किंतु लीमन ब्रदर्स को सरकारी शरण न मिलने के कारण उसका दिवाला निकल गया और पूंजीवाद का एक प्रतीक नेस्त-नाबूद हो गया। बेअर स्टर्न्स और मेरिल लिंच दूसरे अमरीकी बैंकों के हाथों में चले

गए। अमरीका का वित्तीय संसार बिखर चुका था। निवेश बैंकों का मॉडल जटिल हो गया था, उनके वित्तपोषण का समय भी ठीक नहीं था। वे अल्पावधि की फंडिंग और दीर्घावधि का निवेश कर रहे थे। कम ब्याज दर वातावरण ने बाज़ार में प्रचुर मात्रा में ऋण उपलब्ध करा दिया था। जो लोग कर्ज चुका पाने की स्थिति में नहीं थे उन्हें भी आसान शर्तों पर ऋण प्राप्त हो रहा था। आवास क्षेत्र में कीमतों में बेतहाशा तेज़ी आ रही थी। निवेश बैंक इसमें डूबते जा रहे थे। दोष नियामक संस्थाओं का भी था। या तो उनके पास जटिल निवेश उपक्रमों को समझने वाले लोग नहीं थे या उनके पास इसके लिए समय नहीं था। दशकों से मुद्रास्फीति को नीचे लाने का दबाव तथा सहज मौद्रिक नीति, संकट का कारण बन गई। चलनिधि की कमी हो गई और आर्थिक मंदी की स्थिति बदतर होती गई। जॉन सी. बोगले, विश्लेषक के मतानुसार, यह गेटकीपर, लेखापरीक्षकों, निदेशक मंडल, वालस्ट्रीट विश्लेषकों तथा राजनीतिज्ञों की सबसे बड़ी असफलता थी।

## वैश्विक संकट का प्रभाव

लीमैन ब्रदर्स की असफलता से विकसित अर्थव्यवस्थाओं में भूचाल आ गया। यह संकट वैश्विक आर्थिक आघात के रूप में तेज़ी से फैल गया जिसका परिणाम यह हुआ कि अनेक यूरोपियन बैंक फेल हो गए, अनेक शेयर बाज़ारों के सूचकांक गिर गये, इक्विटी के बाज़ार मूल्य में भारी गिरावट आ गई। सभी देशों में यह अनिश्चितता व्याप्त हो गई कि इससे कितनी क्षति होगी और बैंक इस नुकसान को किस हद तक सहन कर पाएंगे तथा व्यवस्था में कितना जोखिम व्याप्त होगा और उसका विस्फोट किस रूप में कितनी मात्रा में होगा। इसका प्रभाव वित्तीय क्षेत्र से होता हुआ वास्तविक क्षेत्र तक फैल गया और उसने उपभोक्ता, निवेश, निर्यात एवं आयात क्षेत्र को बुरी तरह प्रभावित किया। इसका दायरा बढ़ता गया और व्यापार, वित्त एवं बाज़ार की विश्वसनीयता को निगल गया। विश्व के राजनीतिज्ञ, राष्ट्रों के वित्त मंत्री, केंद्रीय बैंकों के निदेशक ने इस भय को कम करने के लिए समन्वित प्रयास किए, किंतु संकट नहीं टला।

वाल स्ट्रीट

## शेयर बाज़ार पर प्रभाव

इस वित्तीय संकट से दुनिया के वित्तीय बाज़ार हिल गये, शेयर सूचकांक गोते लगा रहे थे। भारत में बॉम्बे स्टाक एक्सेंज का संवेदी सूचकांक जो 8 जनवरी, 2008 को 20873 अंक था जो गिरकर 15 सितंबर, 2008 को 7342 अंकों तक आ गया। बैंकिंग समेत सभी क्षेत्र के शेयर ज़मीन छूने लगे। वर्ष 2008-09 में भारतीय शेयर बाज़ार से 15 बिलियन अमरीकी डालर का बहिर्वाह हो गया जिससे भुगतान संतुलन के प्रति आशंकाएं बढ़ गईं जिसका परिणाम रुपए के अवमूल्यन तथा आरक्षित जमाराशियों के क्षरण के रूप में हुआ। सूचीबद्ध कंपनियों के लाभार्जन की संभावनाओं के कमज़ोर पड़ने से बाज़ार में विश्वास का माहौल डगमगा गया तथा बाज़ार की संवेदनशीलता को धक्का लगा।

मंदी की सुनामी से बचने के लिए कंपनियां नौकरियां खत्म करने लगीं और वेतन घटाने लगीं। विश्व में अक्तूबर 2008 से मार्च 2009 तक 6 महीने में लगभग 17 लाख लोग नौकरियों से हाथ धो बैठे। भारत में उद्योगों में काम करने वाले 10 लाख से अधिक लोगों को एक वर्ष के भीतर अपनी नौकरियां गंवानी पड़ीं।

## राजकोषीय घाटा

इस शताब्दी की शुरुआत से एक वर्ष पहले तक राजकोषीय घाटा कम होता रहा है। 2001-02 में घाटा जीडीपी का 6.2 प्रतिशत था, जो 2002-03 में 5.9 प्रतिशत हो गया, उसके बाद घटते-घटते 2007-08 में

जीडीपी का 2.7 प्रतिशत ही रह गया था। लेकिन मंदी के भंवर में फंसकर 2008-09 में घाटा 6.1 प्रतिशत हो गया जो इस वर्ष 6.8 प्रतिशत होने की संभावना है। इसका प्रभाव सरकार और रिज़र्व बैंक की नीतियों पर पड़ना निश्चित है।

## आयात-निर्यात पर प्रभाव

विदेशों में जब आर्थिक समस्याएं उत्पन्न होती हैं तो उनका प्रसार हमारे आयात-निर्यात के माध्यम से होता है और आयात-निर्यात हमारी अर्थव्यवस्था में मात्र 17 प्रतिशत ही है। अर्थात् हमारा विदेशी व्यापार, आर्थिक विकास दर (जीडीपी) का 17 प्रतिशत है जबकि चीन का लगभग 35 प्रतिशत और अमरीका का 100 प्रतिशत है। आयात-निर्यात और पूंजी निवेश से बाज़ार की गतिविधियां बढ़ती हैं, क्रय-शक्ति में वृद्धि होती है तथा रोजगार के नये अवसर पैदा होते हैं। सबसे अधिक प्रभाव देश के निर्यात पर पड़ा :

**देश की निर्यात स्थिति**

| महीना | निर्यात में वृद्धि (%) |
|---|---|
| अक्तूबर, 2008 | -12.1 |
| नवबंर, 2008 | -9.9 |
| दिसंबर, 2008 | 1.1 |
| जनवरी, 2009 | -15.9 |
| मार्च, 2009 | -33.3 |
| जून, 2009 | -27.2 |
| अगस्त, 2009 | -19.4 |

## विदेशी मुद्रा बाज़ार पर प्रभाव

भारतीय रिज़र्व बैंक की वार्षिक रिपोर्ट 2008-09 के अनुसार *''लीमन ब्रदर्स के विफल होने के पश्चात बाह्य परिवेश में अचानक बदलाव आ गया। भारतीय इक्विटी बाज़ार से भारी मात्रा में निधियों को निकाला गया जो ऋण की किल्लत का कारण बना और भारी मात्रा में पूंजी बाहर चली जाने से विदेशी मुद्रा बाज़ार पर भी दबाव बढ़ गया। भारतीय कंपनियों को विदेशों से मिलने वाला वित्त समाप्त प्राय हो गया और वे देशी बैंकिंग क्षेत्र की ओर रुख करने के लिए विवश हो गए।''*

## विकास दर पर प्रभाव

वैश्विक मंदी की पृष्ठभूमि में जहां अमरीका, ब्रिटेन और जापान की आर्थिक विकास दर ऋणात्मक हो गई वहीं भारतीय अर्थव्यवस्था की विकास दर (जीडीपी) प्रभावित होते हुए भी धनात्मक बनी रही।

**विकास दर (जीडीपी)**

| देश | जीडीपी (सकल देशी उत्पाद) वर्ष | | |
|---|---|---|---|
| | 2008 | 2009 | 2010 |
| अमरीका | 1.1 | -2.7 | 1.8 |
| ब्रिटेन | -1.6 | -4.4 | 0.3 |
| जापान | 0.0 | -6.0 | 0.8 |
| एशिया | 5.4 | 2.6 | 5.4 |
| भारत | 6.7 | 5.5 | 6.0 |

मंदी

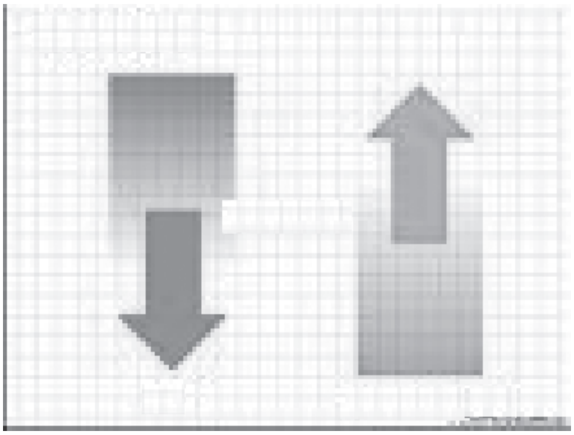

(जीडीपी) (बेरोजगारी)

## मौद्रिक व राजकोषीय उपाय

संकट की संक्रामकता ने उभरते जोखिमों और अनिश्चितताओं से निपटने की चुनौती खड़ी कर दी। मौद्रिक और राजकोषीय उपाय दोनों अनिवार्य हो गए ताकि बाज़ार को व्यवस्थित, वित्तीय स्थिरता को बनाए रखा जा सके तथा मंदी के प्रभाव को कम किया जा सके। राजकोषीय उपाय के रूप में सरकार ने एफआरबीएम को अस्थायी रूप से हटा लिया। केंद्रीय बैंक को वर्ष 2009 के दौरान दो बार परस्पर

विरोधी मौद्रिक नीति अपनानी पड़ी। वर्ष की पहली छमाही में अंतरराष्ट्रीय स्तर पर वस्तुओं और खाद्य मूल्यों में आई तेजी के दबाव में मुद्रास्फीति में तीव्र वृद्धि हुई जिसके लिए सख्त जवाबी एवं आक्रामक मौद्रिक नीति का सहारा लेना पड़ा, वहीं दूसरी छमाही में बाज़ार की सहज स्थिति बहाल करने के लिए निभावकारी मौद्रिक नीति ने ब्याज दरों को कम किया और पर्याप्त चलनिधि की उपलब्धता सुनिश्चित की। अत: सतर्क मौद्रिक रुझान का समग्र परिदृश्य अब तक विवेकपूर्ण एवं समर्थनकारी रहा है।

## नीति-निर्माता के समक्ष चुनौती

किसी भी राष्ट्र की आर्थिक गतिविधियों को मापने की अनेक विधियां हैं जैसे – उपभोक्ता व्यय, विनिमय दर, जीडीपी, प्रति व्यक्ति आय, जीएनपी, ब्याज दर, राष्ट्रीय-ऋण, मुद्रा-स्फीति की दर, बेरोज़गारी और व्यापार संतुलन। आर्थिक मंदी केवल आर्थिक मुद्दा नहीं है बल्कि अब राजनीतिक एवं सामाजिक मुद्दा बन गया है। प्रत्येक आर्थिक संकट इस बात का पर्दाफाश करता है कि वर्तमान प्रणाली की सीमाएं क्या हैं, वैयक्तिक लाभ के लिए प्रणाली का दुरुपयोग करने वाली बाज़ार-संस्थाओं का चेहरा सामने आ जाता है और इस प्रक्रिया में नये कारोबारी अवसर भी खुलते हैं। अत: नीति-निर्माताओं के लिए सबसे बड़ी चुनौती यह होती है कि वैश्वीकरण के फायदे किस प्रकार से हासिल किए जाएं और जोखिमों को कैसे नियंत्रित रखा जाए।

वित्तीय संकट का साया जब मंड़राने लगता है तब सबसे प्रमुख चिंता उसके प्रतिकूल प्रभाव से बचने के लिए उपाय ढूंढना, कार्रवाई करना होता है, किंतु यदि अर्थव्यवस्था संकट के चंगुल में फंस चुकी होती है तब यह मुद्दा प्रमुख हो जाता है कि ''संकट प्रबंधन'' को किस प्रकार से कारगर बनाया जाए। नीति-निर्माताओं के समक्ष संकट दुधारी तलवार की तरह प्रस्तुत होता है। एक समस्या उसे रोकने की होती है तो दूसरी बिगड़ती स्थिति को बहाल करने के लिए युक्तिपरक कदम उठाने की। समस्या की ये दोनों स्थितियां किसी एक बिंदु पर नहीं रुकतीं। दोनों को एक ही समय में नियंत्रित करने हेतु सतत् निगरानी एवं कार्रवाई की प्रक्रिया साथ-साथ अपनानी पड़ती है।

## आर्थिक बेल-आउट

आर्थिक बेल-आउट का उद्देश्य जोखिमपूर्ण मार्गेज-समर्थित प्रतिभूतियों को वित्तीय संस्थाओं से खरीदना था ताकि बैंकों के पास व्यक्तियों एवं कारोबार को उधार देने के लिए धन मुहैया हो जिससे आर्थिक गतिविधियां आगे बढ़ती रहें। अमरीका ने 800 अरब डालर का उत्प्रेरक पैकेज घोषित करके अमरीकी अर्थव्यवस्था को मंदी को गर्त से निकालने का सफल प्रयास किया। भारत ने भी उत्प्रेरक पैकेज का सहारा लिया है और सरकार ने 30 अरब डालर के तीन उत्प्रेरक पैकेज जारी करके अर्थव्यवस्था में चलनिधि की कमी न होने एवं बाज़ार में व्याप्त मंदी की आशंका को सीमित करने के प्रति अग्रिम कार्रवाई की ताकि आर्थिक मंदी की संक्रामकता विकराल होने से पूर्व उस पर अंकुश लगाया जा सके। चीन ने भी 570 अरब डालर के पैकेज का एलान किया है। भारतीय रिज़र्व बैंक ने ब्याज दरों में लगातार कमी करते हुए कर्ज सस्ता करने की कोशिश की। सरकार ने उत्पाद-शुल्क और सेनवैट में 4-4 प्रतिशत की कटौती की।

भारत ने भी उत्प्रेरक पैकेज का सहारा लिया है और सरकार ने 30 अरब डालर के तीन उत्प्रेरक पैकेज जारी करके अर्थव्यवस्था में चलनिधि की कमी न होने एवं बाज़ार में व्याप्त मंदी की आशंका को सीमित करने के प्रति अग्रिम कार्रवाई की ताकि आर्थिक मंदी की संक्रामकता विकराल होने से पूर्व उस पर अंकुश लगाया जा सके।

## वैश्विक आर्थिक संकट के सकारात्मक पक्ष

कई बार खराब परिस्थितियां अच्छे प्रभाव छोड़ती हैं, इसलिए इस संकट से विभिन्न देशों ने जो खामियाजा भुगता है उससे सबक़ लिया जाना आवश्यक है। प्रश्न यह पैदा होता है कि क्या खराब परिस्थितियां सकारात्मक प्रभाव पैदा करती हैं? अब जब आर्थिक संकट उत्पन्न हो ही गया है तो उसकी रोकथाम कैसे की जाए, क्या लोग यह मान बैठे हैं कि संकट के कारण उन पर आसमान टूट पड़ा है। आर्थिक संकट सुनने

में अत्यंत भयावह लगता है किंतु भाग्य भी उन्हीं का साथ देता है जो विपरीत परिस्थितियों का मुक़ाबला करते हैं। आर्थिक संकट सामान्यतया दु:खद होता है। लोगों की नौकरी छूट जाती है, कारोबार सिमटने लगते हैं, उपभोक्ताओं की बचत समाप्त हो जाती है और निवेश के मूल्य गिरने लगते हैं। इसके बावजूद कुछ लोगों का मानना है कि इस प्रकार से अर्थव्यवस्था स्वत: सुधार करती है।

अंतरराष्ट्रीय व्यापार और निवेश एक जटिल तंत्र है और इसकी क्रियाएं एवं प्रतिक्रियाएं आर्थिक उतार-चढ़ाव, प्रबंधन-क्षमता, लोक-नीति मुद्दों तथा अन्य कारकों पर निर्भर होती हैं। निवेशों का अंतरराष्ट्रीयकरण एक सुपरिभाषित कार्पोरेट रणनीति की मांग करता है। इस रणनीति का ध्येय होता है संसाधन तथा ज्ञान व कौशल प्राप्त करना, बाज़ार-प्रवेश हासिल करना तथा विभिन्न कारकों के फायदे उठाना। आर्थिक संकट की स्थिति में इस बात पर फोकस करना आवश्यक होता है कि निवेशक अपने वर्तमान परिचालनों को और अधिक युक्तिपरक बनाएं या फिर विश्व बाज़ार में अपनी पहुंच का दायरा बढ़ाएं। मौजूदा वैश्विक संकट ने यह सिद्ध कर दिया है कि विश्व में कोई भी बाज़ार पूरी तरह मुक्त अथवा आत्मनिर्भर नहीं है।

विश्व के सभी देश, पृथक रूप से अथवा सामूहिक रूप से इस संकट को रोकने का प्रयास कर रहे हैं। विश्व अर्थव्यवस्था की तसवीर धुंधली होने एवं समूचे विश्व में निराशाजनक वातावरण के बावजूद होने वाले नुकसान को कम करने की पहल तेज़ हो गई है।

## अंतरराष्ट्रीय एकाधिकार को समाप्त करना

वित्तीय संकट का सबसे बड़ा सकारात्मक प्रभाव यह पड़ा है कि अंतरराष्ट्रीय वित्तीय आसमान पर एकल वर्चस्व टूटा है। इसका एक महत्वपूर्ण प्रभाव यह होगा कि एक ऐसी बृहत् वित्तीय संस्था का एकाधिकार समाप्त हो जाएगा जिसने विश्व के स्टाक बाज़ार पर दशकों से एकछत्र राज किया है। वाल-स्ट्रीट, जिसे विश्व का शक्तिशाली निवेश-हाउस माना जाता था, उसे दिवालिया माना जाने लगा और निवेशक अपने धन के स्वाहा हो जाने के भय से उसमें निवेश करने से कतराने लगे। इसका परिणाम यह हुआ कि यूरोप और एशिया तथा खाड़ी देशों के कुछ क्षेत्र निवेश के बेहतर केंद्र के रूप में उभरे हैं जो विश्व की वित्तीय प्रणाली में अधिक स्थिरता लाने में सहायक होंगे। यह बदलाव इसलिए महत्वपूर्ण रहा है कि संकट के बाद की स्थिति में यह अंतरराष्ट्रीय संबंधों को नई शक्ल प्रदान करने में मददगार साबित होगा। बाज़ार में एकाधिकार की शक्तियों को सीमित किया जाए, विशाखीकरण को प्रोत्साहित किया जाए तथा असुरक्षित वित्तीय उत्पादों को तरजीह न दी जाए।

## वर्तमान वित्तीय नियमों का पुन: परीक्षण

आर्थिक संकट ने विश्व स्तरीय वित्तीय संस्थाओं के लिए यह अनिवार्य बना दिया है कि अपने क़ानून एवं नियमों में परिवर्तन लाएं, उन्हें पुन: तरतीब दिया जाए। नियमों एवं विनियमों को इतना कठोर किया जाए कि विषम परिस्थितियों में भी जोखिमों का प्रलयकारी प्रभाव न पड़े। वित्तीय आपदा ने विश्व के राष्ट्रों को इतना सावधान कर दिया है कि भविष्य में विश्व की वित्तीय एवं बैंकिंग प्रणाली निश्चित रूप से नियंत्रित उपायों, पारदर्शिता तथा वैश्विक अभिशासन द्वारा परिचालित होगी।

## नियंत्रित बाज़ार की आवश्यकता

वर्तमान संकट ने इस तथ्य को मिथ्या सिद्ध कर दिया है कि बाज़ार अपनी शक्तियों द्वारा स्वयं नियंत्रित होता है। यह स्पष्ट हो गया है कि यदि बाज़ार को अनियंत्रित छोड़ दिया जाए तो बहुत से खिलाड़ी उसका नाजायज़ फायदा उठाते हैं तथा व्यापार-संस्कृति के विरुद्ध कार्य करते हैं। अत: बाज़ार पर नियंत्रण आवश्यक है जिससे नवोन्मेष एवं उद्यमिता की प्रक्रिया बाधित न हो।

## शक्तियों का आत्मविश्लेषण/प्रणालीगत जोखिम

अंतरराष्ट्रीय आर्थिक संकट के समय फर्मों के लिए यह आवश्यक हो जाता है कि वे राष्ट्र में निवेश के अवसर एवं फर्म की शक्ति दोनों के बीच संबंधों का पुख़्ता विश्लेषण करें तथा परिचालनों के प्रभावी नियंत्रण का मूल्यांकन, विकास का सृजन तथा प्रतिस्पर्धात्मक लाभ प्राप्त करने को

प्राथमिकता दें। इसका फायदा यह होगा कि विपरीत परिस्थितियों में भी वे बाज़ार में खड़ी रह सकेंगी। साइमन जानसन का कथन है कि-''प्रणालीगत जोखिम को सीमित करने के लिए उन संस्थाओं को तोड़ दिया जाए जो बहुत बड़ी हैं और फेल हो सकती हैं।'' ए. माइकल स्पेंस एंड गार्डन ब्राउन का मत है कि ''पूर्व चेतावनी प्रणाली स्थापित की जाए जिससे प्रणालिगत जोखिम का पता लगाया जा सके।''

## वित्तीय कारोबार - अनुचित प्रथाओं/झूठे विज्ञापन पर रोक

वित्तीय कारोबार के अनुचित तरीकों एवं प्रथाओं के लिए कड़े मानदंड बनाए जाएं। सस्ती दर पर अथवा प्रलोभनकारी ऋणों की रोकथाम की जाए। झूठे विज्ञापनों तथा बाज़ार की गतिविधियों के प्रतिकूल कार्य कर रही संस्था अथवा व्यक्तियों पर पाबंदी लगाई जाए जिससे अनुचित तरीकों को प्रोत्साहन न मिले।

## वित्तीय नवोन्मेष के अनुरूप विनियामक ढांचा

विश्लेषकों का यह मत है कि वित्तीय क्षेत्र में जिस तेज़ी से परिवर्तन हो रहा है और नए उत्पाद एवं नए तरीके ईजाद किए गए हैं, उस गति से विनियामक ढ़ांचे में परिवर्तन नहीं किया जा रहा है जिससे नियंत्रण पर पकड़ कमज़ोर हो गई है। डेरिवेटिव्स एवं आफ-बैलेंसशीट वित्तपोषण के महत्व को विनियामक ढांचे में स्थान देना होगा तथा उसके लिए अलग से मज़बूत क़ानून बनाने होंगे।

## नियमित सर्वेक्षण

अंतरराष्ट्रीय आर्थिक परिदृश्य का नियमित रूप से सर्वेक्षण किया जाना, उसके निष्कर्षों पर गंभीरतापूर्वक विचार करना तथा आवश्यकता के अनुरूप उन्हें कार्यान्वित करना जरूरी हो गया है। अर्थव्यवस्था की समग्र स्थिरता के लिए बैंकों की कारोबारी रणनीति और कार्ययोजना की समीक्षा एवं गुणवत्ता पर अधिक ध्यान दिया जाना चाहिए। सर्वेक्षण, प्राय: प्रणाली में पनप रही अव्यवस्थाओं का पूर्व आभास कराने में मदद करते हैं।

## विश्व वित्त अभिशासन

इस संकट से एक आवश्यकता जो स्पष्ट रूप से उभरकर सामने आई है वह है विश्व वित्त के अभिशासन के लिए गंभीर चिंतन की आवश्यकता। वर्तमान संकट का मुख्य कारण अपर्याप्त विनियमन एवं वित्तीय कार्यकलापों का अपर्याप्त पर्यवेक्षण था। एशियाई संकट के बाद से यह अनिवार्य मानदंड बन गया कि वित्तीय उदारीकरण के साथ-साथ कठोर विवेकपूर्ण विनियमन एवं पर्यवेक्षण हो। इस सिद्धांत को विश्व की अनेक विकासमान अर्थव्यवस्थाओं द्वारा अपनाया गया किंतु अमरीका में तीव्र उदारीकरण प्रक्रिया को अविनयमन एवं कमज़ोर और लापरवाह पर्यवेक्षण के हवाले कर दिया गया जिसका परिणाम विश्व के सामने है।

## पारदर्शिता और जवाबदेही

अधिक पारदर्शिता तथा जवाबदेही सुनिश्चित किया जाना अनिवार्य हो गया है। उन संव्यवहारों का विनियमन जिनसे संकट उत्पन्न हुआ, विशेष रूप से प्रतिभूतिकरण तथा व्युत्पन्नी संव्यवहारों का विनियमन करना तथा समस्त बाज़ारों पर पारदर्शी रहने का दबाव बनाना एवं ओवर-द-काउंटर परिचालनों को सीमित रखना जरूरी है। चूककर्ता के विरुद्ध कार्रवाई करना तथा जवाबदेही सुनिश्चित करने से संकट की संभावनाएं कम की जा सकती हैं। पारदर्शिता बनाए रखने हेतु जब आस्तियों का मूल्य-निर्धारण बाज़ार मूल्य पर किया जाए तो इस बात का ध्यान रखा जाए कि ऋण-विस्तार से आस्तियों के मूल्य में उफान न पैदा हो अथवा ऋण-संकुचन से आस्तियों के मूल्य दरकने न लगें।

## शैडो-बैंकिंग एवं अत्यधिक मध्यस्थता पर लगाम

नीति-निर्माताओं ने निवेश बैंक और हेज-फंड के रूप में कार्यशील वित्तीय संस्थाओं जिन्हें शैडो-बैंकिंग कहा जाता है, की बढ़ती भूमिका को महत्व नहीं दिया। कुछ विशेषज्ञों का मानना है कि अर्थव्यवस्था में ऋण उपलब्ध कराने में इनका महत्व वाणिज्य बैंकों जैसा है, किंतु उनका विनियमन उस प्रकार से नहीं किया जाता जिस प्रकार से वाणिज्य बैंकों का किया जाता है। नोबेल पुरस्कार विजेता पाल क्रुगमैन का

कथन है कि 'शैडो-बैंकिंग अर्थव्यवस्था में वित्तीय अस्थिरता का पुन: सृजन कर रही थी। उनके लिए एक सामान्य नियम अपनाया जाना था कि जिस प्रकार से एक बैंक कार्य करता है, वे भी वही कार्य कर रहे थे, अत: संकट के समय यदि बैंकों की रक्षा की गई तो उसी प्रकार से शैडो-बैंकिंग का भी विनियमन होना चाहिए था।' इस अभाव को उन्होंने ''अनिष्टकर उपेक्षा'' की संज्ञा दी।

कारोबार के क्षेत्र में अत्यधिक मध्यस्थता न रखना श्रेयस्कर होगा ताकि प्रत्येक स्तर पर कड़ी निगरानी रखी जा सके। गैर-बैंकिंग वित्तीय संस्थाओं पर लगाम कसना आज की अनिवार्यता है वरना ये क्षेत्र नियंत्रण से बाहर हो जाएगा और उसके प्रतिकूल परिणाम उपभोक्ता को, व्यवस्था को, बाज़ार को उठाने पड़ सकते हैं। बेन-बर्नानके के अनुसार- ''शैडो-बैंकिंग प्रणाली जैसे निवेश बैंक एवं हेज फंड आदि की समस्याग्रस्त संस्थाओं को बंद करने के लिए संकल्प प्रक्रिया स्थापित की जानी चाहिए।''

## कर्ज के अतिरेक से परहेज़

1990 में अमरीका में मार्गेज आवास ऋण वहां के सकल घरेलू उत्पाद (जीडीपी) की तुलना में 46 प्रतिशत था जो 2008 में बढ़कर 73 प्रतिशत हो गया और जिसकी कुल राशि 10.5 ट्रिलियन डालर थी। कर्ज के अतिरेक से परहेज़ करना तथा अत्यधिक लीवरेज न देना, आर्थिक तेज़ी के मौसम में पूंजी का संचय किया जाना एवं आरक्षित राशियों का अधिक से अधिक प्रावधान करना अनिवार्य हो गया है।

## अंतरराष्ट्रीय ऋण न्यायालय का सृजन

इस वित्तीय विपत्ति में यह सुझाव उभरकर सामने आया कि एक ''वैश्विक वित्तीय विनियामक प्राधिकरण'' का सृजन किया जाए जो निजी एवं सरकारी क्षेत्र के अंतरराष्ट्रीय ऋणों हेतु मध्यस्थ एवं आर्बिट्रेटर का कार्य करेगा।

## जी-20 का निर्माण

चिंता यह थी कि वर्तमान मंदी पर विराम कैसे लगाया जाए। यह चिंतन गहराया कि सामाजिक सेवाओं से संबंधित कार्यक्रमों की बलि दिए बिना एवं सामाजिक सुरक्षा प्रदान करते हुए विकास की मंद गति को वापस पटरी पर लाया जाए।

वैश्विक आर्थिक संकट से उबरने के लिए जी-8 के स्थान पर जी-20 शीर्ष फोरम बनाया गया जिसमें विश्व के 20 ताकतवर देशों ने अर्थव्यवस्थाओं को प्रोत्साहित करते रहने तथा वित्तीय तंत्र की स्थिरता के लिए एवं बैंकिंग विनियमन पर शिकंजा कसने की दिशा में मिलकर काम करने पर सहमति जताई है। लंदन में अप्रैल, 2009 में आयोजित जी-20 सम्मेलन में निम्नलिखित बिंदुओं पर सहमति हुई है:

i) वित्तीय संकट से बचाव के लिए अधिक एवं गुणवत्तापूर्ण पूंजी का निर्माण किया जाए, अच्छे समय में बफर को मज़बूत किया जाए ताकि बुरे वक्त में काम आ सके और वहनीय हो, जोखिम-आधारित पूंजी आवश्यकताओं को और सुदृढ़ बनाया जाए।

ii) बासल II सहित अंतरराष्ट्रीय मानकों को समन्वित रूप से लगातार कार्यान्वित किया जाए।

iii) उच्च गुणवत्ता वाले वैश्विक स्वतंत्र लेखांकन मानक बनाए जाएं तथा वित्तीय आस्तियों का पुनर्मूल्यांकन किया जाए, हानि वाले ऋणों के संबंध में प्रावधानीकरण प्रक्रिया अपनाई जाए।

iv) सुदृढ़ विनियमन और व्यवस्थागत दृष्टि से महत्वपूर्ण फर्मों पर निगरानी रखी जाए।

अमरीकी राष्ट्रपति कार्यालय व्हाइट हाउस से जारी बयान के अनुसार – ''विकासशील देशों को बातचीत की मेज़ पर लाने का फैसला वैश्विक अर्थव्यवस्था को मज़बूत, अधिक संतुलित बनाने, वैश्विक वित्तीय तंत्र में सुधार और गरीबों के जीवन स्तर को बेहतर बनाने के लिए किया गया है।'' पिट्सबर्ग में अप्रैल, 2009 में आयोजित जी-20 के सम्मेलन में अमरीकी राष्ट्रपति बाराक ओबामा ने कहा कि ''हमने दीर्घकालीन समृद्धि के लिए काम करने की एक रूपरेखा तैयार की है, हमें पता है कि अभी इस दिशा में काफी कार्य करना है।''

## आर्थिक पूर्वानुमानों की भूमिका

बिजनेस वीक पत्रिका ने लिखा है कि अर्थशास्त्री इस संबंध में भविष्यवाणी करने में नाकाम रहे थे। और यदि किसी ने की

जी-20, अप्रैल, 2009 में पिट्सबर्ग में आयोजित सम्मेलन

तो उसे नज़रअंदाज़ किया गया। एक अर्थशास्त्री नावरियल राउबीनी ने सितंबर, 2006 में इस प्रकार के संकट की चेतावनी दी थी किंतु, न्यूयार्क टाइम्स ने उन्हें ''डॉ. दुर्भाग्य'' की संज्ञा देकर आवास बाज़ार एवं विश्वव्यापी मंदी की उनकी भविष्यवाणी का उपहास किया। तात्पर्य यह कि देश के अर्थशास्त्रियों, आर्थिक विश्लेषकों, वित्त-विशेषज्ञों, वित्त-संचालकों, सेवानिवृत्त बैंक निदेशकों, कार्यपालकों एवं प्रमुखों, वित्तीय समाचारपत्रों की इबारतों, अर्थव्यवस्था की निगरानी कर रही संस्थाओं, आर्थिक अनुसंधानकर्ताओं द्वारा समय-समय पर की जाने वाली भविष्यवाणियों को नज़रअंदाज़ न किया जाए, अपितु उनको आर्थिक समीक्षा की कार्यसूची में शामिल किया जाए।

इसके पूर्व हमारे देश में 1991 में भुगतान संतुलन संबंधी भीषण संकट उत्पन्न हुआ था, 1992 में प्रतिभूति घोटाला, 1997 में गैर-बैंकिंग वित्तीय कंपनियों का घोटाला, 1997 में ही एशियाई संकट उत्पन्न हुआ जो संभवत: पहला वैश्विक संक्रामक संकट था, वर्ष 2004 में मध्यम आकार के बैंक जैसे–ग्लोबल ट्रस्ट बैंक असफल हो गए। वर्तमान वित्तीय आघात ने घरेलू ऋण ईक्विटी, विदेशी मुद्रा बाज़ार, विकास दर तथा रोज़गार को प्रभावित किया।

अंतरराष्ट्रीय सर्वोत्तम मानकों के साथ-साथ भारतीय बैंक अत्यधिक कड़े नियमों एवं पर्यवेक्षण के अधीन कार्य करते हैं, इसलिए अमरीका, ब्रिटेन या अन्य पश्चिमी देशों के बैंकिंग क्षेत्र के समान संकट का प्रभाव यहां नहीं हुआ।

सरकार एवं केंद्रीय बैंक आक्रामक/सहज दोनों प्रकार की मौद्रिक नीति को वरीयता दे रहे हैं ताकि सार्वजनिक खर्च को पूरा किया जा सके तथा आर्थिक मंदी से निपटा जा सके। चलनिधि बढ़ाने, बैंक ऋण में विस्तार करने के लिए अनेक उपाय किए गए हैं: रिज़र्व बैंक ने बैंकों को उधार देने की दर काफी कम कर दी है जिससे ब्याज दर घटेगी तथा टिकाऊ वस्तुओं, भूसंपदा तथा निवेश की क्षीण होती मांग बढ़ सके। वस्तुत: अर्थव्यवस्था में दो कारक महत्वपूर्ण होते हैं: एक मांग पक्ष, दूसरा आपूर्ति पक्ष। मांग पक्ष अर्थात् चलनिधि की प्रचुरता के सुनिश्चयन का दायित्व बैंकों पर होता है तो आपूर्ति पक्ष अर्थात् व्यवस्था में वस्तुओं की पर्याप्त उपलब्धता सरकार को सुनिश्चित करनी होती है। मौद्रिक तथा राजकोषीय दोनों नीतियों को साथ-साथ संतुलित रूप से आगे बढ़ना होता है ताकि बाज़ार में स्फीतिकारी प्रभाव को नियंत्रित रखते हुए विकास दर की हिफाज़त की जा सके। इसके लिए सावधानी वाले कदम निम्नानुसार हैं:

मौद्रिक नीति का रुझान क्या हो, चलनिधि पर दबाव कम करना, ऋण की किल्लत कैसे दूर की जाए, ब्याज की दर कम बनाए रखना, राजकोषीय पैकेज की आवश्यकता एवं बजट का आदर्श प्रावधान, संतुलित राजकोषीय नीति, बाज़ार का विश्वास बनाए रखना, वित्तीय बाज़ार के उतार-चढ़ाव को नियंत्रित करना, संक्रामकता को बढ़ने से रोकना, अनिश्चितता के वातावरण को समाप्त करना, क्षमता में वृद्धि करना तथा जोखिम प्रबंध करना। प्रत्येक संकट इस बात के लिए बाध्य करता है कि वर्तमान प्रणाली में सुधार लाया जाए

तथा उसकी पुनर्संरचना की जाए। यह वैश्विक संकट का नतीजा है कि भारतीय रिज़र्व बैंक ने 17 जुलाई, 2009 को वित्तीय स्थिरता इकाई का गठन किया है जिसका प्रारंभिक मकसद वित्तीय प्रणाली के स्वास्थ्य का समग्र मूल्यांकन करना है तथा इस बात का विश्लेषण करना एवं यह पहचान करना कि प्रणाली में जोखिम की संभाव्यता कितनी है। रिज़र्व बैंक गवर्नर डॉ.डी.सुब्बाराव का मत है कि *''माइक्रो और मैक्रो दोनों स्तर पर वित्तीय स्थिरता आवश्यक है।''* उन्होंने आर्थिक संकट के तीन प्रमुख कारण बताए हैं, प्रथम – मूल्य स्थिरता पर जरूरत से ज़्यादा ध्यान देना, द्वितीय – आस्तियों के मूल्यों में आए उफान को रोकने में विफलता, तृतीय – विनियमन को गंभीरता से न लेना तथा चेतावनी संकेतों की अनदेखी करना। उन्होंने वित्तीय स्थिरता के लिए कतिपय महत्वपूर्ण पहल की ओर इशारा किया है जैसे – विनियामक पूंजीगत ढांचे को सुदृढ़ किया जाए, विश्व स्तरीय चलनिधि मानक विकसित किए जाएं, सीमापार संस्थाओं के पर्यवेक्षण को मज़बूत बनाया जाए, मैक्रो स्तर पर विवेकपूर्ण ढांचे को बेहतर बनाया जाए, अंतरराष्ट्रीय लेखांकन मानकों की समीक्षा की जाए, विनियमन का दायरा बढ़ाया जाए तथा क्रेडिट रेटिंग एजेंसियों की असावधानियों में सुधार किया जाए।

उप गवर्नर डॉ.के.सी चक्रवर्ती के शब्दों में ''वित्तीय प्रणाली की उद्भव प्रक्रिया में, विनियामक एवं पर्यवेक्षी ढांचा किसी भी संकट की रोकथाम के लिए तभी तक सहायक होता है जब तक सुदृढ़ सिद्धांतों का पूरी तरह पालन किया जाता रहेगा। कमज़ोर प्रथाओं को अंगीकृत करने से उत्पन्न संकट, सृजनकारी विनाश प्रक्रिया, न केवल संकट से उबारती है बल्कि प्रणाली को और अधिक तीव्रगामी एवं सुस्पष्ट बना देती है। वैश्विक संकट ने यह अवसर प्रदान किया है कि विभिन्न क्षेत्रों में परंपरागत प्रज्ञा का पुनर्मूल्यांकन किया जाए और वित्तीय क्षेत्र सुधार तथा पर्यवेक्षण संबंधी भावी दृष्टिकोण इस प्रकार का हो जो वित्तीय क्षेत्र के बुनियादी उद्देश्यों एवं वास्तविक अर्थव्यवस्था की आवश्यकताओं को पूरा कर सके।''

यू.एन. महासचिव बैन-की-मून ने कहा था कि–

*''अब हमें पहले से कहीं ज्यादा दृढ़ बनना होगा । संकट के इस काल ने, जहां हमें अपने भीतर झांकने की ओर उन्मुख किया है, वहीं अब समय आ गया है कि हम आम आदमी के कल्याण को अपने एजेंडे में प्रमुख स्थान दें। हाल में, जहां हमने अमरीका के बारे में बहुत कुछ सुना है कि वाल स्ट्रीट की समस्याएं किस प्रकार से वहां के मुख्य गलियारों के लोगों के जीवन को प्रभावित कर रही हैं, वहीं हमें विश्व के उन लोगों के बारे में सोचना होगा जिनके नसीब में गलियारे भी नहीं हैं।''*

---

**चिन्तन का धरातल परम्परा में हो तो भविष्य का चित्र स्पष्ट बन जाता है।**

# विश्वव्यापी आर्थिक संकट बनाम सैद्धांतिक असफलता

● डॉ. रामप्रकाश सिंहल
उप महाप्रबंधक (सेवानिवृत्त)
भारतीय रिज़र्व बैंक, मुंबई

आज के विज्ञान और प्रौद्योगिकी के युग में विश्व सिकुड़ कर एक गांव जैसा हो गया है, जहां यदि कोई परिवार यदि किसी आपदा से प्रभावित होता है तो उसका असर धीरे-धीरे अन्य परिवारों तथा पूरे गांव पर भी पड़ने लगता है। आर्थिक क्षेत्र का भी यही हाल है। 1990 में जब दक्षिण-पूर्व एशियाई संकट आया तो अनेक उदीयमान अर्थव्यवस्थाएं जिन्हें 'स्वर्ण हंसिनी' या 'उड़ती हुई अर्थव्यवस्थाएं' कहा जाता था-देखते देखते इस आर्थिक संकट से प्रभावित होने लगीं। इसी प्रकार 2007-08 में अमरीका में फैले आर्थिक संकट ने देखते-देखते सारे विश्व को आत्मसात कर लिया। हालांकि, चीन और भारत जैसे कुछ देश इससे बहुत अधिक प्रभावित नहीं हुए और अपनी आंतरिक शक्ति के बल पर वे इस संकट से काफी सीमा तक सुरक्षित रहे, परंतु उनका बाह्य व्यापार या निवेश तो प्रभावित हुआ ही है। अमरीका का यह आर्थिक संकट आज सारे विश्व में अनुभव किया जा रहा है। कुछ लोग ऐसा मानते हैं कि अब इससे उबरने का समय आ गया है, परंतु कुछ लोग इसके अभी कुछ समय तक और बने रहने की आशंका जता रहे हैं। खैर यह तो समय ही बतायेगा।

कुछ लोग इसे आर्थिक क्षेत्र में तीव्र वृद्धि का स्वाभाविक परिणाम मानते हैं, जबकि कुछ अन्य लोग इसे सरकारों की सैद्धांतिक असफलता का परिणाम। इसके दोनों स्वरूपों पर चर्चा कर लेना समीचीन होगा।

## सब-प्राइम उधार तथा उसका प्रतिभूतिकरण

कुछ लोग इसका उद्‌गम सब-प्राइम उधार की प्रणाली तथा उसके प्रतिभूतिकरण का परिणाम मानते हैं। अमरीका में बैंकों और वित्तीय संस्थाओं ने पुराने ग्राहकों को बनाये रखने और नये ग्राहकों, विशेषकर बड़े कारपोरेट ग्राहकों को आकर्षित करने के लिए अपनी पूर्व-निर्धारित प्राइम उधार दरों से भी नीचे की दरों पर उधार देना शुरू कर दिया और अनेक ग्राहकों ने अपनी चुकौती क्षमता से भी ज्यादा राशि के बड़े-बड़े गृह ऋण लेने शुरू कर दिये। बाजार के अन्य घटकों में आयी मंदी के कारण इन ग्राहकों की आय भी प्रभावित होने लगी। अत:ये उधारकर्ता अपने ऋण चुकाने की स्थिति में नहीं रह गए। अत:इन संस्थाओं ने ऋणों का प्रतिभूतिकरण करना शुरू कर दिया। गृह ऋण का यह घटक इतना बड़ा था कि बैंक और वित्तीय संस्थाएं अपनी पूंजी को गंवाने की स्थिति में आ गयीं और देखते देखते अनेक बैंक और वित्तीय संस्थाएं दिवालिया होने लगीं। इसका असर अमरीका की पूरी अर्थव्यवस्था पर पड़ने लगा और इसके फलस्वरूप अमरीका के व्यापार सहभागी और आर्थिक मदद प्राप्तकर्ता तथा सेवा प्रदाता विदेशी कंपनियां भी प्रभावित होने लगीं और देखते देखते इसका असर सारे विश्व पर पड़ने लगा। चूंकि अमरीकी अर्थव्यवस्था सारे विश्व की सबसे बड़ी अर्थव्यवस्था है (विश्व के सकल घरेलू उत्पाद का लगभग 23 प्रतिशत भाग अमरीका के सकल घरेलू उत्पाद का है) जो अपनी आर्थिक प्रणाली से अपने उपभोक्ता व्यापार, निवेश और सेवाओं के माध्यम से सारे विश्व को प्रभावित करने लगी। इसका असर भारत पर भी पड़ा है और इसकी विकास दर इस वर्ष 9 प्रतिशत से घटकर 6 प्रतिशत रहने की संभावना है। भारत से 45 बिलियन रुपए का विदेशी मुद्रा का पूंजी प्रवाह बाहर चला गया। विनिमय दर में 20 प्रतिशत तक की गिरावट आयी और, 5,00,000 लोगों को नौकरी से हाथ धोना पड़ा। चीन की विकास दर भी कम होने लगी। अनेक

देशों के शेयर बाजार भी 50 प्रतिशत तक नीचे आ गए। अमरीका में भी बेरोजगारी बढ़ रही है और 1983 के बाद यह 8.5 प्रतिशत के सर्वोच्च स्तर तक पहुंच गयी। इससे निजात पाने के के लिए अमरीका, यूरोप और भारत सहित अनेक देशों ने बेलआउट पैकेजों की घोषणाएं की। जिनमें प्रमुख हैं 9.7 ट्रिलियन डालर का अमरीकी बेलआउट पैकेज, 1.4 ट्रिलियन अमरीकी डालर का यूरोपियन बेलआउट पैकेज, 0.9 ट्रिलियन का यू.के. का बेलआउट पैकेज। भारत में भी 3 बेलआउट पैकजों की घोषणा की गयी है।

कहने को तो यह आर्थिक क्षेत्र में तीव्र वृद्धि अधिकाधिक प्रतिलाभ का लालच और प्रतिद्वन्द्वी के साथ प्रतिस्पर्धा, खुली अर्थव्यवस्थाओं, और पूंजी खातों की पूर्ण परिवर्तनीयता का स्वाभाविक परिणाम है, लेकिन इसे इतने तक ही सीमित करके नहीं देखा जा सकता। अर्थ व्यवस्था के इस संकट का कारण सरकारों/केंद्रीय बैंकों की सैद्धांतिक विफलता भी है।

## इस आर्थिक संकट के सैद्धांतिक कारण भी रहे हैं जैसे-

### *प्रभावी विनियमन की विफलता या कमी*

पूंजीवाद और निजी उपक्रमों की भूमिका पर आज सारे विश्व में प्रश्नचिन्ह लगने लगे हैं और उनमें उन मुद्दों पर ध्यान केंद्रित किया जाने लगा है जिनके कारण विश्व को इस स्थिति का सामना करना पड़ा। इनमें सर्व प्रमुख है- निजी क्षेत्र की गतिविधियों पर सरकारों या केंद्रीय बैंकों के प्रभावी विनियमन की कमी या शिथिलता और साथ ही निजी क्षेत्र में नेतृत्व के स्तर पर गैर-नैतिक निर्णयों को लागू करना- इन मुद्दों को अब व्यापक रूप में इस स्थिति के लिए जिम्मेदार माना जाने लगा है। आज ऐसे अनेक उदाहरण सामने आ रहे हैं जहां कंपनियां दिवालिया हो रही हैं, परंतु उनके सर्वोच्च स्तर के अधिकारी भारी भरकम परिलब्धियों का आहरण कर रहे हैं। हाल ही में ऐसे उदाहरण सामने आये हैं कि सिटी बैंक के एक महत्त्वपूर्ण पदाधिकारी को कई मिलि. डालर सालाना मिल रहे हैं, जबकि सिटी बैंक की आर्थिक हालत नाजुक मोड़ पर पहुंच गयी है। ऐसे एक नहीं अनेक उदाहरण हैं जिन पर सरकारों का विनियमन ही नहीं था और जहां था वहां भी वह शिथिल होता जा रहा है। इसने विश्व अर्थव्यवस्था के सामने अनेक चुनौतियां खड़ी कर दी हैं।

भारतीय रिज़र्व बैंक के पूर्व गवर्नर श्री एम.नरसिंहम के अनुसार- इन चुनौतियों में सर्व प्रमुख है- विनियमन- जो मौद्रिक और वित्तीय स्थिरता के लिए मुख्य मुद्दा है। उन्होंने हाल की अवधि में प्रमुख उन्नत अर्थव्यवस्थाओं द्वारा व्युत्पन्नी लिखतों (डेरिवेटिव्स इन्स्ट्रूमेंट्स) का बेरोकटोक उपयोग करने तथा वित्तीय विनियमनों में शिथिलता आने पर चिंता व्यक्त की है। प्रभावी विनियमन वित्तीय स्थिरता संबंधी नीतियों का मूल है। उनके अनुसार जहां हाल के विश्वव्यापी वित्तीय संकट के लिए प्रभावी विनियमन में शिथिलता प्रमुख रूप से जिम्मेदार है, वहीं वित्तीय बाजारों को शांत करने के लिए गत कुछ वर्षों में प्रमुख उन्नत अर्थव्यवस्थाओं द्वारा भारी मात्रा में चलनिधि बढ़ाने और उसका निवेश करने से भविष्य में मौद्रिक स्थिरता को खतरा हो सकता है।

भारतीय रिज़र्व बैंक के वर्तमान गर्वनर डॉ.डी. सुब्बाराव इसे उदारीकरण और विनियमन के बीच अभीष्टतम संतुलन बनाए रखने की चुनौती के रूप में मानते हैं। उनके अनुसार जहां इस संकट का कारण व्यवस्था में अत्यधिक चलनिधि का होना है और उसके परिणामस्वरूप इस तर्काधार पर-कि वित्तीय लिखतों के माध्यम से वास्तविक मूल्य में वृद्धि की जा सकती है- आय की खोज करना, जिसके कारण व्यवस्था में अत्यधिक असंतुलन और अधिशेष बन गए, और उनके विनियमन में शिथिलता के कारण अनदेखी की गयी।

भारतीय रिज़र्व बैंक के एक अन्य पूर्व गर्वनर डॉ. रेड्डी का मानना हैं कि-वैश्विक वित्तीय संकट का प्रादुर्भाव वैश्विक वित्तीय प्रणाली के केंद्र से हुआ है। जिनके बारे में यह माना

जाता था कि यहां सर्वोत्तम विनियमन विद्यमान हैं और उनको संचालित करने वाले लगभग 15 भारी वित्तीय संघों के पास सर्वोत्तम जोखिम प्रबंध प्रणालियां विद्यमान हैं। परंतु जब इनमें से कुछ सुविनियमित संघ ही असफल हो गए तो बाकी ने इनमें से एक दूसरे पर भरोसा करना ही छोड़ दिया।... अब जबकि केंद्रीय बैंक अपने राजनैतिक आकाओं से मुक्त हो गये हैं, अत:वे बाजार के खिलाड़ियों के प्रति अति नरम हो गये, विशेषकर विकसित देशों में, और इसी के परिणामस्वरूप विनियमन पर्यवेक्षण में शिथिलता आ गयी और इससे वित्तीय संकट।

इस संबंध में हाल ही में प्रमुख उन्नत देशों द्वारा वित्तीय गतिविधियों को आकर्षित करने के लिए अपनाये गये नरम विनियमनों ने भी इस संकट में योगदान किया। कुछ विद्वान ऐसा मानते हैं कि वैश्विक वित्तीय संकट, जिसकी विशालता अभी भी चर्चा का विषय बना हुआ है, प्रखर और विशेषज्ञ समझे जानेवाले वित्तीय पदाधिकारियों की देन है। अत: वित्तीय विनियमन को इन विशेषज्ञों के भरोसे नहीं छोड़ा जा सकता जिन्होंने ''एएए'' रेटिंग वाले वित्तीय उत्पादों को जन्म दिया। इन विशेषज्ञों या विनियामकों द्वारा पैदा किए गये भ्रम को आम आदमी के प्रतिनिधियों द्वारा दूर करना पड़ेगा।

भारतीय रिज़र्व बैंक के एक अन्य पूर्व गवर्नर और प्रधान मंत्री की आर्थिक सलाहकार परिषद के अध्यक्ष डा. सी. रंगराजन भी इस बात से सहमत हैं कि- विनियामक असफलता वर्तमान वैश्विक आर्थिक संकट का मुख्य कारण रहा है। उनके अनुसार ''वित्तीय बाजारों के कुछ घटक या तो बहुत अधिक विनियमित हैं या बिल्कुल भी विनियमित नहीं हैं और कुछ वित्तीय उत्पादों के निहितार्थ पूर्णत: नहीं समझे गए।''

### *मौद्रिक स्थिरता की अनदेखा करना*

इस विश्वव्यापी आर्थिक संकट का दूसरा प्रमुख कारण है- मौद्रिक स्थिरता को अनदेखा करना; हालांकि विश्वभर के सभी केंद्रीय बैंकों का मुख्य उद्देश्य मौद्रिक स्थिरता को बनाये रखना होना चाहिए, लेकिन आर्थिक वृद्धि को मूल्य स्थिरता की तुलना में अत्यधिक महत्त्व दिये जाने के कारण असाधारण रूप से भारी मात्रा में विदेशी निवेश को आकर्षित किया गया, विदेशी उधार लिये गये, विदेशी सहभागिता और साथ ही बढ़ते राजकोषीय घाटों को पूरा करने के लिए अत्यधिक मौद्रीकरण किया गया और विश्व भर में मूल्य स्थिरता के मुद्दे की उपेक्षा की गयी। वित्तीय डेरिवेटिव्स का अत्यधिक उपयोग, और भारी भरकम बजट घाटों का केंद्रीय बैंकों द्वारा वित्तपोषण किया गया।

डॉ. रंगराजन के शब्दों में ''मूल्य स्थिरता मौद्रिक नीति का प्राथमिक और मुख्य उद्धेश्य होना चाहिए।'' परंतु अंतर राष्ट्रीय स्तर पर मुद्रास्फीति को लक्ष्यबद्ध करनेवाली या लक्ष्यबद्ध न करनेवाली अर्थव्यवस्थाओं ने अपनी-अपनी कठिनाइयों को झेला है। जिन अर्थव्यवस्थाओं ने मौद्रिक स्थिरता को लक्ष्यबद्ध किया उन्हें तीव्र वृद्धि की अपनी गति को सीमित रखना पड़ा, परंतु जो देश तीव्र वृद्धि के हिमायती रहे वे मौद्रिक स्थिरता को नहीं बनाये रख सके। बढ़ते उदारीकरण, शेष विश्व के साथ बढ़ते व्यापार तथा वित्तीय समेकन को विश्वव्यापी आर्थिक और वित्तीय संकट में प्रमुख भूमिका निभानी है। पूंजी खाते की पूर्ण परिवर्तनीयता, विदेशी मुद्रा का बे-रोकटोक आगम, और स्वतंत्र मौद्रिक नीति की तिकड़ी ने इस वैश्विक वित्तीय संकट को बढ़ावा दिया।

तीव्र आर्थिक वृद्धि प्राप्त करने के लिए अनेक देशों की सरकारों/केंद्रीय बैंकों ने मूल्य स्थिरता को इतना महत्त्व नहीं दिया जितना इस संकट को रोकने के लिए दिया जाना चाहिए था, क्योंकि उनका मत था कि पहले तीव्र आर्थिक वृद्धि प्राप्त कर ली जाए और मूल्यस्थिरता को बाद में प्राप्त किया जा सकता है। इसी दृष्टिकोण ने इस आर्थिक संकट को बढ़ाने में मदद की। अत: मूलभूत रूप से इसे सैद्धांतिक असफलता या चुनौती माना जा सकता है या दृष्टिकोण में मतभेद का

स्वाभाविक परिणाम।

### *आर्थिक सुसंचालन (good corporate governance) की शिथिलता*

वैसे तो विश्व के अनेक उन्नत देशों में आर्थिक सुसंचालन के लिए अनेक प्रयास किये गये, परंतु निजी क्षेत्र में बड़े-बड़े पूंजीपतियों, उद्यमियों, पेशेवरों और यहां तक कि स्वयं बड़ी-बड़ी कंपनियों ने भी अत्यधिक लालच के कारण सुसंचालन को ताक पर रख दिया। कंपनियों का निदेशक मंडल या कहें सर्वोच्च पदाधिकारी अपने स्वार्थ के लिए नियमों को तोड़ मरोड़कर धन-संचय में लगे रहे और कंपनियों के शेयरधारकों के हितों की अनदेखी करते चले गये। एनरॉन और लीमन ब्रदर्स जैसी कंपनियों का दिवालिया हो जाना इसका सबसे बड़ा प्रमाण है। भारत में भी सत्यम जैसी सफल आई-टी कंपनी का घोटाला इसका जीता जागता प्रमाण है। जिसमें कंपनी के सर्वेसर्वा पदाधिकारी रामलिंग राजू ने 700 करोड़ रुपए का घोटाला किया और निवेशकों को अपनी पूंजी से हाथ धोना पड़ा। साथ ही कंपनी का अपना अस्तित्व ही मिट गया। विश्व स्तर पर इस आर्थिक सुसंचालन की कमी के फलस्वरूप अनेक कंपनियां देखते देखते दिवालिया हो गयीं और उन्होंने वैश्विक आर्थिक संकट मे अपना-अपना योगदान किया और सरकार तथा केंद्रीय बैंक इनके प्रति कोई सैद्धांतिक सुरक्षा प्रदान नहीं करवा पाये। क्योंकि अभी तक उनके पास ऐसी कोई व्यवस्था ही नहीं है। वस्तुत: कंपनी जगत को यह मानने/स्वीकार करने की जरूरत है कि समाज के हितों की रक्षा करना स्पष्टत: स्वयं कंपनी-जगत के हित में है। अत: सुसंचालन को कठोरतापूर्वक लागू करने में शिथिलता भी इस विश्वव्यापी आर्थिक संकट का महत्वपूर्ण कारण रहा है।

### इससे मिली कुछ सीखें

- मौद्रिक स्थिरता केंद्रीय बैंकों का मुख्य उद्देश्य होना चाहिए।
- तेज आर्थिक वृद्धि का प्रयास संतुलित होना चाहिए और उसके लिए मूल्य स्थिरता की बलि नहीं दी जानी चाहिए।
- जहां तक संभव हो मुद्रास्फीति और आर्थिक वृद्धि के बीच एक उचित मात्रा में समन्वय होना चाहिए।
- मुद्रास्फीति और आर्थिक वृद्धि के लक्ष्य पारदर्शी, पूर्व-निर्धारित और विनियमित होने चाहिए। दोनों में से किसी एक को खुली छूट नहीं दी जानी चाहिए।
- किसी भी एक लक्ष्य में तीव्र उतार-चढ़ाव आने पर केंद्रीय बैंकों और सरकारों को त्वरित प्रभावशाली कदम उठाने चाहिए।
- आर्थिक और वित्तीय क्षेत्रों में विनियमनों को न तो इतना अधिक कठोर होना चाहिए कि वे पुलिस राज या लाल फीताशाही के शिकार हो जाएं और न ही इतना उदार कि सरकार जरूरत पड़ने पर उनके विनियमन के प्रति असफल या असहाय दिखाई देने लगे।
- पूंजी खाते की परिवर्तनीयता अपने लक्ष्य के रूप में नहीं, एक सतत तथा क्रमिक प्रक्रिया रूप में आनी चाहिए।
- सरकार और कंपनी जगत के सभी स्तरों पर आर्थिक सुसंचालन को महत्त्व दिया जाना चाहिए।
- वित्तीय प्रणालियों में सुधार लाने के साथ-साथ विनियमन का निर्धारित लक्ष्य या पथ भी होना चाहिए। वित्तीय समावेशन भी निर्धारित नीति और विनियमन के अंतर्गत हो, उसे न लौटाये जानेवाले दान के रूप में नहीं लिया जाना चाहिए।
- भारी राजकोषीय घाटे के स्वत: मौद्रीकरण से जहां तक संभव हो बचा जाना चाहिए।
- अधिशेष उपभोक्ता या खपत पर भी एक उपयुक्त विनियमन होना चाहिए।
- वित्तीय व्युत्पन्नी लिखतों का उपयोग जवाबदेही के साथ किया जाना चाहिए।

इन स्थितियों में जहां भारत और चीन काफी सीमा तक इस आर्थिक संकट से अपने आप को बचा सके, वहीं उन्नत अर्थव्यवस्थाएं नहीं। अत: जरूरत है- विनियमन और

उदारीकरण के उपयुक्त समन्वय के साथ सुसंचालन को लागू करने की। तभी इस प्रकार के आर्थिक संकट की पुनरावृत्ति को रोका जा सकता है। अमरीकी राष्ट्रपति बराक ओबामा ने सही ही कहा है- ''हमें इस लालच पर रोक लगानी होगी। अत्यधिक लालच और अपने अधिकारों/विनियमनों के दुरूपयोग ने हमें इस विश्व संकट के कगार पर पहुंचा दिया हैं। यदि कभी ऐसा समय माना जाए जब संयुक्त राष्ट्र संघ को सामूहिक रूप से मिलजुलकर अपनी पूरी शक्ति और पूर्ण मनोयोग से इससे निपटने का प्रयास करना अपरिहार्य हो तो वह समय अब आ गया है। यही सही समय है कि विश्व के सभी राष्ट्रों की सरकारों/विनियामकों को इस पर पूरा ध्यान देना चाहिए।''

## वित्तीय स्थिरता के महत्त्वपूर्ण खंड और चर

सबसे पहले, *वास्तविक क्षेत्र* सकल घरेलू उत्पाद (जीडीपी) वृद्धि, सरकार की राजकोषीय स्थिति और मुद्रास्फीति से आकार लेता है। जीडीपी वृद्धि संपदा निर्माण करने की अर्थव्यवस्था की क्षमता और उसके क्रियाकलापो में तेजी (ओवरहीटिंग) के जोखिम को दर्शाती है। सरकार की राजकोषीय स्थिति राजस्व से अधिक उसके खर्चों के लिए वित्तपोषण पाने की (और वित्तपोषण की अनुपलब्धता की स्थिति में देश की अस्थिरता के संबद्ध) सरकार की योग्यता का परिचायक है। मुद्रास्फीति अर्थव्यवस्था की संरचनागत समस्याओं और उससे जुड़े जनता के असंतोष को दर्शाती है जिससे आगे चलकर राजनीतिक अस्थिरता पैदा हो सकती है।

दूसरे, *कार्पोरेट क्षेत्र* जोखिम का आकलन उसके लीवरेज और खर्चों के अनुपात, इक्विटी के लिए उसका निवल विदेशी मुद्रा एक्सपोजर और ऋणदाताओं से बचाव के बहुत से तरीकों के आधार पर किया जा सकता है।

तीसरे, *घरेलू क्षेत्र* की स्थिति का पता उसकी निवल आस्तियों (आस्तियों में से देयताओं को घटाकर) और निवल प्रयोज्य आय (अर्जन में से उपभोग को घटाकर और फिर उसमें से ऋण चुकौती एवं मूलधन की अदायगी को घटाकर प्राप्त आय) से लगाया जा सकता है। निवल आस्तियों और निवल प्रयोज्य अर्जन से घरेलू क्षेत्र में (अकस्मात) घटित होनेवाली मंदी का सामना करने की क्षमता का आकलन किया जा सकता है।

चौथे, *बाह्य क्षेत्र* की स्थितियों का पता वास्तविक विनिमय दर, विदेशी मुद्रा भंडार, चालू खाता, पूंजी प्रवाह और परिपक्वता/करेंसी विसंगतियों से चलता है। ये चर पूंजी अंतर्वाह की दिशा में हुए अकस्मात बदलावों, निर्यात प्रतिस्पर्धात्मकता में हुई गिरावट और घरेलू उधार के लिए मिलनेवाले विदेशी वित्तपोषण के बने रहने के पारिचायक हो सकते हैं।

पांचवें, *वित्तीय क्षेत्र* में मौद्रिक समुच्चयों, वास्तविक ब्याज दरों, बैंकिंग क्षेत्र के लिए जोखिम उपायों, बैंकों के पूंजी और चलनिधि अनुपातों, उनकी ऋण बही की गुणवत्ता, स्टैण्ड अलोन क्रेडिट रेटिंग और उनके उधारी क्रियाकलापों के केंद्रीकरण/प्रणालीगत फोकस का समावेश होता है। ये सभी प्रॉक्सी बैंकिंग अथवा वित्तीय क्षेत्र की समस्याओं का आईना हो सकते हैं और यदि कोई संकट आता है तो ये वास्तविक अर्थव्यवस्था पर उस संकट के प्रभाव का मापन कर सकते हैं।

अन्तिम, *वित्तीय बाजारों* की स्थिति को दर्शानेवाले चर हैं शेयर सूचकांक, कार्पोरेट स्प्रेड, चलनिधि प्रीमियम और अस्थिरता। जोखिम स्प्रेड का उच्च स्तर निवेशकों द्वारा जोखिम वहन करने की क्षमता के क्षरण को दर्शाता है और संभवत: शेष अर्थव्यवस्था के लिए वित्तपोषण की समस्या का भी परिचायक है। चलनिधि में आनेवाले व्यवधान अर्थव्यवस्था के भीतर की अधिशेष निधियों को दक्षतापूर्वक निवेश करने की बाजार की क्षमता की वजह से हो सकते हैं।

**संदर्भ :** ब्लेज गैडनेक एवं कौशिक जयराम (2009), वित्तीय स्थिरता के उपाय-एक समीक्षा, अंतरराष्ट्रीय निपटान बैंक।

# विश्वव्यापी आर्थिक संकट - आकलनों की चूक

● डॉ. नरेन्द्र पाल सिंह
असोसिएट प्रोफेसर
वाणिज्य संकाय, साहू जैन कालेज
नजीबाबाद

अमेरिका में 2008 से जिस आर्थिक संकट की शुरुआत हुई थी वह 1930 की महामंदी के बाद सबसे बड़ा आर्थिक संकट है। इस संकट ने वैश्विक स्तर पर, बाजारों पर प्रतिकूल प्रभाव तो डाला ही, बैंकों व वित्तीय संस्थाओं को भी आघात पहुंचाया है। अमेरिका से शुरू हुए इस आर्थिक संकट ने पूरे विश्व को प्रभावित किया है, विश्व के सकल घरेलू उत्पाद में अमेरिका की एक चौथाई हिस्सेदारी है। वैश्विक आर्थिक संकट से विकासशील देश सर्वाधिक प्रभावित हुए हैं जबकि इस संकट के लिए उनकी जिम्मेदारी इतनी नहीं है और इसका सीधा प्रभाव उनकी विकास दर पर पड़ा है साथ ही इससे चार करोड़ लोग प्रभावित हुए हैं। सरकारों के राजस्व में भी कमी आई है जिससे मूलभूत ढांचा, स्वास्थ्य और शिक्षा जैसे महत्वपूर्ण क्षेत्रों में निवेश के लिए धन जुटाना कठिन हो रहा है। शेयर बाजार में गिरावट आते ही विदेशी संस्थागत निवेशकों ने बड़े पैमाने पर बिकवाली शुरू कर दी। कुछ ही दिनों में भारत से करोड़ों डॉलर की पूंजी पलायन कर गयी। मंदी का दौर चलते भारत के निर्यातों में संवृद्धि दर काफी कम रह गयी, भारत के निर्यातों में बड़ा हिस्सा रखने वाले रत्न एवं आभूषण उद्योग, टैक्सटाइल्स एवं सिले सिलाए वस्त्र उद्योग की हजारों इकाइयां बन्द हो गयी हैं। रोजगार के क्षेत्र में वर्ष 2008 में लाखों लोग बेरोजगार हुए तथा वर्ष 2009 में भी काफी लोगों के बेरोजगार होने का अनुमान हैं। विकासशील देशों के निर्यात बाजार बेहद संकुचित हो गये हैं। निर्यात वस्तुओं के मूल्यों में लगातार कमी आयी है।

वैश्विक मंदी के चलते भारत की स्थिति थोड़ी अलग जरूर रही है लेकिन गिरावट का रुझान पलटकर तेजी की शुरुआत यहां भी बाकी दुनिया से बदलकर होने वाली नहीं है। अन्तरराष्ट्रीय मुद्रा कोष के ऋण के आधार पर किसी भी अर्थव्यवस्था को दिवालिया नहीं होने देना, संरक्षणवाद अर्थात बाहरी चीजों पर रोक–टोक के खिलाफ माहौल बनाना और काले धन के अड्डों को दबाव में लेकर मुद्रा को चलन से बाहर न होने देना, पिछले लगभग पन्द्रह वर्षों से दुनिया में बने वैश्वीकरण के माहौल ने अर्थव्यवस्था को इतना मजबूत बना दिया है कि सारी संदिग्धताओं के बावजूद कुछ खास सुधार की उम्मीद नहीं की जा सकती। पिछले साल से चल रही वैश्विक आर्थिक मंदी ने विश्व आर्थिक जगत से जुड़े तमाम क्षेत्रों को झटका दिया है। विश्वव्यापी आर्थिक संकट के दौर में एक से बढ़कर एक मजबूत अर्थव्यवस्थाएं धराशायी हो गयी। ऐसे आर्थिक माहौल में भारत की अर्थव्यवस्था संभली हुई है। इस कारण आज दुनिया के देशों की निगाहें भारतीय अर्थव्यवस्था पर टिकी हुई हैं। वैश्विक आर्थिक संकट का बड़ा कारण विकसित देशों की बैंकिंग और वित्तीय संस्थाओं का दिवालिया हो जाना है। इस सन्दर्भ में भारत की अर्थव्यवस्था में यदि गहराई से देखें तो यह बात स्पष्ट रूप से सामने आती है कि भारत ने बैंकिंग व्यवस्था को सुदृढ़ बनाये रखने के लिए निरन्तर ठोस कदम उठाये हैं। भारत में लोग विकसित देशों के विपरीत उपभोग के साथ बचत को भी महत्व देते हैं जबकि अमेरिका जैसे देश में बैंकों के दिवालिया होने से वहां की अर्थव्यवस्था चौपट हो गयी किन्तु वहां के लोगों को, बैंकों में कम पैसे अथवा धन जमा होने के कारण अधिक झटका नहीं लगा जबकि भारत में कोई बैंक दिवालिया हो जाये तो अधिकांश खाताधारक जीवन भर की कमाई से हाथ धो बैठेंगे। भारत में बैंकों को सुरक्षित रखने का जिम्मा सरकार पर है क्योंकि जनता का अधिकांश पैसा इन्हीं बैंकों में जमा है और भारत सरकार इस दायित्व को निभाने में हमेशा खरी उतरी है।

> पिछले साल से चल रही वैश्विक आर्थिक मंदी ने विश्व आर्थिक जगत से जुड़े तमाम क्षेत्रों को झटका दिया है। विश्वव्यापी आर्थिक संकट के दौर में एक से बढ़कर एक मजबूत अर्थव्यवस्थाएं धराशायी हो गयीं। ऐसे आर्थिक माहौल में भारत की अर्थव्यवस्था संभली हुई है। इस कारण आज दुनिया के देशों की निगाहें भारतीय अर्थव्यवस्था पर टिकी हुई हैं।

यहां की सरकार ने समय–समय पर बैंकों का राष्ट्रीयकरण करके उनकी दिशा को आम लोगों के विकास के साथ जोड़ा है। भारत के बैंक कुल पूंजी, कुल अनर्जक आस्तियां, नकद जमा अनुपात, शुद्ध लाभ, सम्पत्तियों पर प्रत्याय, अंश मूल्य आदि की दृष्टि से आज भी अच्छी स्थिति में हैं। भारतीय बैंकिंग व्यवस्था की मजबूती के पीछे एम. नरसिंहम की दूरदृष्टि का भी बहुत बड़ा हाथ है जिन्होंने बैंकिंग सुधारों को लागू किया। उनकी सोच, वित्त सही स्तर पर सही ढंग से संचालित हो, पर केन्द्रित थी। भारतीय रिजर्व बैंक ने इस नीति का पालन करते हुए वर्ष 2008–09 में अर्थव्यवस्था में महंगाई और आर्थिक मंदी के बड़े झटकों में सीआरआर में नीतिगत परिवर्तन से चलनिधि के स्तर को अनुकूल बनाकर अर्थव्यवस्था में संकट को गहराने से बचाया है। भारतीय रिजर्व बैंक ने अर्थव्यवस्था को पटरी पर लाने के लिए राहत पैकेज की घोषणा कर काफी हद तक मदद की है। ब्याज दरों में कमी करने से, बैंकों में ऋण मुहैया कराने के प्रति उत्सुकता भी देखी गयी है लेकिन इतना करने से बाजार में सुधार होगा इसमें अभी सन्देह है। मुद्रास्फीति के अनुमान से कम रहने की दिशा में भारतीय रिजर्व बैंक को ब्याज दरों में कटौती का मौका मिल सकता है।

## आर्थिक संकट के प्रमुख कारण

नब्बे के दशक के अन्तिम दौर में उभरते बाजारों वाली अर्थव्यवस्था से सरकार ज्यादा भयभीत थी अत: उनको बचाने के लिए अतिरिक्त बजट का प्रावधान किया गया और साथ ही सार्वजनिक निवेश में कटौती कर दी गयी। अमेरिका से शुरू हुए इस आर्थिक संकट का कारण, अमेरिकी बीमा कम्पनी 'एआईजी' व ऐसी कई अन्य कम्पनियों के द्वारा कीमतें गिरने के कारण, अपने रेहन बेचना था। वित्तीय संस्थाओं एवं बैंकों को लगातार घाटे का शिकार होना पड़ रहा था। लीमन ब्रदर्स जैसे बैंकों ने प्रत्येक इक्विटी के लिए 35 डॉलर तक उधार लिये थे। अच्छे व्यापारिक दिनों में बैंकों द्वारा कम पैसा लगाकर भी अच्छा लाभ कमाया गया किन्तु विपरीत स्थिति में हालत खराब होती चली गयी और जो बैंक दिवालिया होने से बच गये उनके सम्मुख भी पूंजी की समस्या निरन्तर बरकरार हैं। बैंक ऑफ इन्टरनेशनल सेटलमेंट कई वर्षों से सम्पत्ति की कीमत में वृद्धि तथा ऋण वृद्धि के बारे में आगाह करता रहा है, साथ ही अन्तरराष्ट्रीय मुद्राकोष ने भी मकानों की ऊँची कीमतों तथा वित्तीय मामलों में अत्यधिक उतार–चढ़ाव पर निरन्तर चिन्ता प्रकट की है आर्थिक संकट का असर विश्व के सभी प्रमुख देशों पर देखा जा रहा है। अब प्रश्न यह है कि क्या बैंक अपनी जिम्मेदारी का निर्वहन ठीक से नहीं कर रहे हैं अथवा हमारी मुक्त व्यापार प्रणाली प्रासंगिक नहीं रही है। अमेरिकी अर्थव्यवस्था पूरे विश्व की अर्थव्यवस्था के 25 से 33 प्रतिशत के बीच है। यह भारी व्यापार घाटे के तर्ज पर आधारित है क्योंकि अमेरिका का खर्च उत्पादन की तुलना में कहीं अधिक है। वैश्विक अर्थव्यवस्था के लड़खड़ाने का प्रमुख कारण यह है कि मुख्य रूप से यूरोप में वित्तीय संस्थानों के पास बेकार अमेरिकी प्रतिभूतियों का भण्डार है जिससे यूरोपीय वित्तीय संस्थानों के सामने संकट का आना निश्चित ही था।

## विश्वव्यापी आर्थिक संकट और भारत की स्थिति

वैश्विक आर्थिक संकट के बुरे दौर में, भारतीय अर्थव्यवस्था, इसका सफलता से सामना कर रही है। भारतीय अर्थव्यवस्था के मंदी से न डगमगाने व संतोषप्रद स्थिति में बने रहने के कई कारण है। सर्वप्रथम भारत में 1991 में शुरू की गयीं नई आर्थिक नीतियां हैं जिससे वैश्वीकरण के परिणामस्वरूप विकास की गति में तेजी आयी और उत्पादकता भी बढ़ी है। भारत सरकार हमेशा सार्वजनिक ऋण समय से चुकाती रही है। विदेशी व्यापार हेतु भी सरकार विदेशी मुद्रा समय से उपलब्ध कराती रही है। ऐसे उपायों ने, आर्थिक संकट से निपटने में, काफी हद तक सहायता की है भारत की श्रम शक्ति भी आर्थिक संकट को दूर करने में वरदान साबित हो सकती है क्योंकि विश्व का आबादी का ढांचा कुछ इस तरह से परिवर्तित हुआ है कि विकसित और विकासशील देशों में आगामी दशक तक कामकाजी लोगों की भारी आवश्यकता होगी। जबकि भारत में लगभग साढ़े चार करोड़ कामकाजी जनसंख्या अतिरेक होगी। ऐसे में विकसित देशों में कार्यशील लोगों की कमी के कारण रोजगार के लाखों अवसर भारतीय युवाओं के पास होंगे। यही स्थिति भारत की प्रमुख सुदृढ़ता है। दूसरा आर्थिक पहलू भारत में अन्य देशों की तुलना में अधिक विदेशी प्रत्यक्ष निवेश की सम्भावना है यहां ग्राहकों की बढ़ती क्रय शक्ति एक ऐसा बाजार तैयार कर रही है कि विदेशी

कम्पनियां यहां आकर प्रत्यक्ष विदेशी निवेश किये बिना नहीं रह सकती जिसकी भारतीय अर्थव्यवस्था को भी आवश्यकता है।

## आर्थिक संकट दूर करने के प्रयास

अर्थव्यवस्था में सुधार जारी रखने के लिए चार तरह की रणनीतियों को अपनाया जाना चाहिए, इनमें प्रोत्साहन पैकेज को जारी रखना, गिरते निर्यात के दुष्प्रभाव की भरपाई के लिए मूलभूत ढांचा क्षेत्र में निवेश बढ़ाना, विश्व बैंक का पुन:पूंजीकरण करना और संरक्षणवादी नीतियों को पूरी तरह समाप्त करना शामिल है। वैश्विक अर्थव्यवस्था में सुधार के जो संकेत दिखाई पड़ रहे हैं उन्हें परिणाम में बदलने के लिए आवश्यक है कि संतुलन और संवर्द्धन नीतियों में समन्वय स्थापित किया जाये। प्रोत्साहन पैकेज को भी अभी वापस न लिया जाये अन्यथा सुधार की गाड़ी पटरी से उतर सकती है। वैश्विक अर्थव्यवस्था को पुन: पटरी पर लाने के लिए कुछ एशियाई मुद्राओं का मूल्य बढ़ाना आवश्यक है। विश्व बैंक के अध्यक्ष रार्बट जोलिक का कहना है कि वैश्विक अर्थव्यवस्था के ध्वस्त होने की सम्भावना टल गयी है किन्तु इससे पूरी तरह उबरने में अभी समय लगेगा। जहां तक भारत में मंदी के प्रभाव का प्रश्न है उसमें सुधार के स्पष्ट संकेत दिखाई दे रहे हैं। अगस्त 2009 में औद्योगिक उत्पादन में 10.4 प्रतिशत की वृद्धि दर्ज की गयी है वही निर्माण के क्षेत्र में अपेक्षा से अधिक विकास हुआ है। चीन की तुलना में भारत मंदी का मुकाबला अच्छी तरह से इसलिए कर पाया है क्योंकि भारत के कुल सकल घरेलू उत्पाद में निर्यात क्षेत्र का योगदान कम है जबकि चीन एक प्रमुख निर्यातक देश है। इस मंदी से निपटने के लिए अनेक उपाय किये जा रहे हैं जिनके सार्थक परिणाम सामने आ रहे हैं। महामंदी के समय दो बड़ी चूक हुई थीं जिसमें बैंक प्रणाली का असफल होना और मुद्रा आपूर्ति पर रोक लगाना प्रमुख थे। इसके विपरीत वर्तमान मंदी में ऐसे उपाय किये जा रहे हैं जिनसे वित्तीय प्रणाली को कोई चोट न पहुंचे और साथ ही अर्थव्यवस्था के विकास की गति को पुन: वापस लाया जा सके। भारत में, मंदी में सुधार को सार्थक तभी बनाया जा सकता है जब नौकरियां बहाल की जायें, वेतन में कटौती समाप्त की जाये और नई भर्तियां शुरू की जायें। अमेरिका में पिछली चार तिमाही से ऋणात्मक वार्षिक वृद्धि की दर में जुलाई–सितम्बर 2009 की तिमाही में 3.5 प्रतिशत की वृद्धि हुई है। कुछ अर्थशास्त्रियों का कहना है कि जब रोजगार घट रहे हों तो यह वृद्धि दर बढ़ती उत्पादकता का ही परिणाम है परन्तु सबसे बड़ी चुनौती लगभग एक करोड़ पचास लाख बेकार बैठे अमेरिकी लोगों को रोजगार देना है।

वैश्विक आर्थिक संकट के मौजूदा दौर में भारतीय अर्थव्यवस्था में चलनिधि की समुचित उपलब्धता बनाये रखने के लिए भारतीय रिजर्व बैंक एवं सेबी अपने–अपने स्तर पर प्रयासरत हैं। सेबी द्वारा विदेशी संस्थागत निवेशकों द्वारा जारी किये जाने वाले पार्टिसिपेटरी नोट्स पर आरोपित प्रतिबन्ध हटा लिया गया है तथा भारतीय रिजर्व बैंक ने भी सीआरआर में कटौती की है। बैंकों के लिए इन दरों में की गयी कमी से, चलनिधि में भारी वृद्धि होगी जिससे बैंक उधारियों पर ब्याज दर घटा सकेंगे। आर्थिक संकट से निपटने के लिए सरकार ने उद्योग जगत से रोजगार घटाने के बदले कीमतें घटाने की भी सलाह दी है। सरकार ने मौद्रिक कदमों में तेजी लाये जाने और निम्न ब्याज दरों के माहौल की ओर भी ध्यान आकृष्ट किया है। आर्थिक संकट के कारण विकसित देशों की मांग में बेतहाशा कमी हो गयी है, इसमें खासकर विनिर्माण कम्पनियों को, उत्पादों को बेचने में परेशानी हो रही है। विकासशील देशों में विकसित देशों की तुलना में मांग पैदा करना आसान है यही कारण है कि आर्थिक संकट से निकलने के लिए विकासशील देशों के दम पर विकसित देश अपने उत्पादों के लिए मांग, पैदा करना चाहते हैं। विश्व स्तर पर किये जा रहे समन्वित प्रयासों से अन्तत: आर्थिक संकट का समाधान तो निकलेगा ही, इतना अवश्य है कि संकट का व्यापक रूप होने से, इसके समाप्त होने में समय लगेगा। भारत आर्थिक संकट से उतना प्रभावित नहीं है जितनी अन्य देशों की अर्थव्यवस्थाएं प्रभावित हुई हैं और जिन क्षेत्रों में इसका प्रभाव दिखाई दिया है वहां इसके गहराने से पहले ही भारतीय रिजर्व बैंक, सेबी, योजना आयोग, वित्त मंत्रालय और भारत सरकार सभी सचेत हैं और संकट के विरुद्ध अपनी भूमिका कड़ाई से निभा रहे हैं। यह कह पाना अभी मुश्किल होगा कि विश्वव्यापी आर्थिक संकट के समाप्त होने में कितना समय लगेगा और इससे हमें भविष्य के लिए भी सबक लेना चाहिए कि विश्वव्यापी आर्थिक संकट आने के पीछे आकलनों की क्या चूक रही जिस कारण हमें यह आर्थिक संकट झेलना पड़ रहा है।

# मुक्त बाजार और आर्थिक मंदी

● सुशील कृष्ण गोरे
प्रबंधक
भारतीय रिज़र्व बैंक, मुंबई

आर्थिक संकटों का एक लंबा इतिहास है। 1930 के दशक की आर्थिक महामंदी तो एक भीषण त्रासदी थी। लेकिन, लैटिन अमेरिकी और एशियाई आर्थिक संकट भी किसी दु:स्वप्न से कम नहीं थे। अर्जेंटीना, मेक्सिको, रूस, तुर्की वगैरह दुनिया के कई मुल्कों ने भी अलग-अलग समय में आर्थिक संकटों का सामना किया है।

अभी जिस आर्थिक मंदी की गिरफ्त से दुनिया धीरे-धीरे छूट रही है उसकी तुलना अगर की जा सकती है तो सिर्फ 1929 की आर्थिक महामंदी से इसका भी विश्वव्यापी प्रभाव महसूस किया गया। लेकिन, अमेरिका तथा यूरोप इसके केंद्र में हैं। दरअसल, पिछली आर्थिक मंदियाँ परंपरागत बैंकिंग तथा मुद्रा संकट से जुड़ी थीं। मौज़ूदा आर्थिक संकट का सीधा संबंध वित्तीय बाजारों से है। यह एक तथ्य है कि पिछले दशकों के दौरान वित्तीय बाजारों में नवोन्मेषी परंतु बेहद जटिल उत्पादों और सेवाओं के आगमन के कारण अमेरिका के विकास का इंजन काफी हद तक वहाँ का वित्तीय क्षेत्र बन गया था। लिहाज़ा इस बार मंदी का सबसे बुरा असर अमेरिका पर ही पड़ा है।

पिछले दशकों के दौरान वित्तीय बाजारों में नवोन्मेषी परंतु बेहद जटिल उत्पादों और सेवाओं के आगमन के कारण अमेरिका के विकास का इंजन काफी हद तक वहाँ का वित्तीय क्षेत्र बन गया था। लिहाज़ा इस बार मंदी का सबसे बुरा असर अमेरिका पर ही पड़ा है।

## आर्थिक मंदी की पहली पदचाप

विश्वव्यापी आर्थिक मंदी की मार झेलते इस समय का वृत्तांत किसी ट्रेजडी से कम नहीं है। एक अभूतपूर्व रंगीनी में खोयी दुनिया पूंजी की समृद्ध सिंफनी डूबकर सुन रही थी कि अचानक बूम के टीलों में विस्फोट होने लगे और वाल स्ट्रीट घने धुआँ से घिर गया। उत्पादन का स्तर गिर गया। लोगों को नौकरियों से निकाला जाने लगा। 'पिंक-स्लिप' और 'ले-ऑफ' के साए में बेरोजगारी के कगार पर पहुँच चुके और ऊपर से सिर पर कर्ज का भारी बोझ लिए तमाम लोगों ने तो अपने पूरे परिवार की हत्या करने के बाद ख़ुदकुशी तक कर डाली। ऐसे संकट के समय में मनुष्य की त्रासदी और अर्थव्यवस्था से उसका जवाब मांगने के लिए सवाल धुँधुआई स्याही से ही लिखने होंगे। इस सनसनीखेज कहानी में सबसे पहली रोमांचक घटना लीमन ब्रदर्स जैसी दिग्गज वित्तीय संस्था के दिवालिया होने के साथ घटती है। इसके संदर्भ के बिना आर्थिक मंदी पर कोई चर्चा संभव नहीं हो सकती। भविष्य में हो सकता है कि अर्थशास्त्र पर लिखी जाने वाली किताबें दो भागों में बँट जाएं - ''लीमन से पहले'' और ''लीमन के बाद''। मंदी का वायरस लीमन के खंड़हरों से ही निकला और समूची दुनिया को संक्रमित कर गया। इसके बाद धड़ाधड़ कई संस्थाओं के तुलनपत्रों की चिंदियाँ बिखरने लगीं। अमेरिकी सब-प्राइम संकट की परतें खुलने लगीं। वहाँ के हाउसिंग सेक्टर पर सबकी नज़रें टिक गईं और उसे मंदी को भड़काने वाला घोषित खलनायक माना गया। अब आप पूछ सकते हैं कि अमेरिकी सब-प्राइम हाउसिंग सेक्टर की समस्या अंतत: पूरे विश्व के संकट में कैसे तब्दील हो गई। इसका सीधा जवाब वैश्वीकरण तथा संचार-क्रांति में छिपा है। व्यापार, श्रम तथा वित्त का वैश्वीकरण। संचार क्रांति के फलस्वरूप 'दूरी की मृत्यु' और 'स्थान पर विजय'।

स्थावर संपदा के बाजार से बहकी आँधी की तरह निकली आर्थिक मंदी के मुख्य कारणों में से एक था - ऐरे-गैरे लोगो अर्थात सब-प्राइम उधारकर्ताओं को मार्गेज उधार देना। इस क्षेत्र का संकट गहराने में उधारकर्ताओं की कर्ज चुकाने की हैसियत, सब-प्राइम उधार में सामान्य से दो-तीन प्रतिशतता अंक अधिक ब्याज दर से कर्ज की चुकौती और सब-प्राइम उधारकर्ताओं की चूक करने के इतिहास की विशेष भूमिका

रही है। 'सूचनाओं का वैषम्य' ने अपनी पारी खेली और अमेरिका का हाउसिंग सेक्टर ताश के पत्तों की तरह भरभराकर गिरने लगा।

सितंबर 2008 में लीमन ब्रदर्स सहित वालस्ट्रीट की अन्य दिग्गज आर्थिक और वित्तीय संस्थाओं के धराशायी होते ही घटाटोप आर्थिक मंदी का दौर शुरू हो गया। इसके सर्वग्रासी प्रभाव से दुनिया का कोई देश बच नहीं पाया। पहले इसकी गिरफ्त में अमेरिका, यूरोपीय संघ तथा जापान आए। दरअसल, यह आर्थिक मंदी अमेरिका के हाउसिंग मार्केट में हुए बड़े पैमाने पर डिफाल्ट के जीवाणु संक्रमण का दुष्परिणाम थी। वहां के इनवेस्टमेंट बैंक जोखिम को नजरअंदाज कर उधारकर्ताओं से पर्याप्त जमानत लिए बिना और कर्ज चुकाने की उनकी हैसियत देखे बिना आकर्षक ब्याज दरों (loans at teaser rates) पर उन्हें कर्ज पर कर्ज बांटते गए। स्थावर संपदा सेक्टर इस संकट का मुख्य स्रोत रहा है। साथ ही, इन उधारकर्ताओं को यह सब्ज़बाग दिखाया जाता रहा कि कर्ज लेकर वे जो घर खरीद रहे हैं उसकी कीमत सिर्फ परवान चढ़ेगी - घटेगी हरगिज़ नहीं। वित्तीय इंजीनियरी का कमाल देखिए कि उनके ऋणों की खूब कटाई-छँटाई करके उन्हें एक नए जटिल उत्पाद की शक्ल दी गई। वित्तीय इंजीनियरी और नवोन्मेषी बैंकिंग के नाम पर इसे पिछले कुछ दशकों में खूब प्रचारित किया गया। ग्राहकों को बम्पर फायदों का लालच भी दिया गया। रेटिंग एजेंसियों ने उनकी अच्छी रेटिंग की। फिर क्या था - निवेशक उनके जाल में फँसते चले गए। उन्होंने ऐसी बंधक आधारित परिसंपत्तियों के जोखिम को जाने बिना उन्हें हाथों-हाथ लिया। निवेश बैंकों ने इस सब-प्राइम चक्र को बार-बार दुहराया और आखिरकार अनर्थ हो ही गया।

इस प्रकार, वित्तीय इंजीनियरी और वित्तीय क्षेत्र में नवोन्मेषी परिवर्तनों के परिणामस्वरूप वित्तीय उत्पादों की स्लाइसिंग तथा डाइसिंग और उनकी स्ट्रक्चरिंग तथा हेजिंग और ओरिजिनेटिंग तथा डिस्ट्रिब्यूटिंग से नए प्रकार के जटिल वित्तीय उत्पादों की रचना इस आर्थिक संकट का एक कारण रही है।

## मुक्त बाजार : नफा भी नुकसान भी

मुक्त बाजार का मुक्त कंठ से गुणगान करने वाले मिल्टन फ्रिडमैन तथा फ्रेडरिक हाएक जैसे अर्थशास्त्री मानते हैं कि मनुष्य की नागरिक तथा राजनीतिक स्वतंत्रता एक आवश्यक शर्त है जिसे केवल मुक्त बाजार अर्थव्यवस्था में ही हासिल किया जा सकता है।

दरअसल, फ्रेडरिक हाएक का बाजार अर्थव्यवस्था के प्रति नजरिया शुद्ध स्वाधीनतावादी था। वह मानता था कि सामाजिक संसाधनों का बेहतरीन समायोजन या एक स्वत: स्फूर्त व्यवस्था केवल बाजार आधारित अर्थव्यवस्थाओं के भीतर ही पनप सकती है। हाएक 'स्वत: स्फूर्त व्यवस्था' (स्पांटेनियस ऑर्डर) के अपने विचार के लिए इसी से मिलती-जुलती एडम स्मिथ के 'अदृश्य प्रेरणा' (इनविज़िबल हैंड) की अवधारणा का ऋणी है।

दोनों का मूल स्वर एक है। दोनों की मान्यता है कि वैयक्तिक आर्थिक कारोबार के अनुक्रम में एक स्वत: स्फूर्त व्यवस्था स्थापित हो जाती है। इसी से सामाजिक भलाई का मार्ग भी प्रशस्त होता है। हाएक के यहां जो 'स्पांटेनियस ऑर्डर' है एडम स्मिथ के यहां वही 'इनविज़िबल हैंड' है। 'वेल्थ ऑफ नेशन्स' के निम्नलिखित उद्धरण पर ग़ौर करने पर साफ जाहिर हो जाता है कि एडम स्मिथ के विचारों में मुक्त बाजार या मुक्त अर्थव्यवस्था के बीज छिपे थे: ''केवल अपना ही हित साधने वाला व्यक्ति भी एक 'अदृश्य प्रेरणा' से किसी ऐसे लक्ष्य के लिए काम कर जाता है जो उसकी योजना का हिस्सा नहीं रहा था। उसका यह कृत्य उसकी मूल योजना का हिस्सा न होने के बावजूद व्यापक समाज के लिए हानिकर नहीं होता। इस प्रकार व्यक्ति अपने हित के लिए काम करते हुए प्राय: सामाजिक हित का लक्ष्य ज्यादा बेहतर ढंग से पूरा कर रहा होता है, जितना अगर वह वास्तव में करना चाहता तो शायद न कर पाता। मुझे ऐसा उदाहरण कभी नहीं दिखा जब सार्वजनिक हित की भावना से किसी व्यापार में लगे व्यक्तियों द्वारा बहुत अच्छे काम हुए हों।''

मुक्त बाजार व्यवस्था में बाजार सरकारी हस्तक्षेप और नियंत्रण से काफी हद तक मुक्त होता है। कुछ आवश्यक विनियमनों को छोड़कर सरकार की भूमिका अत्यंत सीमित होती है। वह मांग और आपूर्ति की शक्तियों पर बाजारों को स्वतंत्रतापूर्वक विकसित होने के लिए छोड़ देती है। उसका काम

केवल सहायक परिस्थितियों का निर्माण करना होता है। सरकारें स्वयं बाजार के बीच नहीं खड़ी होतीं। मुक्त बाजार की परिभाषा के अनुसार मुक्त बाजार के खिलाड़ी एक-दूसरे पर न तो किसी प्रकार की धौंस जमाते हैं और न ही एक-दूसरे के संपत्ति अधिकार बलपूर्वक या धोखाधड़ी से छीनते हैं। उनके बीच आर्थिक लेनदेन में कीमत का निर्धारण मांग और आपूर्ति के नियम के आधार पर खरीद-बिक्री के बारे में लिए गए सामूहिक निर्णयों से तय होता है।

मौजूदा आर्थिक संकट के तार बैंकिंग से भी जुड़े हैं। माना जाता है कि इसके पहले अभी तक दुनिया में 84 बार बैंकिंग व्यवस्था के समक्ष इस तरह के संकट पैदा हो चुके हैं। यह 85वां बैंकिंग संकट है। बैंकिंग व्यवस्था के जानकार कहते हैं कि पिछले 84 बैंकिंग संकट ऋण चूक स्वैप (क्रेडिट डिफाल्ट स्वैप) या विशेष निवेश व्यवस्थाओं (स्पेशल इनवेस्टमेट व्हिकल) या घातक परिसंपत्तियों (टॉक्सिक असेट्स) के चलते नहीं उपजे थे। उन संकटों से क्रेडिट रेटिंग का कोई लेना-देना नहीं था। यानि हर संकट के पीछे कारक अभूतपूर्व ही रहे हैं। इसलिए विश्व के सामने एक यक्षप्रश्न है कि क्या किया जाए कि ऐसे विध्वंसक संकटों की पुनरावृत्ति न हो। क्या इतने विनियमनों के बावज़ूद ऐसे संकट मंडराते रहेंगे।

बाजार से हुए हजारों ट्रिलियन डॉलर के नुकसान से उपजे क्रोध एवं खीझ ने बाजार पर नियंत्रण यानि रेगुलेशन के तर्क को पुख्ता किया है। लेकिन, यहां भी एक प्रतिप्रश्न उपस्थित हो जाता है कि क्या केवल व्यापक विनियमन की कोई प्रणाली ऐसे संकटों का पक्का ज़वाब हो सकती है। आर्थिक चिंतकों का मानना है कि केवल विनियमन नहीं अपितु समष्टि-विवेकपूर्ण दृष्टिकोण से संपन्न एक बेहतर विनियमन की विशेष आवश्यकता है। ट्रबल्ड असेट्स रिलीफ प्रोग्राम (TARP) पर अमेरिकी कांग्रेस के ओवरसाइट पैनल ने भी विनियामक सुधार पर अपनी रिपोर्ट के अंत में उल्लेख किया है - 'संकट की जड़ में विनियमन की भूलें रही हैं जो संरचना से ज्यादा दर्शन से जुड़ी हैं।'

## सामाजिक उद्देश्यों की पूर्ति और मुक्त बाजार

बाजार की सत्ता में विश्वास करने वाले आर्थिक सिद्धांतकार बार-बार यह हिदायत देते हैं कि सामाजिक उद्देश्यों को पूरा करने के लिए बाजार को नियंत्रणमुक्त कर देना चाहिए। दरअसल वर्तमान संकट ने बाजार पर एक अच्छी-खासी बहस ही छेड़ दी है। वे पिछले तीन-चार दशकों में विकसित बाजार के महाकाय स्वरूप और इस क्रम में वित्तीय बाजारों से इस बात की विशेष ख्वाहिश रखते हैं कि वे लोगों की बचत को बेहतरीन ढंग से निवेश कर आर्थिक-सामाजिक कल्याण का मार्ग प्रशस्त करेंगे। वित्तीय सुधारों पर संयुक्त राष्ट्र आयोग की चर्चाओं में बाजार के बारे में उछाले गए ऐसे कई दावों की पड़ताल की गई। मसलन, क्या वित्तीय बाजारों के फैलाव ने वित्त को, जिसकी हैसियत एक सेवक की थी, उसे अर्थव्यवस्था और प्रकारांतर से पूरे समाज का मालिक बना दिया है। बाजार की प्रक्रियाओं के तेवर और उन्हें समझने के लिए अर्थशास्त्रियों द्वारा अपनाए जाने वाले मॉडलों को लेकर बुद्धिजीवियों, नीति-निर्माताओं और बाजार के खिलाड़ियो के बीच तीखी बहस छिड़ी हुई है। ये लोग दबी जुबान से मानने लगे हैं कि वित्त प्रदाताओं के निजी जोखिम तथा जनता के सामाजिक जोखिम के बीच ज़रूर कोई-न-कोई गड़बड़ तालमेल रहा है। अब सब चीजें जगजाहिर हो जाने के बाद मौज़ूदा संकट को वालस्ट्रीट की भाषा में मुक्त बाजार व्यवस्था की कोख से जन्मा ड्रैगन भी कहा जाने लगा है।

## बाजार का तिलिस्म

भूमंडलीकरण और उदारीकरण के साथ मुक्त बाजार के आगमन से न केवल दुनिया की अर्थव्यवस्था में आमूल-चूल बदलाव आया बल्कि उसके हाथों उपभोग और स्थूल आनंद की नई परिभाषा भी गढ़ी गई। उपभोक्तावाद एक संस्कृति बनता गया। मुनाफा नैतिकता की नई कसौटी और आवारा पूंजी समस्त विलास-वैभव की अचूक साधन बन गई। उसकी लंबी परियोजना को देखें तो लगेगा कि यदि सब ऐसे ही चलता रहा तो एक दिन यह दुनिया ही एक कारपोरेट में तब्दील हो जाएगी। मुनाफा कमाने वाला कारपोरेट लोगों में बाजार के प्रति ऐसी श्रद्धा जगाने लगा मानो वह अष्ट-सिद्धि-नवनिधि का दाता हो। कारपोरेट एक मंदिर हो और पूंजी उसमें अधिष्ठित देवी।

अगर अमेरिका की मुक्त बाजार आधारित अर्थव्यवस्था और उसके गर्भ से जन्मे बाजारवाद, भोगवाद और उसे युग की प्रवृत्ति के रूप में स्थापित करने वाले अमेरिकी मीडिया की करामात को मनुष्य के सांस्कृतिक पक्षाघात के रूप में देखना हो

तो चर्चित सामाजिक मनोविज्ञानी डेविड मेयर्स की पुस्तक 'अमेरिकन पैराडॉक्स - स्प्रिचुअल हंगर इन एन एज ऑफ प्लेन्टी' पढ़ना रोचक होगा। उसका एक मौजूँ उद्धरण देखिए - ''हमे पहले से ज्यादा पैसे मिलते हैं, पहले से बेहतर रोटी-कपड़े का इंतजाम हो गया है, बेहतर शिक्षा की व्यवस्था के साथ-साथ काफी मानवाधिकार, संचार और यातायात के तीव्र साधन और सुविधाएं भी उपलब्ध हैं। विडंबना है कि फिर भी 1960 के बाद 30 सालों में.........तलाक की घटनाओ में दोगुनी, आत्महत्याओं में तिगुनी, हिंसा की दर्ज घटनाओं में चौगुनी, जेल में बंद सजायाफ्ता अपराधियों की संख्या में पांच गुनी.........वृद्धि हुई है।''

बाजारवादी प्रलोभनों से मानसिक शांति नहीं मिल सकती। पूंजी और बाजार आधारित अर्थव्यवस्थाओं की दुश्चिंताएं इतनी विकराल हैं कि सन् 1970 में ही मशहूर अर्थशास्त्री टिबोर सिटोवस्की ने ऐसी अर्थव्यवस्था को एक 'नीरस अर्थव्यवस्था' (Joyless Economy) की संज्ञा दे दी थी। इसी नाम से उनकी एक बहुचर्चित पुस्तक भी निकली थी जिसने इतनी धूम मचाई कि उसे 20वीं सदी की कुछ चुनिंदा पुस्तकों में शुमार किया जाता है।

बाजार में मनुष्य जीवन की हर चीज को एक वस्तु या उत्पाद की तरह हासिल करने के फिराक में रहता है। एक दार्शनिक एरिक फ्रॉम थे जिन्होंने जीवन में 'प्राप्ति-कामना' का सिद्धांत दिया था। यह मनुष्य का एक खास आलम होता है। इस आलम में हम सफलता, सुख, प्रेम आदि को अपने से अलग कोई चीज मानकर उन्हें किसी भी कीमत पर हासिल कर लेना चाहते हैं।

बाजार किसी भी कीमत पर सफलता की सीख देता है। वह सक्सेसफुल को फेथफुल से ऊंची चीज मानता है। ऐसे माहौल में जब कि भूतपूर्व फेड सुप्रीमो ग्रीन्सपैन के माथे पर अभी तक एक भी शिकन न पड़ी हो और वे मुक्त बाजार की खुलकर हिमायत करते हों और यह कहते फिरते हों कि बाजार की फितरत के साथ ये बाते जुड़ी हैं और बाजार की चाल-ढाल से छेड़छाड़ नहीं की जा सकती तो भूमंडलीकरण का यह अर्थ निकाले जाने का खतरा बढ़ता जाएगा कि भूमंडलीकरण माने भू-मंडल को बाजार बनाने की परियोजना। ऐसे में उत्पादों का मोह, विज्ञापनों का मायाजाल, देह की उत्तेजना से मुनाफा कमाना बाजार का नया दर्शन रचते हैं। घर, मोटर, गैजेट, घड़ी, जूते, ड्रेस के प्रसिद्ध ब्रांडों को हासिल करने की बेताब तमन्नाएं ही कंज्यूमर ड्रिवेन सोसायटी के सामूहिक मानस का निर्माण करती हैं। स्किल्ड शॉपिंग भी सफल प्रबंधन का एक अध्याय बन जाती है। सफलता इस बात से तय होने लगती है कि बाहर शो-रूमों में सजी चीजों को खरीदने की आपकी हैसियत कितनी है। बाजार में मनुष्य जीवन की हर चीज को एक वस्तु या उत्पाद की तरह हासिल करने के फिराक में रहता है। एक दार्शनिक एरिक फ्रॉम थे जिन्होंने जीवन में 'प्राप्ति-कामना' का सिद्धांत दिया था। यह मनुष्य का एक खास आलम होता है। इस आलम में हम सफलता, सुख, प्रेम आदि को अपने से अलग कोई चीज मानकर उन्हें किसी भी कीमत पर हासिल कर लेना चाहते हैं। यह एक अजीब सनक है जो हमारी जुबान तक को बदलकर रख देती है - हम हर चीज को ''प्राप्त करने'' (having mode) के अंदाज में बोलने लगते हैं - मसलन अचिविंग सक्सेस, गेटिंग दि गर्ल तथा 'हैविंग' अ ग्रेट लाइफ आदि। उसके बाद तो बाजार के इस युग में व्यक्ति की पहचान ही समाप्त हो जाती है और उसकी जगह पैदा होता है - शॉपर, कंज्यूमर, कस्टमर, बारोअर, ब्रोकर और इनवेस्टर के रूप में इस 'बाजारोन्मादी समाज' (Manic Society) का एक नया नागरिक।

## टू बिग टू फेल

लीमन ब्रदर्स जैसी नामचीन संस्थाओं के खंड़हरों से आर्थिक जगत को एक नई विचारधारा या कह लीजिए चर्चा के लिए एक नया मुहावरा हाथ लग गया है। यह है - Too Big to Fail. इसका सरल अर्थ है कि बहुत बड़ी वित्तीय संस्था होगी तो सरकार या नीति-निर्माता उसे बर्बाद नहीं होने देंगे क्योंकि उसका असर वित्तीय बाजारों और क्षेत्रों के अलावा पूरी अर्थव्यवस्था पर पड़ेगा। इसी सुरक्षा कवच के भीतर ऐसी बड़ी-बड़ी संस्थाएं निजी लाभ के लिए निड़र होकर बड़े जोखिम उठाती हैं। ऐसे में लीमन ब्रदर्स ही जोखिम उठाने का साहस कर सकता है - बेचारा साबुन की फैक्ट्री चलाने वाला बिज़नस में ऐसी जुर्रत कैसे कर सकता है?

अमेरिका के संदर्भ में यह कहा जाता है कि वहां के पूंजी बाजारों तथा डेरिवेटिव बाजार ऋणों की राशि नगण्य है। इसलिए विशाल वित्तीय संस्थाओं के बारे में यह कहा जा सकता है कि वे न केवल इतनी विशाल हैं कि फेल नहीं हो सकतीं बल्कि बोस्टन कॉलेज के एडवर्ड केन के शब्दो में ''वे इतनी दुष्कर भी हैं कि न तो फेल हो सकतीं और न ही उन्हें बंद किया जा सकता है।'' इसी को ग्रेशम का वित्तीय संरचना का नियम भी कहा जाता है। इस नियम के अनुसार माना जाता है कि 'The large and the bad can drive out the good'

## समाधान क्या है?

अब जब इस आर्थिक मंदी की चपेट से दुनिया के बाहर निकलने के संकेत मिलने लगे हैं - आर्थिक विशेषज्ञों और नीति-निर्माताओं का ध्यान संकट से निपटने के बाद अर्थव्यवस्थाओं की बहाली पर केंद्रित हो गया है। इस संबंध में भारतीय रिज़र्व बैंक के गवर्नर डॉ.डी.सुब्बाराव का ''शुड बैंकिंग बी मेड बोरिंग? - एन इंडियन पर्सपेक्टिव'' नामक हाल का भाषण पढ़ना ज्ञानवर्द्धक होगा। उन्होंने इस वित्तीय संकट के बाद समाधान के रूप में नोबल विजेता अर्थशास्त्री पॉल कुर्गमैन के 'बोरिंग बैंकिंग' के विचार और उसके बाद बैंक ऑफ इंग्लैंड के गवर्नर मेर्विन किंग के 'यूटिलिटी एण्ड कैसिनो' तथा भारतीय रिज़र्व बैंक के निवर्तमान गवर्नर डॉ.वाई.वी.रेड्डी के 'बैक टू बेसिक्स' के विचारों की पड़ताल की है। इन तीनों अर्थशास्त्रियों के विचारों का सार लगभग एक है। अर्थात वर्तमान वित्तीय संकट से निकला स्पष्ट सबक है कि बैंक अपनी परंपरागत भूमिका में पुन: लौटें। वे लोगो से जमाराशियाँ लें और उधार दें। अपने को भुगतान और निपटान सेवाओं तक सीमित करें।

डॉ.सुब्बाराव का मानना है कि बैंकिंग का परंपरागत स्वरूप नि:संदेह पचास और साठ के दशक के बहुत अनुकूल था। लेकिन, आज के 24 x 7 x 365 परिदृश्य में वह शायद ही व्यावहारिक हो। उन्होंने समाधान के लिए अपनी जरूरतों को ध्यान में रखते हुए पीछे देखने के बज़ाय आगे देखने पर बल दिया है। सूचना प्रौद्योगिकी तथा नवोन्मेषी बैंकिंग सेवाओं और उत्पादो के आगमन के बाद बैंकिंग सुविधाएं हमारी दहलीज तक पहुँच गई हैं। अब हमारे लगभग सभी जरूरी लेनदेन, आहरण और भुगतान की जरूरतें साल के किसी भी दिन 24 घंटे में कभी भी पूरी हो जाती हैं। इसके लिए सीमेंट और कांक्रीट की बनी बैंक शाखा में जाना अनिवार्य नहीं रह गया है। इसे ही 24 x 7 x 365 बैंकिंग कहा जा रहा है।

विश्व स्तर पर ऐसी संस्थाओ के निर्माण की आवश्यकता महसूस की जा रही है जो 'नैरो बैंकिंग' की परिधि से बाहर जाकर ग्राहकों, बाजारों तथा अर्थव्यवस्थाओं को समग्र वित्तीय सेवाएँ प्रदान करें। इस काम में पिछले कुछ दशको में अर्जित नवोन्मेषी वित्तीय उपलब्धियों को आधार बनाया जा सकता है, लेकिन हाल के अनुभवों से सबक लेकर सुधारों के प्रति भी सचेत रहना होगा।

समष्टि-आर्थिक दृष्टिकोण से वित्तीय संस्थाओं का विनियमन और पर्यवेक्षण आवश्यक है, लेकिन यही पर्याप्त नहीं है। इस क्रम में वित्तीय संस्थाओं के लिए पूँजी बफर, उन पर प्रणालीगत जोखिम पूँजी अधिभार लगाने, प्रो.रघुराम राजन द्वारा प्रस्तावित आकस्मिक पूँजी, वैश्विक विनियमन ढांचा, विनियमन के मौजूदा दायरे को बढ़ाकर अभी तक डिरेगुलेटेड संस्थाओं को उसके भीतर लाने जैसे उपायों पर विचार-मंथन चल रहा है। व्यष्टि-आर्थिक दृष्टिकोण से पूँजी की गुणवत्ता में सुधार, चलनिधि जोखिम विनियमन के वैश्विक मानक विकसित करने का प्रस्ताव भी विचाराधीन है।

एक खस्ताहाल विशाल वित्तीय संस्था की स्थिति सुधारकर उसे पटरी पर तभी लाया जा सकता है जब डेरिवेटिव एक्सपोज़र ब्यौरे का पूरा नक्शा सामने हो, अलग से वास्तव में मार्जिन/पूंजी रखी गई हो, कीमतों का निर्धारण नियमित रूप से किया जाता हो तथा डेरिवेटिवों की खरीद-फरोख्त के लिए बाजारों को उस सीमा तक पूंजीकृत किया गया हो जिससे कि उनके चलते अर्थव्यवस्था खतरे में न पड़े। वित्तीय सुधारों पर संयुक्त राष्ट्र के आयोग की रिपोर्ट में इसके समाधान के कुछ उपाय सुझाए गए हैं। इसके अलावा हाल ही में फेड रिज़र्व के पूर्व प्रमुख पॉल वॉकर की अध्यक्षता में जी-3 की रिपोर्ट से भी ऐसे कुछ प्रस्तावों के संकेत मिले हैं जिनमे सुरक्षा कवच के भीतर महफूज विशाल वित्तीय संस्थाओं को जटिल डेरिवेटिव व्यवसाय तथा सट्टेबाजी

पर चलने वाले कारोबार से अलग करने की संस्तुति की गई है। इसके पक्ष में दलील यह दी जा रही है कि 'क्रोनी कैपिटलिज्म' की बुराइयों को तभी कम किया जा सकता है और तभी 'टू बिग टू फेल' की छवि वाली विशालकाय वित्तीय संस्थाओं की यह सोचने की आदत छुड़ाई जा सकती है कि संकट में फंसने पर उन्हें सरकारी सहायता के रूप में 'बेल-आउट' मिल जाएगा। दूसरे शब्दो में, उनका यह भरोसा तोड़ना जरूरी है कि उनके हर दुर्दिन में उनके लिए 'लेमन सोशलिज्म' का पैकेज जारी कर दिया जाएगा। अभी तक तो वे यही समझकर बहुत फूले नहीं समाते होंगे कि चलो चित भी मेरी पट भी मेरी। मुनाफा हुआ तो वह व्यक्तिगत और घाटा हुआ तो उसका समाजीकरण।

नोबल विजेता अर्थशास्त्री जोसफ स्टिगलीज का मानना है कि इस मंदी ने आर्थिक चिंतन के लिए एक नई उर्वर जमीन तैयार कर दी है। आज की बेहद जटिल आर्थिक प्रणाली की कार्यशैली को समझने के लिए नई अंतर्दृष्टि चाहिए जो नए शोध और अध्ययन से ही प्राप्त हो सकती है। शायद नया अकादमिक शोध इसलिए भी जरूरी है कि हम ऐसी नीतियों की खोज कर पाएं जिससे आर्थिक मंदी की घोर विपदाओं की पुनरावृत्ति न हो। इस पृष्ठभूमि में अर्थशास्त्र के क्षेत्र में जो रोमांचक कार्य किए जा रहे हैं उनमे मनोवैज्ञानिकों, राजनीतिक चिंतकों तथा समाजशास्त्रियों के काम भी शामिल हैं। इस दिशा में पहल करते हुए जॉर्ज सोरोस ने अभी हाल ही में बुडापेस्ट के सेंट्रल यूरोपियन यूनिवर्सिटी में 'इनिशिएटिव फॉर न्यू इकॉनामिक थिंकिंग' (आईएनईटी) नामक एक संस्था के निर्माण की घोषणा की है। सोरोस ने अपनी इस पहल पर विचार-विमर्श के लिए कुछ महीने पहले आर्थिक जगत की तमाम महान हस्तियों को एक मंच पर इकट्ठा किया था जिसमें सिद्धांत-नीति, वामपंथी-दक्षिणपंथी, युवा-बुजुर्ग, व्यवस्था के पक्षधर और व्यवस्था के विरोधी सभी प्रकार के बुद्धिजीवी आए थे।

## नैतिक आयाम

वित्तीय कारोबार भी ईमानदारी और भरोसे पर टिका है। नकदी की कमी यानि क्रेडिट क्रंच तभी पैदा होता है जब क्रेडिट के लैटिन पर्याय (credere) की आत्मा घायल कर दी जाए। लैटिन में इस शब्द का मतलब भरोसा ही होता है। इसलिए वित्तीय कारोबार का मूलाधार ही भरोसा है। लेकिन, ब्रिटिश व्यापारी निक लीसन, न्यूयार्क स्टाक एक्सचेज के पूर्व अध्यक्ष बर्नी मेटॉफ, वाल स्ट्रीट के बड़े घोटालों के सरताज डेनिस लेवाइन के कारनामों, भारत में अभी सबसे हाल के सत्यम प्रकरण से दुनियादारी का एक अलग फलसफा सामने आता है जो यह मानता है कि वित्तीय व्यवस्था का सीधा अर्थ ही होता है - पैसा कमाना - येन-केन-प्रकारेण। हमारे देश में भी हर्षद मेहताओं, केतन पारीखों और तेलगियों की कमी नहीं है जिन्होंने घपलेबाजी के अपने नायाब तरीकों की बदौलत वित्तीय बाजार और शेयर बाजार से जमकर कमाया - नैतिकता जाए भाड़ में। लूट में अगाध विश्वास करने वाले इस वर्ग के लिए सत्यम्-असत्यम् में कोई फ़र्क नहीं।

वर्तमान वित्तीय संकट का सबसे दुखद पहलू है कि घोटालों की इस संस्कृति ने बाजार की साख पर बट्टा लगाया है। झूठ और फरेब का पुलिंदा खुलते ही बाजार अचानक अविश्वसनीय हो गया है। आधुनिक पूँजीवाद के गॉडफादर एडम स्मिथ ने भी पूँजी को कभी इतना ऊँचा दर्जा नहीं दिया था कि उसमें से अनैतिकता की बू आने लगे। उनके अर्थशास्त्र के आर्थिक आयाम अलग से अध्ययन का विषय हो सकते हैं। दरअसल वे अर्थशास्त्री थे ही नहीं; वे तो पेशे से मॉरल फिलासॉफी के प्रोफेसर थे।

## निष्कर्ष

इस मंदी से समाज और अर्थव्यवस्था को भारी क्षति पहुँची है। लेकिन, विडंबना है कि आर्थिक मंदी से पहले बूम के समय 'ऋण लेकर घी पीने की संस्कृति' का प्रचार करने वालों और दोनों हाथों से फायदे बटोरने वालों के चलते ही यह आर्थिक संकट पैदा भी हुआ और फिर उन्हीं हाथों को 'लेमन सोशलिज्म' के तहत भारी-भरकम बेल-आउट का आकर्षक उपहार भी थमाया गया। स्मिथ से लेकर रिकार्डो तथा मिल तक शास्त्रीय उदारवाद इस अर्थ में एक क्रांतिकारी विचारधारा रही है कि उसने बड़े जमीदारों तथा व्यापारिक हितों पर करारा प्रहार किया था। इसके विपरीत, आज का एक भद्दा नव उदारवाद उसका अवतार बनकर 'मुक्त बाजार के विमर्श को विकृत रूप में विशाल कार्पोरेशन जैसी एक समकालीन संस्था के पक्ष में

इस्तेमाल कर रहा है। ग़ौर करने की बात है कि यह कार्पोरेशन अपनी ताकत और कायदे-क़ानूनों में पुराने समय के स्थापित कुलीन-तंत्र तथा सामंती व्यवस्था की याद दिलाता है।

भारत के विशेष संदर्भ में यह विश्वास के साथ कहा जा सकता है कि भारत सरकार तथा भारतीय रिज़र्व बैंक की मुस्तैदी और समय पर लिये गए उनके नीतिगत फैसलों का नतीजा था कि आर्थिक मंदी का बहुत कम असर देश पर पड़ा। जीडीपी कम हुआ। विकास दर नीचे आ गयी, शेयर बाजार ठंडा पड़ गया और निर्यात घट गया। ये भी तथ्य हैं। लेकिन, कुल मिलाकर हमारी स्थिति उतनी खराब नहीं हुई जितनी यूरोप और अमेरिका की हुई। इसे ही कहीं 'डीकपलिंग' तो कहीं 'इंसुलेशन' कहा गया। मीडिया ने कई जगह लिखा और बताया भी कि भारत सिर्फ योग ही नहीं अर्थव्यवस्था का भी पाठ पढ़ा सकता है।

विश्व मंच पर भारत की सशक्त उपस्थिति और एक शक्ति के रूप में उसकी बनती छवि विकास के जिन मज़बूत स्तंभों के दम पर टिकी है उनमें बैंकिंग एक महत्वपूर्ण स्तंभ है। यह भारत के आर्थिक विकास का इंजिन साबित हुआ है। पिछले कुछ वर्षों में भारतीय विकास की जो कहानी दुनिया-भर में चर्चित रही है उस कहानी की एक अहम किरदार बैंकिंग रही है। अभी हाल में जब दुनिया की बड़ी-बड़ी अर्थव्यवस्थाएँ आर्थिक मंदी की मार से बेक़दर पस्त हो रही थीं, भारत पर उसके नगण्य प्रभाव ने भी दुनिया का ध्यान यहाँ की बैंकिंग प्रणाली की तरफ़ खींचा है।

अमेरिकियों को आश्चर्य है कि इस वैश्विक वित्तीय संकट से भारतीय बैंकिंग प्रणाली अछूती कैसे रह गई। अमेरिकी सांसदों के एक दल ने कहा कि वे भारतीय बैंकों की मजबूती के रहस्यों को जानना चाहते हैं। हाल ही में अमेरिकी सांसदों के दल ने उद्योग मंडल फिक्की के साथ एक बैठक में इस वित्तीय उथल-पुथल के बावजूद भारतीय वित्तीय प्रणाली पर उसके कोई खास असर नहीं पड़ने के कारण भारतीय रिजर्व के कामकाज की सराहना की।

दल के नेता और अमेरिकी संसद के विदेश मामलों की समिति के अध्यक्ष सांसद होवार्ड बर्मैन ने कहा कि हम भारत के बैंकिंग विनियमन के रहस्य को जानना चाहते हैं जिसकी वजह से भारतीय वित्तीय संस्थाओं पर अमेरिका और अन्य पश्चिमी देशों जैसा असर नहीं हुआ। संभवत: यह रहस्य इस बात में निहित है कि भारत की आर्थिक नीति मुक्त बाजार तथा विनियमन में सामंजस्य को प्रतिबिंबित करती है जो वैश्विक स्तर पर प्रासंगिक बनने के लिए राष्ट्रीय हितों के साथ समझौता करने की तरफ नहीं झुकी है।

वास्तव में, भारत में दो दशक पहले आर्थिक सुधारों का कार्यक्रम शुरू हो चुका था। इसी क्रम में बैंकिंग सुधारों का ब्लू-प्रिंट भी तैयार किया गया था। इन सब का मकसद था भारतीय अर्थव्यवस्था का विश्व के साथ एकीकरण। बीस साल पहले का दौर एल.पी.जी. का था। एल.पी.जी. अर्थात लिबरलाइजेशन, प्राइवेटाइजेशन और ग्लोबलाइजेशन। नयी अर्थव्यवस्थाएं करवट ले रही थीं। बाजार आधारित अर्थव्यवस्थाओं की एक नयी जमीन तैयार हो रही थी। अर्थव्यवस्थाओं की जकड़नें ढीली की जा रही थीं। भारत भी इस बदलते आर्थिक माहौल में खुद को व्यवस्थित करने के लिए खुलेपन का स्वागत कर रहा था। ज़ाहिर है अर्थव्यवस्था में भी खुलापन समय की माँग थी। आर्थिक क्षेत्र को उदार तथा विनियमन के अनुशासन को थोड़ा नरम बनाया गया। यह सब सोच-समझ कर क्रमिक रूप से किया गया। बाजार का स्वागत भी लेकिन थोड़ी सतर्कता और विवेकपूर्ण विनियमन के पहरे के साथ। भारत में अर्थव्यवस्था को पूरी तरह बाजार के हवाले नहीं किया गया बल्कि ऐसी नीतियां बनायी गयीं कि बाजार से अर्थव्यवस्था को गति और गहराई मिले। वह प्रगति और विकास के एजंडे को आगे बढ़ाने वाली अर्थव्यवस्था बने। भारत के नीति-निर्माताओं ने मुक्त बाजार और सम्यक विनियमन के बीच संतुलन और बेहतर तालमेल बनाए रखने की रणनीति अपनाई। मंदी के इस विप्लवकारी समय में भारत की स्थिर अर्थव्यवस्था और सुदृढ़ विकास का आधार उसकी यही आर्थिक दृष्टि है।

# अत्यधिक दोहन से आता है आर्थिक संकट

● विनय बंसल
भारतीय स्टेट बैंक
आगरा मुख्य शाखा

प्रत्येक देश अपने आर्थिक विकास के लिए प्राकृतिक एवं आर्थिक संसाधनों पर निर्भर है। इन संसाधनों के अनुकूलतम दोहन द्वारा ही तीव्र विकास दर हासिल की जा सकती है। यदि कोई अर्थव्यवस्था संसाधनों का अल्प दोहन करती है तो उसकी विकास दर अपेक्षाकृत कम होगी। अत: संसाधनों का अल्प दोहन करने वाली अर्थव्यवस्थाओं के लिए यह आवश्यक है कि वे संसाधनों का प्रयोग बढ़ाएं और उनका अनुकूलतम दोहन करें। यहां पर यह ध्यान रखना आवश्यक है कि संसाधनों के अत्यधिक दोहन से आर्थिक संकट की स्थिति उत्पन्न हो सकती है।

## प्राकृतिक संसाधनों का दोहन

ऊर्जा के परंपरागत स्रोतों के अत्यधिक दोहन से इनके भंडार कुछ समय बाद समाप्त हो जाएंगे। इनके समाप्त होने पर ऊर्जा का भयंकर संकट पैदा हो सकता है। संसार के अनेकों उद्योग-धंधे इस संकट के कारण बंद हो सकते हैं। भू-जल के अत्यधिक दोहन से भू-जल स्तर में निरंतर गिरावट आ रही है। यदि जल्द ही जल सरंक्षण हेतु समुचित प्रयास नहीं किए गए तो एक दिन ऐसा आएगा जब पीने के लिए स्वच्छ जल मिलना मुश्किल हो जाएगा। इलेक्ट्रॉनिक उपकरणों के अत्यधिक दोहन से उनके जहरीले कचरे में शामिल कैडमियम, पारा आदि पदार्थ मनुष्य के स्वास्थ्य को नुकसान पहुंचा सकते हैं। उर्वरकों का अत्यधिक प्रयोग कृषि एवं उपजाऊ भूमि को बंजर बना सकता है। संसाधनों के अत्यधिक दोहन से पृथ्वी पर जीवन संभव बनाने वाले पदार्थों का संतुलन बिगड़ जाएगा जो मानव जाति के लिए संकट उत्पन्न कर सकता है।

धरती पर कोयला, ईंधन, लकड़ी के जलने से कार्बन-डाई-ऑक्साइड गैस की उत्पत्ति हो रही है। धुआँ फैलाने वाले वाहन तथा कारखाने कार्बन-डाई-ऑक्साइड गैस का अधिक मात्रा में उत्सर्जन कर रहे हैं। फलस्वरूप धरती का तापमान बढ़ रहा है और वैश्विक उष्णता (ग्लोबल वॉर्मिंग) का संकट उत्पन्न हो रहा है। बढ़ते तापमान से विशाल हिमखण्ड पिघलने व टूटने लगे हैं। इससे समुद्र के जलस्तर में वृद्धि हो रही है। यदि समुद्र का जलस्तर इसी तरह बढ़ता रहा तो समुद्रतल के साथ जुड़े हुए देश जलसमाधि में परिणत हो सकते हैं। वैश्विक उष्णता से जलवायु में भी गंभीर बदलाव आते हैं। इससे हमें सूखे व बाढ़ के प्रकोप का कोपभाजन होना पड़ सकता है। वैश्विक जलवायु के परिवर्तनों के कारण मानव जाति, पेड़-पौधों और पशुओं के लिए अभूतपूर्व और बड़ा संकट उत्पन्न हो सकता है। विषम मौसम के प्रति कृषि की असुरक्षितता के कारण इसका कृषि पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा जिसके परिणाम विश्व के निर्धन और भूखे लोगों को झेलने पड़ेंगे। वर्षा के पैटर्न में बुनियादी परिवर्तनों तथा बढ़ते तापमान से फसल की बुआई की अवधि कम हो जाएगी, फसल की उपज में कमी आएगी जिसके कारण खाद्य सुरक्षा पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा। *यूनाइटेड नेशन्स गवर्नमेंटल पैनल ऑन क्लाइमेट चेंज* की रिपोर्ट के अनुसार पृथ्वी की सतह का तापमान पिछले 100 वर्षों में औसतन 0.74 डिग्री सैल्सियस बढ़ा है। लेकिन अगली शताब्दी में इसके औसतन 3 डिग्री सैल्सियस बढ़ने की संभावना है।

> धरती का तापमान बढ़ रहा है और वैश्विक उष्णता (ग्लोबल वॉर्मिंग) का संकट उत्पन्न हो रहा है। बढ़ते तापमान से विशाल हिमखण्ड पिघलने व टूटने लगे हैं। इससे समुद्र के जलस्तर में वृद्धि हो रही है। यदि समुद्र का जलस्तर इसी तरह बढ़ता रहा तो समुद्रतल के साथ जुड़े हुए देश जलसमाधि में परिणत हो सकते हैं।

शहरीकरण और उद्योग हमारी कृषि-योग्य भूमि को निगलते जा रहे हैं। यदि समय रहते वन संरक्षण एवं मृदा संरक्षण जैसे आवश्यक कदम नहीं उठाए गए तो खाद्यान्न संकट उत्पन्न हो सकता है। वनाच्छादित क्षेत्र लगातार कम होते जाने से मानसून वर्षा में कमी होती जा रही है। इससे खाद्यान्न उत्पादन बुरी तरह

प्रभावित हो रहा है। खाद्यान्न में कमी होने से विकास दर पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा और मंहगाई बढ़ेगी।

## वित्तीय संसाधनों का दोहन

संकट किसी भी व्यक्ति, कंपनी या अर्थव्यवस्था के सामने कब आ जाए, कहा नहीं जा सकता क्योंकि सभी के सामने किसी न किसी रूप में जोखिम प्राय: हर समय ही विद्यमान रहते हैं। बैंकों व वित्तीय संस्थाओं के सामने ऋण जोखिम, मूल्य जोखिम, तरलता जोखिम, ब्याज दर जोखिम, परिचालन जोखिम, विनिमय दर जोखिम, प्रौद्योगिकी जोखिम, विलयन जोखिम, मानव संसाधन जोखिम, विधिक जोखिम आदि अंतर्निहित एवं अपरिहार्य तत्त्व हैं। इन जोखिमों से बचने के लिए बैंकों एवं वित्तीय संस्थाओं को समुचित जोखिम प्रबंधन नीति (जोखिम की समय-पूर्व ठीक प्रकार पहचान, जोखिम का सही मापन तथा जोखिम नियंत्रण) अपनानी चाहिए। बैंक ऑफ क्रेडिट एंड कॉमर्स इंटरनेशनल, बेयरिंग्स बैंक (फरवरी 1995 में), डाइवा बैंक (सितम्बर 1995 में), जैसे व्यावसायिक संगठन इसीलिए समाप्त हो गए क्योंकि उनके उच्च प्रबंधन ने जोखिम प्रबंधन नीति पर ध्यान नहीं दिया। वहां पर वित्तीय संसाधनों का अत्यधिक दोहन किया गया।

व्युत्पन्नी प्रपत्र और संरचित प्रपत्र वित्तीय बाजार में तरलता बढ़ाने में सहायक हैं। तथापि हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि अत्यधिक दोहन से ही 1997 में पूर्वी एशियाई देशों में संकट आया था। किसी अर्थव्यवस्था की विकास संभाव्यता का दोहन करने के लिए गहरे एवं कार्यकुशल वित्तीय बाजार आवश्यक हैं, तथापि अत्यधिक दोहन वित्तीय संस्थाओं एवं अर्थव्यवस्था दोनों के लिए संकट का कारण बन सकता है।

## वैश्विक वित्तीय संकट

वर्तमान वैश्विक वित्तीय संकट 2007 के मध्य में अमरीका में सब-प्राइम बंधक से शुरू हुआ और धीरे-धीरे अर्जेण्टीना, ब्राजील, बुल्गारिया, चिली, हंगरी, इंडोनेशिया, मैक्सिको, पेरू, रुमानिया, रूस, दक्षिण कोरिया, थाइलैंड, तुर्की, उक्रेन, कनाडा, जापान, ऑस्ट्रेलिया, न्यूजीलैंड आदि देशों में फैल गया। मार्च 2008 में बीयर स्टर्न्स, जे.पी. मॉर्गन सब-प्राइम संकट का शिकार हो गए। कुछ ही दिनों बाद दो बड़े निवेश बैंक मैरिल लिंच तथा लीमन ब्रदर्स धराशायी हो गए। अमरीका का प्रमुख वित्तीय संस्थान सिटी ग्रुप सरकारी मदद की ऑक्सीजन पर जिंदा है। अमरीका की अग्रणी बीमा कंपनी एआईजी को अक्तूबर-दिसम्बर 2008 तिमाही में 62 अरब डालर का घाटा हुआ। बैंक ऑफ अमरीका ने 17 वर्षों में पहली बार वर्ष 2008 में घाटा उठाया है। यूरोप के सबसे बड़े बैंक एचएसबीसी के सालाना मुनाफे में वर्ष 2008 में 62 प्रतिशत की गिरावट आयी है। डॉयचे बैंक और बार्कलेज बैंक की देनदारियां बहुत बढ़ गयी हैं। ब्रिटेन के रॉयल बैंक ऑफ स्कॉटलैंड तथा नार्दर्न रॉक बैंक को भारी घाटा उठाना पड़ा है। ब्रिटेन का ही ब्रैडफोर्ड एंड बिंगले पीएलसी, बेल्जियम-डच वित्तीय समूह फोर्टिस, अमरीका के वॉशिंगटन म्यूचुअल, गोल्डमैन सैक्श, मॉर्गन स्टेनले, फ्रैंकलिन बैंक, सिक्योरिटी पैसेफिक बैंक, नार्डिक बैंक, ग्लिटनिर बैंक या तो डूब गये हैं या फिर डूबने के कगार पर हैं। आस्ट्रेलिया के निवेश बैंक मैक्वायर ग्रुप को 17 साल में पहली बार तगड़ा झटका लगा है। जापान के मित्शुबिशी यूएफजे फाइनेंसियल कॉर्प के लाभ में 64 प्रतिशत गिरावट आयी है। अगस्त 2009 में अमरीका के 12 बैंक धराशायी हुए जिनमें कोलोनियम बैंक, फर्स्ट क्वेटा बैंक और केपिटल साउथ बैंक भी शामिल है। सितम्बर 2008 से अगस्त 2009 के दौरान कुल 81 अमरीकी बैंक धराशायी हो गए हैं।

अमरीका में वित्तीय बाजारों में जो उथल-पुथल शुरू हुई वह 2008-09 के दौरान आर्थिक संकट में बदल गयी। परिणामस्वरूप बड़ी अंतरराष्ट्रीय वित्तीय संस्थाएं या तो विफल हो गयीं अथवा विफल होने से बचाने के लिए उनका पुनर्गठन किया गया। कुछ बड़ी वित्तीय संस्थाओं और बैंकों के धराशायी होने पर बाजार में चलनिधि की कमी हो जाने के कारण बैंक, निवेश बैंक, बीमा कंपनियां, पेंशन निधियां, म्यूचुअल फण्ड आदि दबाव में आ गये। बैंकों के तुलनपत्रों में उल्लेखनीय रूप से क्षरण हो जाने से बैंकों के बीच अविश्वास गहरा गया जिसके परिणामस्वरूप अंतर बैंक बाजारों का कार्य बाधित हो गया और मुद्रा बाजार सूख-सा गया। इसने

ऋण संकुचन तैयार कर दिया जो कि डिलीवरेजिंग के तहत और प्रबल हो गया। अमरीका के औद्योगिक उत्पादन में वर्ष 2008 में 2.2 प्रतिशत की कमी आयी। 2009 की दूसरी तिमाही में अमरीका के समग्र औद्योगिक उत्पादन में 13.2 प्रतिशत की वार्षिक दर से गिरावट आयी। जापान के औद्योगिक उत्पादन में वर्ष 2008 में 3 प्रतिशत की गिरावट आयी। चीन व एशिया की अन्य अर्थव्यवस्थाओं में भी झटके लगे हैं।

वैश्विक वित्तीय संकट के परिप्रेक्ष्य में अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष ने कहा है कि वर्ष 2009 में विश्व की विकास दर घटकर शून्य पर आ सकती है। वैश्विक मंदी के चलते लाखों लोग फिर से गरीबी की चपेट में आ गए हैं। दुनिया की बड़ी वित्तीय संस्थाओं के लगातार कमजोर पड़ने और उपभोक्ताओं का बाजार पर विश्वास डगमगाने के कारण वैश्विक स्तर पर माँग में भारी गिरावट आई है। एशियाई विकास बैंक की रिपोर्ट के अनुसार वैश्विक संकट से दुनिया के वित्तीय बाजारों को 500 अरब डॉलर की चपत लग चुकी है। फ्रांस, ब्रिटेन और स्वीडन, जर्मनी आदि देशों में तमाम सरकारी राहत पैकेजों और केन्द्रीय बैंकों द्वारा ब्याज दरों को बेहद निचले स्तर पर लाने के बावजूद संकट के बादल मंडरा रहे हैं। विश्व बैंक के अनुसार 116 विकासशील देशों में से 94 में अर्थव्यवस्था की रफ्तार बेहद धीमी हो गयी है तथा वर्ष 2009 के दौरान विश्व अर्थव्यवस्था 1-2 प्रतिशत सिकुड़ जाएगी।

एशियाई विकास बैंक की रिपोर्ट के अनुसार वैश्विक संकट से दुनिया के वित्तीय बाजारों को 500 अरब डॉलर की चपत लग चुकी है। फ्रांस, ब्रिटेन और स्वीडन, जर्मनी आदि देशों में तमाम सरकारी राहत पैकेजों और केन्द्रीय बैंकों द्वारा ब्याज दरों को बेहद निचले स्तर पर लाने के बावजूद संकट के बादल मंडरा रहे हैं।

## उभरती बाजार अर्थव्यवस्थाओं पर प्रभाव

उभरती बाजार अर्थव्यवस्थाओं (ब्राजील, रूस, भारत, चीन, सिंगापुर, थाइलैण्ड, मलेशिया, इंडोनेशिया आदि) ने सितम्बर 2008 तक इस संकट का पर्याप्त प्रतिरोध किया लेकिन उसके बाद वे इस संक्रमण से प्रभावित हो गयीं। विकसित देशों से इन देशों को होने वाला पूँजी का प्रवाह तेजी से गिर गया। विकसित अर्थव्यवस्थाओं में आई कमजोरी उभरती बाजार अर्थव्यवस्थाओं के निष्पादन में भी परिलक्षित हुई जिससे चीन और कोरिया के औद्योगिक निष्पादन में हुई गिरावट सबसे ज्यादा रही। 2008 में मलेशिया, जो निर्यातोन्मुख अर्थव्यवस्था है, के औद्योगिक उत्पादन में 0.03 प्रतिशत की मंद वृद्धि हुई जबकि 2007 में वृद्धि की दर 2.3 प्रतिशत थी। ब्राजील में भी औद्योगिक उत्पादन 2007 के 5.9 प्रतिशत से गिरकर 2008 में 3 प्रतिशत पर आ गया।

संकट का सामना करने की सामर्थ्य रखने वाली उभरती बाजार अर्थव्यवस्थाओं के दबाव में आने का प्रमुख कारण वित्तीय इकाइयों द्वारा अपने मूल देश में पूँजीगत जरूरतों को पूरा करने के लिए वैश्विक स्तर पर डिलीवेरेजिंग का सहारा लिया जाना और उभरती बाजार अर्थव्यवस्थाओं के प्रति समय जोखिम का बढ़ जाना था। उभरती बाजार अर्थव्यवस्थाओं के बाजारों को निवेश संविभाग के प्रवाह की प्रतिकूलता, बैंक ऋणों में आई गिरावट और क्रेडिट स्प्रेड की तीव्र वृद्धि के कारण बड़े पैमाने पर घाटा उठाना पड़ा। तथापि इन अर्थव्यवस्थाओं की वित्तीय संस्थाओं में उन्नत अर्थव्यवस्था की संस्थाओं के समान भंगुरता और दबाव की व्यापकता नहीं दिखाई दी।

वैश्विक आर्थिक मंदी के परिप्रेक्ष्य में अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष ने पूर्वानुमान लगाया था कि वर्ष 2009 के उत्तरार्ध में उभरती बाजार अर्थव्यवस्थाओं के विकास का इंजन बनने से औद्योगिक अर्थव्यवस्थाएं मंदी के नकारात्मक प्रभावों से उबरना प्रारंभ कर देंगी।

## भारतीय अर्थव्यवस्था पर प्रभाव

वैश्विक मंदी के चलते भारत की आर्थिक विकास दर में भी कमी आई है। 2008-09 में भारत की आर्थिक वृद्धि दर घटकर 6.7 प्रतिशत पर आ गई जबकि इससे पहले के सालों में यह करीब 9 प्रतिशत के स्तर पर रही है।

धीरे-धीरे सामने आ रहे वैश्विक आर्थिक संकट का भारतीय वित्तीय बाजारों पर प्रभाव मुख्यत: सितम्बर 2008 से लीमन ब्रदर्स के विफल होने के बाद शुरू हुआ और यह प्रभाव

निवल पूँजी अंतर्वाह में कमी और विदेशी संस्थागत निवेशकों द्वारा इक्विटी बाजार में बिकवाली के कारण घरेलू स्टॉक बाजार में महत्त्वपूर्ण गिरावट के रूप में रहा।

अन्य उभरती बाजार अर्थव्यवस्थाओं के समान यद्यपि भारत के वित्तीय बाजारों पर सितंबर 2008 तक बंधक संकट का प्रत्यक्ष प्रभाव नहीं पड़ने पाया लेकिन लीमन ब्रदर्स के दिवालिया होने और विदेशी संस्थागत निवेशकों द्वारा बिकवाली के कारण निवल पूँजी अंतर्वाह में आई गिरावट की वजह से भारतीय वित्तीय बाजार के विभिन्न खंडों, विशेषकर विदेशी मुद्रा और मुद्रा बाजार पर दबाव पड़ा। वैश्विक वित्तीय संकट से उत्पन्न हुए आघातों से शेयर बाजार में बड़े पैमाने पर आस्तियों के मूल्य में कमी आने के अलावा देशी मुद्रा बाजार और विदेशी मुद्रा बाजारों में चलनिधि की समस्या उभरी।

वैश्विक मंदी से विश्व के श्रम बाजारों में बेरोजगारी और अनिश्चितता बढ़ी है। वैश्विक बाजारों में अधिक एक्सपोजर रखने वाले क्षेत्रों (चमड़ा, रत्न, आभूषण, वस्त्र आदि) में भारतीय कामगारों को नौकरियां गंवानी पड़ी हैं। तथापि, भारत में कृषि क्षेत्र के आघात-सह बने रहने के कारण रोजगार का ऋणात्मक प्रभाव कुछ कम ही रहा है। महंगाई दर (थोक मूल्य सूचकांक) अगस्त 2008 में 12.9 प्रतिशत पर पहुंच गयी थी। एक डॉलर का मूल्य अप्रैल 2008 में 40.02 रुपए था जो मार्च 2009 में 51.23 रुपए हो गया। गैर-खाद्य बैंक ऋण में अक्तूबर 08 में (वर्ष-दर-वर्ष आधारपर) 29.4 प्रतिशत वृद्धि हुई थी जो मार्च 2009 तक घटकर 17.5 प्रतिशत रह गई।

अप्रत्याशित वैश्विक वित्तीय संकट के कारण आर्थिक मंदी आने से केन्द्र सरकार के वित्त पर काफी दबाव आ गया। यूरोपीय संघ, ओपेक, पूर्वी यूरोप तथा दक्षिण अमरीकी विकासशील देशों को किए जाने वाले भारत के निर्यात की वृद्धि दर में कमी आयी जबकि उत्तरी अमरीका, एशिया तथा एशियाई और अफ्रीकी विकासशील देशों को किए जाने वाले निर्यात में कमी आयी। यूएस भारत के निर्यात का सबसे बड़ा बाजार बना रहा जिसके बाद यूएई, चीन तथा सिंगापुर का क्रम था। वर्ष 2008-09 के दौरान निर्यात में कमी मुख्यत: ओईसीडी तथा विकासशील देशों में, जिनका भारत के निर्यात में लगभग 38 प्रतिशत योगदान है, माँग में कमी आने के कारण आई। मंदीग्रस्त अमरीका व यूरोप के बड़े बाजारों से माँग बहुत ज्यादा घट गयी है। वर्ष 2008-09 में निर्यात केवल 15 अरब डॉलर हुआ जबकि वर्ष 2007-08 में यह 32 अरब डॉलर था। अगस्त 09 में भारत के निर्यात में 19.4 प्रतिशत की गिरावट आई और यह घटकर 14.28 अरब डॉलर रह गया। वित्तीय संकट के बाद से यह लगातार 11वां महीना रहा जब निर्यात में गिरावट दर्ज की गयी है। अगस्त 2008 में निर्यात 17.72 अरब डॉलर था।

वैश्विक मंदी की मार से देश का हस्तशिल्प निर्यात सबसे ज्यादा प्रभावित हुआ है। हस्तशिल्प क्षेत्र के लाखों कामगार बेरोजगार हो गए हैं। इंजीनियरिंग वस्तु को छोड़कर अन्य सभी क्षेत्र संकट से प्रभावित हुए। कृषि तथा संबंधित उत्पादों, रत्नों तथा आभूषणों एवं अयस्क तथा खनिज का निर्यात कम हुआ है जबकि अन्य क्षेत्रों में निर्यात की वृद्धि दर में तेज गिरावट आई। टैक्सटाइल तथा टैक्सटाइल उत्पादों के निर्यात की वृद्धि दर में तेजी से कमी आई। चमड़ा तथा उससे निर्मित उत्पादों के निर्यात की वृद्धि दर में कमी आई।

लीमन ब्रदर्स के विफल होने के पश्चात बाह्य परिवेश में अचानक बदलाव आ गया। विदेशी संस्थागत निवेशकों द्वारा भारतीय इक्विटी बाजार से भारी मात्रा में निधियों को निकाला गया जो ऋण संकुचन और वैश्विक डिलीवरेजिंग का कारण बना और जिसके परिणामस्वरूप विदेशी मुद्रा बाजार पर भी दबाव पड़ा। भारतीय कंपनियों द्वारा यह महसूस किया गया कि उन्हें विदेशों से मिलने वाला वित्तपोषण लगभग समाप्त हो गया है, जिसने उनकी ऋण आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु उन्हें देशी बैंकिंग सेक्टर का रुख करने पर मजबूर किया। देशी वित्तपोषण द्वारा विदेशी वित्तपोषण का प्रतिस्थापन किए जाने से मुद्रा बाजार और ऋण बाजार दोनों पर दबाव आ गया। विदेशी निधियन अत्यंत कम होने तथा घरेलू पूँजी बाजार में भारी गिरावट आने से म्यूचुअल फंडों और गैर-बैंकिंग वित्तीय कंपनियों पर दबाव आ गया।

## भारत सरकार तथा भारतीय रिज़र्व बैंक के प्रयास

वैश्विक संकट के असर को कम करने की चुनौती से निपटने के लिए भारत सरकार तथा भारतीय रिज़र्व बैंक दोनों ने आपसी समन्वय एवं परामर्श से कार्य किया। भारतीय रिज़र्व बैंक ने घरेलू विदेशी मुद्रा बाजार में उतार-चढ़ावों को बढ़ावा दिया। स्थिति का सामना करते हुए भारतीय रिज़र्व बैंक ने अत्यधिक अस्थिरता को रोकने के दृष्टिकोण से पर्याप्त डॉलर चलनिधि उपलब्ध करायी। भारतीय रिज़र्व बैंक द्वारा किए गए विभिन्न नीतिगत उपायों का लक्ष्य पर्याप्त डॉलर चलनिधि सुनिश्चित करना तथा उत्पादक क्षेत्रों में पूँजी के प्रवाह की निरंतरता को प्रोत्साहन देने वाले बाजार परिवेश को बनाए रखना था।

भारतीय रिज़र्व बैंक ने एफसीएनआर (बी) योजना के अंतर्गत ब्याज दर सीमा लिबोर से 100 आधार बिन्दु अधिक की है तथा एनआरई जमाराशियों पर ब्याज दर सीमा लिबोर से 175 आधार बिन्दु अधिक की है। संवेदनशील ऋणों (भू-सम्पदा क्षेत्र में बैंकों के निवेश, उपभोक्ता ऋण, पूँजी बाजार निवेश) के मामले में जोखिम भार युक्तियुक्त किया गया है। ईसीबी नीति का उदारीकरण किया है। होटल, अस्पताल, सॉफ्टवेयर कंपनियां ईसीबी के तहत ऑटोमेटिक रूट के जरिये 100 मिलियन डॉलर (प्रतिवर्ष) तक जुटा सकती हैं। कॉरपोरेट बांडों में निवेश हेतु विदेशी संस्थागत निवेश की सीमा बढ़ाकर 15 बिलियन डॉलर कर दी गयी है। म्यूचुअल फंडों के लिए विदेशी शेयर बाजार में निवेश की सीमा बढ़ाकर 15 अरब डॉलर कर दी गयी है। भारतीय कंपनियां ईसीबी के जरिये 35 बिलियन अमरीकी डॉलर तक की राशि जुटा सकती हैं। भारतीय कंपनियां विदेश स्थित संयुक्त उपक्रमों या 100 प्रतिशत हिस्सेदारी वाली अनुषंगियों में अपनी शुद्ध मालियत का 400 प्रतिशत तक ऑटोमेटिक रूट के जरिये विदेशों में निवेश कर सकती हैं। यही नहीं, ये कंपनियां 500 मिलियन डॉलर तक कर्ज वक्त से पहले चुका सकती हैं। अपनी शुद्ध मालियत के 50 प्रतिशत के बराबर राशि विदेशी शेयर बाजारों में निवेश कर सकती हैं। इसके तहत आरबीआई ने देशवासियों के लिए विदेशों में निवेश की सीमा 1 लाख डॉलर से बढ़ाकर 2 लाख डॉलर कर दी है। चलनिधि समायोजन सुविधा के तहत रेपो दर में क्रमिक रूप से 425 आधार अंकों की कटौती करके उसे 9 प्रतिशत से घटाकर 4.75 प्रतिशत किया गया है। रिवर्स रेपो दर में क्रमिक रूप से 275 आधार अंकों की कटौती करके उसे 6 प्रतिशत से घटाकर 3.25 प्रतिशत किया गया है। नकदी आरक्षित अनुपात में क्रमिक रूप से 400 आधार अंकों की कटौती करके उसे 9 प्रतिशत से घटाकर 5 प्रतिशत किया गया है। 8 नवम्बर 2008 से प्रारम्भ होने वाले पखवाड़े से सांविधिक चलनिधि अनुपात को एनडीटीएल के 25 प्रतिशत से कम करके 24 प्रतिशत किया गया है। बाजार स्थिरीकरण योजना के अंतर्गत भारतीय रिज़र्व बैंक ने 98000 करोड़ रुपये की प्रतिभूतियां वापस खरीदी हैं। इन सबके परिणामस्वरूप बैंकिंग प्रणाली में 422000 करोड़ रुपए की चलनिधि उपलब्ध हो गयी है। इसके अतिरिक्त सिडबी को 7000 करोड़ रुपए की पुनिर्वित्त सुविधा तथा राष्ट्रीय आवास बैंक को 4000 करोड़ रुपये की पुनर्वित्त सुविधा प्रदान की गयी है। बैंकों से कहा गया है कि मार्च 2010 तक टियर-I पूँजी पर्याप्तता अनुपात कम-से-कम 6 प्रतिशत रखें। वाणिज्यिक भू-संपदा जोखिम भार 100 प्रतिशत पर तर्कसंगत बनाया गया है। क्रेडिट कार्ड/पूँजी बाजार एक्सपोजर जोखिम भार 125 प्रतिशत किया गया है।

संकट के असर से घरेलू अर्थव्यवस्था को बचाने के लिए भारतीय रिज़र्व बैंक ने मौद्रिक नीति को उदार बनाया है। संकट की तीव्रता तथा निर्यात पर उसके प्रतिकूल असर से निपटने के लिए भारतीय रिज़र्व बैंक ने निर्यात ऋण तथा इसके वित्तपोषण के उदारीकरण, ऐसे ऋणों पर उच्चतम ब्याज दर में परिवर्तन, विदेशी ऋण पर ब्याज दर तथा बैंकों द्वारा डॉलर चलनिधि के प्रबंधन में लचीलापन प्रदान करने के लिए स्थायी चलनिधि सुविधा की सीमा के उदारीकरण के जरिए निर्यात को समर्थन देने के लिए कई उपाय किए। सबसे गंभीर वित्तीय संकट के सम्मुख भारतीय वित्तीय क्षेत्र की सुदृढ़ता का श्रेय वित्तीय वैश्वीकरण के प्रति भारतीय दृष्टिकोण को भी दिया जा सकता है। इस दृष्टिकोण की प्रमुख विशेषता चालू खाते को पूर्णत: खोल देना परंतु पूँजी खाते को खोलने की दिशा में नपा-तुला दृष्टिकोण अपनाना रहा है।

भारतीय रिज़र्व बैंक ने अंतरराष्ट्रीय वित्तीय परिस्थितियों के भारत पर पड़ सकने वाले असर और अवांछित आर्थिक परिस्थितियों से निपटने के लिए एक आपातकालीन योजना तैयार की है। विभिन्न परिस्थितियों (जैसे नकदी संकट, अपस्फीति, विदेशी विनियम दर में अत्यधिक उच्चावचन आदि) से निपटने के लिए अलग-अलग योजनाएं बनायी हैं। भारतीय रिज़र्व बैंक अमरीकी डॉलर की तुलना में रुपए में गिरावट पर लगातार नज़र रखे हुए है और इस दिशा में प्रयास भी शुरू किया गया है कि रुपए में अब कोई असामान्य उतार-चढ़ाव न हो। भारतीय रिज़र्व बैंक द्वारा किए गए सभी उपाय बैंकिग चैनल के माध्यम से किए गए- फिर चाहे वह चलनिधि की समस्या से निपटना हो या म्यूचुअल फंडों, गैर-बैंकिंग वित्तीय कंपनियों और आवास वित्त कंपनियों की मोचन जरूरतों को पूरा करना रहा हो।

आर्थिक मंदी का सामना करने के लिए सरकार ने घरेलू उत्पादकों को करों में छूट दी है। अर्थव्यवस्था में माँग बढ़ाने हेतु सार्वजनिक खर्चो में वृद्धि की गयी है। सरकार ने 24 फरवरी 2009 को सेवा कर तथा उत्पाद शुल्क में 2 प्रतिशत बिन्दु कटौती करने की घोषणा की है। सरकार ने माँग में जबरदस्त कमी झेल रहे एसएमई क्षेत्र को 7000 करोड़ रुपए का कर्ज सस्ती दरों पर उपलब्ध कराने की घोषणा की है। रुपये की मजबूती झेल रहे निर्यातकों को राहत देते हुए सरकार ने तीन नयी करयोग्य सेवाओं पर उन्हें सेवा कर रिफंड देने और निर्यात ऋण पर ब्याज में 2 प्रतिशत छूट का दायरा बढ़ाने की भी घोषणा की है। इसके अलावा दिसंबर 2008 तथा जनवरी 2009 में दो विशेष पैकेज घोषित करके उत्पाद शुल्क 4 प्रतिशत कम कर दिया है। फरवरी 2009 से उत्पाद शुल्क व सेवा कर में दो-दो प्रतिशत कटौती की गयी है।

### भारतीय अर्थव्यवस्था पर संकट का प्रत्यक्ष असर नगण्य रहने के कारण

जब पूरी दुनिया का बाजार ध्वस्त होने से वैश्विक अर्थव्यवस्था चरमरा गयी तथा दुनिया के कई बड़े बैंक ढह गए ऐसे समय में भी भारतीय अर्थव्यवस्था बहुत ज्यादा नुकसान उठाए बिना विकास की धीमी गति को बनाए रख सकी है। इसके मुख्य कारण निम्नलिखित हैं:

पर्याप्त विदेशी मुद्रा भंडार तथा विनिमय दरों को लंबे समय तक अधिमूल्यांकित न करना (इस पर ध्यान न देने के कारण हमें 1991 में भुगतान संतुलन के संकट का सामना करना पड़ा था)।

स्टॉक मार्केट में सट्टेबाजी करने पर नियंत्रण (इसके अभाव में 1992 में प्रतिभूति घोटाला हुआ था)।

आस्ति-देयता प्रबंधन (इसके अभाव में 1995 में बेयरिंग्स बैंक विफल हुआ)।

संसाधनों का दक्षतापूर्वक दोहन (पूर्व एशियाई अर्थव्यवस्थाओं तथा लैटिन अमरीकी अर्थव्यवस्थाओं में वित्तीय संकट का कारण यह था कि वहां पर अर्थव्यवस्थाओं का अत्यधिक दोहन किया जाने लगा था)।

ब्याज दरों का स्तर बहुत ऊँचा न होना (जमा राशियों पर ब्याज का स्तर बहुत ऊँचा होने के कारण 1997 में गैर-बैंकिंग वित्तीय कंपनियाँ विफल हुयी थीं)।

पूँजी बाजार में बैंकों का एक्सपोजर बहुत अधिक न होना (पूँजी बाजार में बैंकों का अत्यधिक एक्सपोजर होने के कारण 1997 में एशियाई संकट आया था)।

बैंकों के पास पर्याप्त तरलता (तरलता के अभाव में वर्ष 2002 में माधवपुरा मर्केण्टाइल कॉपरेटिव बैंक आदि) विफल हुए थे।

बैंकों के तुलन पत्रों में पारदर्शिता (पारदर्शिता के अभाव में वर्ष 2004 में ग्लोबल ट्रस्ट बैंक विफल हुआ था)।

बैंकों का सुदृढ़ पूँजी पर्याप्तता अनुपात (भारत में 8 प्रतिशत के अंतरराष्ट्रीय मानदंड की तुलना में यह अनुपात 9 प्रतिशत पर रखा गया है जो बासल - II आवश्यकता से 1 प्रतिशत अंक अधिक है)।

समुचित जोखिम प्रबंधन नीति (विश्वभर की वित्तीय संस्थाओं की विफलता का मुख्य कारण यह था कि वे अपने एक्सपोजर से जुड़े जोखिमों का पर्याप्त आकलन करने में असमर्थ रहे)।

बचत एव उपभोग में संतुलन (अमरीका में बचत दर कम होने तथा खर्चीला राष्ट्र होने के कारण वर्ष 2007 में सब-प्राइम संकट आया)।

बड़े स्तर पर घरेलू माँग (ऐसा न होने के कारण वर्ष 2008 में अमरीका में वित्तीय संकट गहराया)।

13. आर्थिक सुधार चरणबद्ध तरीके से एवं भारतीय परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए किए जाना।

## वर्तमान भारतीय परिदृश्य

### तालिका -1
### अनुसूचित वाणिज्यिक बैंकों का पूँजी पर्याप्तता अनुपात

| | |
|---|---|
| मार्च 1997 | 10.40 |
| मार्च 2008 | 13.08 |
| मार्च 2009 | 13.98 |

भारतीय वित्तीय प्रणाली पिछले कुछ वर्षों के दौरान सुदृढ़ हुई है और इसने आघातों का सामना करने की नमनीयता दिखायी है। बैंकिंग क्षेत्र की सुदृढ़ पूँजी की स्थिति ने, जो 9 प्रतिशत की विनियामक अपेक्षा से काफी ऊपर है, आघातों और अन्य उभरते जोखिमों का सामना करने के लिए आवश्यक सहारा प्रदान किया है। भारत के अनुसूचित वाणिज्यिक बैंकों का पूँजी पर्याप्तता अनुपात बासल समिति द्वारा निर्धारित अनुपात (8 प्रतिशत) तथा भारतीय रिज़र्व बैंक द्वारा निर्धारित अनुपात (9 प्रतिशत) से अधिक है (देखिए तालिका-1)। सीएफएसए ने पुष्टि की है कि भारत के वाणिज्यिक बैंकों की कार्य निष्पादन रिपोर्ट में सुधार हुआ है।

भारतीय अर्थव्यवस्था में अक्तूबर 2009 से सुधार आना शुरू हो गया है। हालांकि यह सुधार धीरे-धीरे आ रहा है। अर्थव्यवस्था की तस्वीर बदल रही है, उपभोक्ता बाजार के

### तालिका - 2
### भारतीय अर्थव्यवस्था की घरेलू बचत दर एवं निवेश दर
(सकल घरेलू उत्पाद का प्रतिशत)

| वर्ष | घरेलू बचत दर | निवेश दर |
|---|---|---|
| 2007-08 | 37.7 | 39.1 |
| 2001-02 | 23.5 | 22.8 |

### तालिका - 3
### भारतीय अर्थव्यवस्था की विकास दर

| वर्ष | विकास दर |
|---|---|
| 2003-04 | 8.54 |
| 2004-05 | 7.52 |
| 2005-06 | 8.99 |
| 2006-07 | 9.40 |
| 2007-08 | 9.50 |

हालात बदल रहे हैं, कंपनियों की सेहत सुधर रही है तथा नयी नौकरियों के रास्ते खुल रहे हैं। वैश्विक आर्थिक संकट का असर भारत के आवक विप्रेषणों पर उल्लेखनीय रूप से नहीं पड़ा है। 2007 में 38.7 बिलियन अमरीकी डॉलर का विप्रेषण प्राप्त हुआ तथा 2008 में 50 बिलियन अमरीकी डॉलर का विप्रेषण प्राप्त हुआ। अगस्त 2009 में 3.26 अरब अमरीकी डॉलर का विदेशी प्रत्यक्ष निवेश भारत आया था जबकि अगस्त 2008 में केवल 2.32 अरब अमरीकी डॉलर का विदेशी प्रत्यक्ष निवेश भारत में आया था। यह भारतीय अर्थव्यवस्था में विदेशी निवेशकों के बहाल होते भरोसे का प्रतीक है। अगस्त 2009 में औद्योगिक उत्पादन वृद्धि दर 22 माह के उच्चतम स्तर 10.4 प्रतिशत पर जा पहुंची है। मार्च 2009 में सेंसेक्स 8000 था जो अक्तूबर 2009 में 17400 के स्तर को पार कर गया। पिछले 17 माह में सेंसेक्स का यह उच्चतम स्तर है। घरेलू बचत दर और निवेश दर में संतुलन बना हुआ है (देखिए तालिका-2)। भारत की औसत विकास दर 2003-08 की अवधि में 8.8

प्रतिशत रही है (देखिए तालिका- 3)। मंहगाई दर घटकर 1 प्रतिशत के स्तर पर आ गई है।

## भारतीय अर्थव्यवस्था की संभावनाएं

वित्त मंत्री प्रणव मुखर्जी ने वित्त वर्ष 2009-10 के दौरान भारत की आर्थिक विकास दर 6.3-6.5 प्रतिशत रहने का अनुमान लगाया है। भारतीय रिज़र्व बैंक ने 2009-10 में विकास दर 6 प्रतिशत रहने का अनुमान लगाया है। फिक्की ने विकास दर 6 प्रतिशत रहने का अनुमान लगाया है। योजना आयोग ने विकास दर 6.3 प्रतिशत रहने का अनुमान लगाया है। प्रधानमंत्री की आर्थिक सलाहकार परिषद के अध्यक्ष सी.रंगराजन ने कहा है कि चालू वर्ष में मानसून सामान्य नहीं रहने के बावजूद अर्थव्यवस्था की विकास दर 6.25 से 6.75 प्रतिशत रहने के आसार हैं। इससे भारत दुनिया में दूसरी सबसे तेज गति से बढ़ती हुई अर्थव्यवस्था होगी। उनके अनुसार चालू वर्ष में देश की घरेलू बचत दर 34.5 प्रतिशत, विदेशी पूँजी आवक 57.3 अरब डॉलर, निर्यात 189 अरब डॉलर तथा औद्योगिक विकास दर 8.2 प्रतिशत रहने का अनुमान है।

प्रधान मंत्री की आर्थिक सलाहकार परिषद ने यह भी कहा है कि मानसून खराब रहने से कृषि उपज प्रभावित होगी और चालू वर्ष में कृषि क्षेत्र में 2 प्रतिशत की गिरावट आ सकती है। जबकि वर्ष 2008-09 में इसमें 1.6 प्रतिशत की वृद्धि हुई थी। देश में खाद्यान्न उत्पादन केवल 22.3 करोड़ टन होने का अनुमान है। इससे मंहगाई दर, जो फिलहाल 1 प्रतिशत के करीब है, बढ़कर 6 प्रतिशत तक जा सकती है। वैश्विक मंदी के बाद मंहगाई से लड़ना देश की सबसे बड़ी चुनौती होगी।

प्रधान मंत्री की आर्थिक सलाहकार परिषद ने यह भी कहा है कि मानसून खराब रहने से कृषि उपज प्रभावित होगी और चालू वर्ष में कृषि क्षेत्र में 2 प्रतिशत की गिरावट आ सकती है। जबकि वर्ष 2008-09 में इसमें 1.6 प्रतिशत की वृद्धि हुई थी। देश में खाद्यान्न उत्पादन केवल 22.3 करोड़ टन होने का अनुमान है। इससे मंहगाई दर, जो फिलहाल 1 प्रतिशत के करीब है, बढ़कर 6 प्रतिशत तक जा सकती है।

विशेषज्ञों का मानना है कि भारत के लिए आने वाले वर्ष चुनौतियों भरे होंगे। अमरीकी डॉलर के मुकाबले भारतीय रुपया कमजोर होकर 50 रुपए प्रति डॉलर के स्तर पर आ सकता है। अमरीका और यूरोप में उत्पादों की माँग में कमी होने से भारत की निर्यात कंपनियों को निराशा के दौर से गुजरना पड़ सकता है और अनेकों छोटी एवं मझौली इकाइयों में तालाबंदी करनी पड़ सकती है। सस्ते आयात भारतीय उद्योग के लिए खतरा बन सकते हैं। बैंक ऋण की मांग में कमी आ सकती है। बैंकों को बचत खाते और चालू खाते के जरिए कम लागत की जमाएं जुटाने में ज्यादा दबाव झेलना पड़ेगा। निर्यात में कोई खास वृद्धि नहीं होगी। खाद्यान्न उत्पादन की वृद्धि दर में कमी आ सकती है। वैश्विक मंदी के चलते बेरोजगारी बढ़ने की संभावना है। भारतीय उपभोक्ताओं द्वारा अपने खर्चों में कटौती करने से औद्योगिक माल की खपत में कमी आ सकती है। ऊर्जा संकट, खाद्यान्न संकट, स्वच्छ पेयजल संकट, स्वास्थ्य आदि का संकट उत्पन्न हो सकता है।

दुनियाभर में जिस हिसाब से तमाम उत्पादों जैसे स्टील, सीमेण्ट, कच्चा तेल, अनाज आदि की कीमतों में गिरावट हो रही है, उससे आने वाले समय में मुद्रा संकुचन की स्थिति पैदा हो सकती है। मुद्रा संकुचन की स्थिति में उत्पादों की कीमतों में लगातार गिरावट होती है। इसका यह मतलब नहीं है कि सब कुछ सस्ता हो जाएगा। इस स्थिति में कल-कारखानों में उत्पादन या तो बंद हो जाता है या फिर बहुत कम हो जाता है और नये उद्योग नहीं लगाये जाते हैं। इससे माल की कमी पैदा हो जाती है लेकिन इसके बावजूद माल की कीमतें नहीं बढ़ती हैं। विशेषज्ञों का मानना है कि मुद्रा संकुचन का असर मुद्रा प्रसार (मंहगाई) से भी ज्यादा खतरनाक होता है, यह अर्थव्यवस्था के बेहद कमजोर होने का द्योतक है।

शेयर बाजार की स्थिति डावाँडोल हो सकती है। बीएसई सेंसेक्स अक्तूबर 2007 में 20000 के स्तर को पार कर गया था। शेयर बाजार के इतिहास में यह अकेला ऐसा महीना था जिसमें सेंसेक्स ने मील के तीन पत्थर (18000, 19000 और 20000) पार किए। 20000 का आंकड़ा छूने के बाद सेंसेक्स लुढ़ककर मार्च 2009 के पहले सप्ताह में 8400 के

स्तर पर आ गया जो गत तीन वर्षों में सबसे निचला स्तर है। वर्तमान में यह फिर 17400 के स्तर पर आ गया है।

## भारत के लिए सबक

यदि अक्तूबर-दिसंबर 08 में विश्व में मंदी न आती तो इसके बाद आने वाली अगली मंदी भारतीय अर्थव्यवस्था को बुरी तरह तोड़ देती। वैश्विक मंदी हमें कुछ सिखाने आयी है और वह भी ऐसे मौके पर जब हम कुछ ऐसा करने जा रहे थे जो शायद अगली किसी अंतरराष्ट्रीय आर्थिक समस्या के मौके पर बहुत भारी पड़ता। यह मंदी हम सभी के लिए एक सबक है। उपभोक्ता, उद्योग, बैंक, निवेशक, सरकार सभी को इससे कुछ न कुछ सीख मिली है।

यदि उपभोक्ता को केन्द्र में रखा जाए तो यह मंदी कई नसीहतें लेकर आई है। हमारे यहां उपभोक्ता कर्ज लेकर खर्च करने लगे हैं। क्रेडिट कार्ड क्षेत्र में 17 प्रतिशत चूककर्ता हैं तथा आवास ऋण क्षेत्र में 10 प्रतिशत चूककर्ता हैं। खुदरा ऋण के मामले में 4 प्रतिशत चूककर्ता हैं। ये उपभोक्ता बचत में विश्वास नहीं रखते बल्कि *ऋण कृत्वा घृतम् पिवेत* के सिद्धान्त पर विश्वास रखते हैं। यदि ऐसे बेबी बूमर्स (अमरीका में बेबी बूमर्स उन उपभोक्ताओं को कहा जाता है जो दूसरे विश्व युद्ध के बाद पैदा हुए थे। उन उपभोक्ताओं ने कर्ज लिया और खर्च किया और जब कर्ज नहीं चुका पाये तो अर्थव्यवस्था डुबा दी।) बढ़ते जाते तो हमारी अर्थव्यवस्था भी गहरे संकट में आ जाती। इस मंदी ने हमें जगा दिया है।

यद्यपि भारतीय उद्योग खर्चे पर नियंत्रण के मामले में अमरीका से बेहतर हैं, तथापि उत्पादों की लगातार अच्छी माँग और तेज मुनाफे ने कुछ उद्योगों को आलसी बना दिया था। इस मंदी ने उन उद्योगों को सबक दिया है। यदि यह झटका नहीं लगता तो शायद उद्योग स्वयं को संतुलित करने की योजनाएं टाल देते।

बैंकों व वित्तीय संस्थाओं के लिए तो ज्यादा तगड़ा सबक है। भारत के बैंक परम्परागत बैंकिंग से हटकर निवेश बैंकिग की और अग्रसर होने लगे थे। कई बैंकों ने जोखिम भरे निवेश भी किए। यदि यह मंदी न आती तो शायद भारतीय बैंकों का भी आगे चलकर वही हाल होता जो अमरीका के बैंकों का हुआ है।

इस मंदी ने सरकार को समय रहते चेता दिया है। सरकार पूँजी खाता परिवर्तनीयता की दिशा में तेजी से बढ़ने की योजना बना रही थी। इस मंदी ने सरकार को फिर से सोचने पर विवश कर दिया है। सरकार सकल घरेलू उत्पाद की वृद्धि दर 8.9 प्रतिशत हो जाने पर संसाधनों के अधिक दोहन की योजना बना रही थी जिससे अर्थव्यवस्था की विकास दर दो अंकों में पहुँच सके। वैश्विक संकट ने सरकार को भी चौकन्ना कर दिया है। वैश्विक मंदी भारत के लिए संभलने एवं विस्तार हेतु तैयारी करने तथा अर्थव्यवस्था को सदृढ़ बनाने का अवसर है।

खाद्य एवं कृषि संगठन की एक रिपोर्ट के अनुसार वर्ष 2008 में विश्व में अनाज का रिकार्ड उत्पादन 2.286 मिलियन टन था तथा वर्ष 2009 में इसमें 3.4 प्रतिशत की गिरावट रहेगी। इससे खाद्यान्नों की अंतरराष्ट्रीय कीमतों पर दबाव पड़ेगा। रिपोर्ट में यह भी कहा गया है कि सारे संसार के 30 देशों में खाद्यान्न संकट व्याप्त है। पूर्वी अफ्रीका, दक्षिण अफ्रीका, केन्या, सोमालिया और जिम्बाबवे के सामने भोजन संकट होने का अनुमान है। अक्तूबर 2009 में अर्जेण्टीना में आयोजित संयुक्त राष्ट्र के नौवें सम्मेलन में घटते वनक्षेत्र तथा धरती के बढ़ते तापमान पर चिंता व्यक्त करते हुए कहा गया है कि यदि इस पर काबू पाने के लिए गंभीर प्रयास जल्द ही नहीं किए गए तो 2025 तक 70 प्रतिशत धरती रेगिस्तान बन जाएगी।

वैश्विक संकट का सामना करने, इसके प्रतिकूल प्रभावों से बचने तथा भावी आघातों के संबंध में विभिन्न देशों की आघात-सहनीयता को मजबूत करने के लिए कई देशों में वृद्धि को फिर से संतुलित करने की आवश्यकता है। संकट के बीच, विशेष रूप से आधिक्य वाले देश, देशी माँग में वृद्धि के संवर्धन के लिए उच्चतर व्यय के माध्यम से वृद्धि को फिर से संतुलित करने में अग्रणी भूमिका निभा सकते हैं।

निरंतर बने हुए वैश्विक असंतुलन वर्तमान संकट का प्रमुख कारण हैं। कुछ देशों में अनुपयुक्त नीतियों और विनियामक

फ्रेमवर्क के कारण यह संकट उत्पन्न हुआ है लेकिन अपर्याप्त उपभोग क्षमता के चलते कुछ देशों में बचत के आधिक्य तथा कुछ अन्य देशों में देशी बचत की तुलना में अत्यधिक उपभोग और निवेश के कारण भी ये असंतुलन उत्पन्न हुए हैं। अत: खर्च करने वालों को बचत करने की जरूरत है और बचत करने वालों को खर्च करने की जरूरत है। इसके अलावा आंतरिक निजी उपभोग पर जोर देने की जरूरत हैं।

हालांकि वर्तमान मंदी के समय भारतीय कृषि ने आघात-सहनीयता दिखाई है और वृद्धि चक्र को समर्थन दिया है, तथापि इन समस्याओं को दूर करने के लिए यदि समय रहते समुचित कदम नहीं उठाए तो वैश्विक जलवायु में हो रहे परिवर्तन से जुड़े जोखिम भावी आघात-सहनीयता को समाप्त कर सकते हैं।

सरकार निवेश परिवेश में सुधार लाने को प्राथमिकता दे न कि निवेश की मात्रा बढ़ाने में। अधिक मजबूत देशी माँग का मार्ग प्रशस्त किया जाए। सामाजिक सुरक्षा उपायों और अन्य सरकारी बीमा क्रियाविधियों पर व्यय में वृद्धि करके बचत को कम तथा उपभोग में वृद्धि की जाए। एक ऐसा तंत्र स्थापित किया जाना चाहिए जिससे तरलता को साख प्रवाह में बदला जा सके। सरकार को यह सुनिश्चित करना चाहिए कि विदेशी कंपनियां किसी भारतीय कंपनी के साथ फर्जी साझेदारी के द्वारा ऐसे क्षेत्रों में प्रवेश न कर लें जिनमें विदेशी प्रत्यक्ष निवेश प्रतिबंधित है। यदि आरबीआई प्राथमिकता क्षेत्रों का दायरा बढ़ा दे तो बैंक और अधिक ऋण देने में रुचि दिखा सकते हैं। केवल 2 प्रतिशत पर ही अटकी देश की कृषि विकास दर बढ़ाने के लिए सरकार को चाहिए कि वह सार्वजनिक व निजी दोनों क्षेत्रों में कृषि निवेश बढ़ाए। कृषि क्षेत्र में विदेशी पूँजी आमंत्रित की जानी चाहिए। इससे भारतीय कृषि और किसान की हालत में सुधार होगा। सरकार को चाहिए कि वह अधिक उत्पादन का निर्यात करने की व्यवस्था करे।

पूँजी के इष्टतम आबंटन और कुशल जोखिम साझेदारी के लिए प्रणाली की दक्षता को बढ़ाया जाए जिससे उद्यमों और रोज़गार को बढ़ावा मिले। बेहतर उपभोग और बचत के लिए वित्तीय समावेशन में वृद्धि की जाए; विकास की प्रक्रिया को इस तरह संतुलित बनाया जाए जिससे अर्थव्यवस्था का हर हिस्सा इसका फायदा उठा सके। संसाधनों का दक्षतापूर्वक एवं अनुकूलतम दोहन किया जाए क्योंकि अत्यधिक दोहन का मतलब है संकट को निमंत्रण देना।

## अनुसूचित वाणिज्य बैंकों की शाखाएं और एटीएम

(मार्च 2009 के अंत में)

(प्रतिशत)

| बैंक समूह | बैंक /शाखाओं की संख्या | | | | | एटीएम की संख्या | | | कुल एटीएम के प्रतिशत के रूप में परोक्ष एटीएम | शाखाओं के प्रतिशत के रूप में एटीएम |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| | ग्रामीण | अर्ध-शहरी | शहरी | महा-नगरीय | कुल | प्रत्यक्ष | परोक्ष | कुल | | |
| 1 | 2 | 3 | 4 | 5 | 6 | 7 | 8 | 9 | 10 | 11 |
| i) राष्ट्रीयकृत बैंक | 13,381 | 8,669 | 8,951 | 8,375 | **39,376** | 10,233 | 5,705 | **15,938** | 35.8 | **40.2** |
| ii) स्टेट बैंक समूह | 5,560 | 4,835 | 3,043 | 2,624 | **16,062** | 7,146 | 4,193 | **11,339** | 37.0 | **29.0** |
| iii) निजी क्षेत्र के पुराने बैंक | 842 | 1,554 | 1,344 | 933 | **4,673** | 1,830 | 844 | **2,674** | 31.6 | **56.2** |
| iv) निजी क्षेत्र के नए बैंक | 271 | 1,084 | 1,371 | 1,478 | **4,204** | 5,166 | 7,480 | **12,646** | 59.2 | **296.6** |
| v) विदेशी बैंक | 4 | 4 | 52 | 233 | **293** | 270 | 784 | **1,054** | 74.4 | **357.3** |
| **जोड़ (i से v)** | **20,058** | **16,146** | **14,761** | **13,643** | **64,608** | **24,645** | **19,006** | **43,651** | **43.5** | **67.0** |

स्रोत : भारत में बैंकिंग की प्रवृत्ति एवं प्रगति संबंधी रिपोर्ट, 2008-09

# अब तक की आर्थिक मंदियां और उभरता विश्व

● डॉ. राजीव कुमार सिन्हा
(रिसर्च असोसिएट)
'ऐग्रो-इकोनॉमिक रिसर्च सेंटर फॉर बिहार एंड झारखंड'
ति. मा. भागलपुर विश्वविद्यालय, भागलपुर

वैश्विक आर्थिक संकट, उसके अर्थव्यवस्था पर कुप्रभावों तथा विभिन्न 'विश्वस्तरीय संस्थाओं' एवम् सरकारों द्वारा इस प्रकार की स्थितियों का सामना करने हेतु किये गये 'सार्थक' या 'अप्रभावकारी प्रयासों' की चर्चा करने के पूर्व यदि इसके 'धनात्मक (अच्छे संकेत देने वाले) पक्ष पर गौर कर लिया जाये, तो उचित ही होगा। 'वैश्विक अर्थव्यवस्था' के 85 प्रतिशत भाग का प्रतिनिधित्व करने वाले 'राष्ट्रों के समूह (जी-20)' वर्तमान 'वैश्विक वित्तीय संकट' का समाधान करने में मदद करने का श्रेय लेता है। 'अप्रैल, 2009' की इसकी बैठक में इस समूह ने सभी राष्ट्रों से 'समन्वित राजकोषीय तथा मौद्रिक प्रोत्साहक उपाय' करने के लिए कहा है, ताकि 'महान मंदी की स्थिति उत्पन्न करने वाली पीछे लौटने की गंभीर प्रवृत्ति' को रोका जा सके। आज 'वैश्विक अर्थव्यवस्था' 'आर्थिक स्वास्थ्य पुनर्प्राप्ति' के संकेत दे रही है। मंदी के दौर के समाप्ति की ओर अग्रसर होने के सम्बन्ध में संकेत देने वाले एक और 'विश्वसनीय प्रतिवेदन' पर दृष्टिपात ज्यादा निकट से वस्तुस्थिति की व्याख्या कर सकता है।

विभिन्न देशों की अर्थव्यवस्थाओं की स्थिति का आकलन करने में 'ओईसीडी का अग्रणी सूचकांक' अहम भूमिका अदा करता है। इसका कारण यह है कि सूचकांक उन क्षेत्रों की विकास दर मापता है, जो अर्थव्यवस्था में उतार-चढ़ाव के प्रति सर्वाधिक संवेदनशील होते हैं।

## मंदी के दौर की स्थिति

'ऑर्गेनाइजेशन फॉर इकोनॉमिक को-ऑपरेशन एण्ड डेवलपमेंट (ओईसीडी)' की घोषणा के अनुसार विश्व की अर्थव्यवस्थाओं में सेहत सुधरने के लक्षण साफ दिखाई दे रहे हैं। दर असल, 'ओईसीडी विकसित राष्ट्रों' का संगठन है। इसके हाल के एक प्रतिवेदन के अनुसार - 'अगस्त, 2008' से 'वर्ष 2009 की तृतीय तिमाही के अंत तक की एक वर्षीय अवधि में' 'वैश्विक अर्थव्यवस्थाओं' को बार-बार विपरीत ढंग से प्रभावित कर रही मंदी का दौर अब बीत चुका है। इसके अनुसार पश्चिम की सात प्रमुख अर्थव्यवस्थाओं तथा 'ब्रिक देशों' के मंदी के भंवर से निकल आने के स्पष्ट संकेत हैं।

'ओईसीडी' के 'संयुक्त अग्रणी सूचकांक' के अनुसार - विश्व की सभी प्रमुख 11 अर्थव्यवस्थाओं में सुधार हो रहा है। इनमें (i) अमेरिका, (ii) ब्रिटेन, (iii) जर्मनी, (iv) इटली, (v) फ्राँस, (vi) कनाडा और (vii) जापान जैसी सात दिग्गज अर्थव्यवस्थाएँ शामिल हैं। शेष चार राष्ट्रों में - (i) ब्राजील, (ii) रूस, (iii) भारत और (iv) चीन का नाम है। 'जुलाई, 2009' में इन सभी राष्ट्रों के हर क्षेत्र में विकास की गति पहले की अपेक्षा काफी सुधरी है। फ्राँस अकेला ऐसा देश है, जिसमें, जून, 2009 के मुकाबले धीमी गति से विकास दर्ज किया गया।

यहाँ इस तथ्य को रेखांकित करना वांछित ही होगा कि विभिन्न देशों की अर्थव्यवस्थाओं की स्थिति का आकलन करने में 'ओईसीडी का अग्रणी सूचकांक' अहम भूमिका अदा करता है। इसका कारण यह है कि सूचकांक उन क्षेत्रों की विकास दर मापता है, जो अर्थव्यवस्था में उतार-चढ़ाव के प्रति सर्वाधिक संवेदनशील होते हैं। वैसे तो अमेरिका में मंदी की शुरुआत 'दिसम्बर, 2007' से हो गयी थी, परंतु दुनिया को इसकी जानकारी लगभग नौ महीने बाद सितम्बर, 2008 को हुई। इस दिन यहाँ के दो प्रमुख निवेश बैंक (i) लीमन ब्रदर्स तथा (ii) मेरिल लिंच एवम् दिग्गज बीमा कम्पनी, 'ए.आई.जी.' दिवालिया हो गये थे। इसके पश्चात् विश्व की लगभग सभी प्रमुख अर्थव्यवस्थाएँ एक-एक करके मंदी के भंवर में समाने लगीं। इसके नकारात्मक प्रभाव के रूप में लाखों नौकरी करने वालों को 'रोजगारविहीन' होने का दंश झेलना पड़ा। अकेले भारत में ही इसके परिणामस्वरूप 10 लाख

लोगों को बेरोजगारी का सामना करने को बाध्य होना पड़ा। हालाँकि सधी हुई रणनीति के तहत भारत 'आर्थिक मंदी' के इस हलके से झटके से उबरने का प्रयास कर रहा है। फिर भी विश्व के विभिन्न देशों में मंदी के फलस्वरूप किये जा रहे 'नीतिगत परिवर्तनों' पर पैनी एवम् सतर्क दृष्टि' रखते हुए इसे अपनी 'आर्थिक नीतियों' का पुनर्निर्धारण' करना पड़ेगा। भारत में 'आर्थिक मंदी' के ऋणात्मक परिणामों की तीव्रता भले ही कम होती प्रतीत हो रही हो, परंतु अमेरिका सहित विश्व के अनेक देशों में मंदी से उबरने में वक्त लगने की संभावना जतायी जा रही है।

## आर्थिक मंदियाँ : ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में

'आर्थिक तथा व्यापार चक्र' किसी भी अर्थव्यवस्था के लिए कोई नयी बात नहीं है। ऐतिहासिक रूप से, 'अर्थव्यवस्था रूपी शरीर का ऊपर की ओर विकास'- 'व्यापारिक गतिविधियों में अचानक वृद्धि' की स्वाभाविक तथा अनन्तिम परिणति है। इसमें कोई संदेह नहीं कि 'संयुक्त राष्ट्र (यू.एस.)' इस वक्त 'भीषण आर्थिक रुकावट की स्थिति' का सामना कर रहा है। यह खराब स्थिति है तथा वर्ष 2009 के अंत तक इसमें उल्लेखनीय सुधार का कोई लक्षण प्रतीत नहीं होता है। क्या इसका यह मतलब हुआ कि हमारे समक्ष '1930 की आर्थिक महा मंदी' की पुनरावृत्ति हो रही है, या फिर यह '1973' तथा '80 के दशक के पूर्वार्द्ध की आर्थिक मंदियों' का ही दूसरा रूप है? परंतु; एक बात जो स्पष्ट है, वह यह है कि वर्तमान स्थिति एक 'बहुत बड़े वैश्विक आर्थिक संकट' की ओर तेजी से बढ़ रही है। ऐसा नहीं है कि 'आर्थिक गतिविधियों में धीमेपन' की यह स्थिति कोई अजूबा है, बल्कि पहले भी विश्व कई 'आर्थिक मंदियों' से रू-ब-रू हो चुका है एवम् उपायों द्वारा इन संकटों से सफलतापूर्वक उबरने की स्थितियाँ भी प्राप्त की हैं। विगत 'आर्थिक संकटों' पर संक्षिप्त दृष्टिपात हमें 'वर्तमान आर्थिक संकट' से निजात दिलाने हेतु उपाय खोजने में मदद करेगा।

1960-2007 के 47 वर्षों की लम्बी अवधि में 'प्रतिरूपी उन्नत राष्ट्रों' ने लगभग छह मंदी की स्थितियों का सामना किया। अर्थात् 8 वर्षों के अंतराल पर एक 'आर्थिक संकट' की स्थिति अवतरित हुई। इनमें से कुछ 'कम गंभीर प्रकृति' की थीं, इसलिए अर्थव्यवस्थाओं द्वारा शीघ्र ही 'आर्थिक पूर्वावस्था' की प्राप्ति कर ली गयी। अन्य मंदियाँ कष्टदायक थीं, इसलिए 'आर्थिक बेहतरावस्था' प्राप्त करने में अपेक्षाकृत लम्बा समय लगा। 'व्हाट हैप्पनस ड्यूरिंग रिसेसन्स' शीर्षक अध्ययन, जो 'विश्व मुद्रा कोष (आई.एम.एफ.)' द्वारा हाल ही में किया गया है, के अनुसार - 'आर्थिक रुकावटें (मंदियाँ)' लगभग 'चार तिमाहियों' तक जारी रहीं। इस संबंध में एक महत्त्वपूर्ण अवलोकन यह था कि; 'यदि मकानों की कीमतों में वृद्धि' तथा 'साख-संकुचन' की प्रवृत्ति या दोनों विद्यमान हो जायें, तब 'संकट' लम्बा खिंचेगा तथा कष्टदायी होगा। ऐसी मंदी 'स्थायी रूप से' 'दूरगामी आर्थिक प्रभाव' का कारण बनती है।

'यू.एस. अर्थव्यवस्था' द्वारा 'वर्ष 1960-2006' की अवधि में सात मंदियों का सामना किया गया। इनमें से किसी भी आर्थिक संकट की अवस्था में 'आवासीय पूर्व भुगतान की चूक' अथवा 'साख-संकुचन' की गंभीर परिस्थितियों के तत्त्व विद्यमान नहीं थे। इन संकटों में सिर्फ दो अत्यंत कष्टदायक प्रकृति के थे : (i) वर्ष 1973 में तेल कीमतों का आकस्मिक आघात रूपी संकट तथा (ii) 1980 के दशक के पूर्वार्ध में आयी मंदी। दोनों ही 'मुद्रास्फीतिक झटके' का परिणाम थीं। बाद वाली 'आर्थिक संकट की स्थिति' 'उच्च ब्याज-दरों' के फलस्वरूप भी उत्पन्न हुई थी। इस संबंध में यह उल्लेखनीय है कि '1929-1933' की आर्थिक महा मंदी के दौरान जो कुछ हुआ, उससे '1973' तथा '1980' के दशक के पूर्वार्द्ध में आयीं मंदियों की अवधि में (i) उपभोग, (ii) विनियोग, (iii) रोजगार तथा (iv) आय के संदर्भों में आयी 'आर्थिक हानियों' की कोई तुलना नहीं थी। 'वर्ष 2001' का 'आर्थिक संकट' भी एक अन्य 'गंभीर अवरोध की स्थिति' उत्पन्न कर देता, परन्तु; 'फेडरल रिजर्व' ने उस समय उसे सक्षमतापूर्वक स्थगित कर दिया, जिसका आज हम सामना कर रहे हैं।

यहाँ इस बात की चर्चा प्रसंगाधीन ही होगी कि 'वर्ष 2007' में 'आवास निर्माण क्षेत्र में आयी अपार वृद्धि (बूस्ट ऑफ दि हाऊसिंग बबल)' 'यू.एस.'के वर्तमान संकट का जनक था। 'वर्ष 2002-06 के दौरान' 'हाऊसिंग बबल' को प्रोत्साहित करने के पीछे : (i) 'फेड' की सामंजस्य स्थापित करनेवाली नीति, (ii) 'यू.एस.के परिवारों' में व्यापक अचल सम्पत्ति धारण करने से सम्बन्धित मनोविकार तथा

**(iii)** वित्तीय गतिविधियों में भाग लेने वाले लोग (पक्ष) जिम्मेदार हैं। 'अत्यधिक बन्धक उन्मुक्ति' ने 'सब-प्राइम ऋण' को अब तक के सर्वाधिक उच्च स्तरों पर ले जाने में अहम भूमिका निभायी। इसी के परिणामस्वरूप, 'वर्ष 2008 में 'वित्तीय प्रणाली के चरमरा जाने' की संभावित घटना हुई। अब तो यह सिर्फ 'संयुक्त राज्य अमेरिका (यू.एस.) के लिए ही नहीं, बल्कि पूरे विश्व के लिए 'गंभीर आर्थिक संकट' के रूप में परिणत हो चुकी है।

## तुलनात्मक अवलोकन

'वर्तमान वैश्विक मंदी' के नकारात्मक प्रभावों तथा आनेवाले समय में 'विश्व अर्थव्यवस्था की स्थिति' को लेकर उत्पन्न चिन्ता के आलोक में यह देखना उचित ही होगा कि 'वर्तमान संकटावस्था का प्रभाव' कहाँ पड़ेगा तथा 'पूर्व में आयी मंदियों' की तुलना में इस 'ठहराव की स्थिति' का कुप्रभाव कैसा पड़ेगा? भविष्य के सम्बन्ध में क्या संकेत हैं, इसकी भी समीक्षा वांछित है। इस सम्बन्ध में तीन प्रमुख 'निरक्षित अवलोकनों' की चर्चा उल्लेखनीय है।

प्रथम, वर्त्तमान मंदी 'सभी सम्भव आर्थिक झटकों का संगम है। 'गृह-निर्माण की ऊर्ध्वकाय प्रवृत्ति (हाऊसिंग बूस्ट)' के साथ 'कठोर साख-संकुचन/टूटन' तथा 'धारदार साधारण अंशधारियों के योगदान की ऊर्ध्वकाय प्रवृत्ति (शार्प इक्विटी बूस्ट)', जो 'मुद्रास्फीतिक झटकों' से अधिक परिणाम में प्रभावित हुआ 'वर्त्तमान वैश्विक आर्थिक संकट' के लिए प्रमुख रूप से उत्तरदायी हैं। 'यू.एस. के इतिहास में इसके पहले कभी भी 'सभी सम्भव आर्थिक झटकों' का ऐसा अद्भुत संगम नहीं दिखाई पड़ता।

द्वितीयत:, इसका आर्थिक प्रभाव, विशेषकर प्रमुख निदर्शकों पर, विगत दो प्रचंड आर्थिक मंदियों के दौरान परिलक्षित प्रभावों से बहुत ज्यादा धारदार है। हालाँकि यह 1930 की गंभीर आर्थिक मंदी के नकारात्मक प्रभावों की तुलना में थोड़ा कम ही कठोर है। 'गृह-मूल्यों' में 22 प्रतिशत की दुरूस्ती तो अवश्य आयी है, परंतु पुन: इसमें फिसलन की प्रवृत्ति देखी जा रही है। 'मार्च, 2006' के दौरान किया गया 'आवासीय विनियोग (जो पराकाष्ठा पर था)', वह आधा हो गया। 'ईक्विटी मूल्य' 50 प्रतिशत से ज्यादा गिर गये हैं तथा इनका गिरना अभी भी जारी है। इन सभी ऋणात्मक आर्थिक प्रवृत्तियों के ऊपर 'साख-कमी' तथा 'संकुचन स्तर' भी अप्रत्याशित हैं। यह तो केवल शुरुआत है। अभी यह जानना बाकी है कि कब और कहाँ वर्तमान प्रवृत्तियाँ पद्धति से बाहर होंगी।

तीसरा, 'बेरोजगारी दर', जो 'आर्थिक सुस्ती' की एक प्रमुख सूचक संकेत है - अब तक (वर्ष 2008 के अंत तक) 6.7 प्रतिशत बढ़ चुकी थी। यह असम्बन्धित (परम) संख्यात्मक रूप में ऊँची है। 'नवम्बर, 2008'में 'गैर-कृषि क्षेत्रों में वेतन-पंजी में, नामांकित लोगों की संख्या 5,33,000 तक घट गयी, जो कि 'वर्ष 1974' के बाद से अब तक की सबसे खराब गिरावट है । इसके फलस्वरूप, 'दिसम्बर 2008' तक रोजगारविहीन लोगों की संख्या 1.9 मिलियन हो गयी।

व्यापक संदर्भ में तुलनात्मक विश्लेषण इस निष्कर्ष पर पहुँचाता है कि 'वर्तमान आर्थिक अवरोध'के - '1970 के दशक' तथा '1980 के दशक के पूर्वार्द्ध की अवधियों' में अनुभव की गयी मंदियों की तुलना में - अधिक लम्बा खिंचने तथा कष्टदायक होने की सम्भावना है। दूसरे शब्दों में, 'वर्तमान मंदी' 'छह' तिमाहियों से अधिक समय तक जारी रह सकती है। परिणामस्वरूप, 'कुल आर्थिक तथा सम्पत्तियों की हानि' भी विशाल हो सकती है। 'अनुकरणों पर आधारित' 'ब्यूरो ऑफ इकोनॉमिक ऐनालिसिस (यू.एस.)' की 'पूर्व स्थिति पर पहुँचने से संबंधित आँकड़ों का सारणीयुक्त विवरण' यह प्रदर्शित करता है कि 'वर्ष 2011' या 2012 के पूर्व 'यू.एस.' 'धनात्मक दिशा में झुकनेवाली विकास - दर' की ओर नहीं लौट सकता है। अत: विश्व की अर्थव्यवस्था को 'मंदी के कुप्रभावों' से बचाने के लिए 'विकसित राष्ट्रों' (विशेषकर अमेरिका को) - 'अनुत्पादक कार्यों में अनाप-शनाप खर्च की प्रवृत्ति' का परित्याग कर 'वित्तीय अनुशासन का अनुपालन' सभी स्तरों पर सुनिश्चित करते हुए 'पुनर्वापसी की ऊँची सम्भावना वाले क्षेत्रों' में उदार शर्तों पर ऋण देने तथा 'साख-प्रसार की नीति' पर चलना होगा।

### वक्त की संभावना

'अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष (आई.एम.एफ.)' के अनुसार - आर्थिक मंदी से दुनिया 'वर्ष 2010 के मध्य' से उबरने लगेगी, लेकिन बेरोजगारी के स्तर में कमी आने में अभी समय लगेगा। 'आई.एम.एफ.' के प्रबंध निदेशक (डोमिनिक स्ट्रॉस कान) के विचार में - सुधार शीघ्र शुरू होने की सम्भावना है, क्योंकि हाल में विश्वभर की अर्थव्यवस्थाओं में वृद्धि देखी गयी है। 'कान' का यह विचार तर्कसंगत ही माना जायेगा कि मंदी तो तभी पूरी तरह समाप्त मानी जायेगी, जब बेरोजगारी में कमी आयेगी। लेकिन इसमें अभी वक्त लगने की सम्भावना से इंकार नहीं किया जा सकता। यह सर्वज्ञात है कि आर्थिक वृद्धि के पटरी पर लौटने में अभी समय लगेगा और उसी समय रोजगार के सृजन में भी तेजी आयेगी। यूँ तो 'वित्त बाजार' में नगदी का प्रवाह बनाये रखने के लिए बहुत से उपाय किये गये हैं, परंतु अभी बहुत कुछ करने की आवश्यकता है। 'आई.एम.एफ.' का मानना है कि वर्ष 2010 तक बेरोजगारी में वृद्धि होगी, क्योंकि तब तक 'आर्थिक वृद्धि' पूरी क्षमता से नहीं होगी। इस संबंध में यह थोड़ी राहत प्रदान करने वाली बात अवश्य है कि विश्वभर के देशों से मिल रहे आर्थिक आँकड़े सुधार की ओर संकेत कर रहे हैं। 'वर्ष 1930' में आयी 'आर्थिक महा मंदी' के कारणों की समीक्षा की जाये, तो यह स्पष्ट होता है कि 'वित्त बाजार' की उचित निगरानी नहीं होने के कारण ही 1930 की वैश्विक आर्थिक मंदी आयी थी।

'दिसम्बर, 2007' से अमेरिका में आयी 'आर्थिक मंदी'- कम संख्या में ही सही, 'भारतीय तकनीकी शिक्षा प्राप्त पेशेवरों' को कुछ समय से ऋणात्मक ढंग से प्रभावित कर रही है। भारतीय अर्थव्यवस्था पर इसका अल्पकालिक तथा मध्यमकालिक अप्रत्यक्ष तथा प्रत्यक्ष प्रभाव तो पड़ेगा ही। 'अमेरिका' में बेरोजगारी दर में वृद्धि के फलस्वरूप प्रभावित 'भारतीय पेशेवरों' की स्थिति (उनके रोजगार से संबंधित) पर दृष्टिपात 'आर्थिक मंदी' के कुपरिणाम को बेहतर ढँग से समझने तथा 'समस्या से निजात पाने के उपाय की तलाश करने में' मददगार होगा।

### बढ़ी बेरोजगारी दर

'अमेरिकी अर्थव्यवस्था' के लगभग 1 वर्ष 8 महीनों के पश्चात् 'पटरी' पर लौटने के संकेतों के बीच 'भारतीय सूचना प्रौद्योगिकी पेशेवरों' के पसंदीदा राज्य (कैलिफोर्निया) में बेरोजगारी की दर 'वर्ष 1939 से 2009' तक के पिछले 70 वर्षों के उच्चतम स्तर पर पहुँच गयी है। 'ब्यूरो ऑफ लेबर स्टेटिस्टिक्स' के अनुसार लोगों के रोजगार के अवसर गँवाने की दर में गिरावट के बीच 'कैलिफोर्निया' की नई बेरोजगारी दर 12.2 प्रतिशत है। यह दर अमेरिका में बेरोजगारी दर के राष्ट्रीय औसत (9.7 प्रतिशत) से 2.5 प्रतिशत अधिक है । 'न्यूयॉर्क टाइम्स' के 'कैलिफोर्निया रोजगार विकास विभाग' के अनुसार आँकड़ों से पता चलता है कि 1940 में राज्य में बेरोजगारी दर 14.7 प्रतिशत थी । इसका अर्थ यह हुआ कि राज्य में 'बेरोजगारी की दर' मंदी के परिणामस्वरूप अब तक के सर्वाधिक स्तर से मात्र 2.5 प्रतिशत कम है। वर्तमान में भारतीय पेशेवरों के लिए यह स्थिति निश्चय ही तात्कालिक रूप से परेशान करने वाली है।

### प्रभावित अमेरिकी बैंकिंग क्षेत्र

विश्वव्यापी मंदी के अमेरिकी अर्थव्यवस्था पर पड़ रहे नकारात्मक प्रभाव का अंदाजा इसी तथ्य से लगाया जा सकता है कि 'वर्ष 2008 से 2009' की एक वर्षीय अवधि में अमेरिका में 92 बैंक बंद हो चुके हैं। 'अमेरिका' के 'लीमन ब्रदर्स बैंक' के बंद होने के ठीक एक वर्ष बाद वित्तीय आवासीय संकट और आवासीय मंदी ने देश के 'चौथे सबसे बड़े कोरस बैंक' को भी बुरी तरह प्रभावित कर दिया है। अमेरिका में 'वर्ष 2009' में बंद होने वाला यह 92 वाँ बैंक है। अमेरिका की 'बैंक नियामक संस्था' 'फेडरल डिपॉजिट इंश्योरेंस कार्प' के अनुसार 'कोरस बैंक' की परिसम्पत्तियाँ जब्त कर ली गयी हैं तथा इन्हें 'एमबी फाइनेंशियल बैंक' को बेच दिया गया है। दर असल, 'शिकागो के कोरस बैंक'को व्यावसायिक कर्ज के फँसने के कारण बंद किया गया है। इसकी अधिकतर व्यावसायिक गतिविधियाँ - (i) एरिजाना, (ii) दक्षिणी कैलिफोर्निया, (iii) दक्षिणी फ्लोरिडा और (iv) नेवादा में थी। बैंक नियामक संस्था के अनुसार - इसके साथ दो छोटे बैंकों का

कारोबार भी बंद कर दिया गया है। 'कोरस बैंक' की शिकागो की 12 शाखाएँ '14 सितम्बर, 2009' से 'एमबी फाइनेंशियल बैंक' की शाखाओं के रूप में खुलने लगी हैं। 'कोरस बैंक' के खाताधारक अब 'एमबी फाइनेंशियल बैंक' के खाताधारक माने जायेंगे। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि 'कोरस बैंक' की 7 अरब डॉलर की परिसम्पत्तियों में से 3 अरब डॉलर के खाते 'एमबी फाइनेंशियल बैंक' को हस्तांतरित किये जायेंगे, जबकि 4 अरब डॉलर की परिसम्पत्तियाँ बाद में बेची जायेंगी। 'फेडरल डिपॉजिट इंश्योरेंस कार्प' के अनुसार - (i) 'मिनेसोटा के ब्रिकवेल कम्युनिटी बैंक' तथा (ii) 'वाशिंगटन के वेंचर बैंक' को भी बंद कर दिया गया है। 'वेंचर बैंक' की कुल परिसम्पत्तियाँ 97 करोड़ डॉलर थी तथा 'फर्स्ट सिटिजंस बैंक एण्ड ट्रस्ट कम्पनी ऑफ रैले' ने इसका अधिग्रहण कर लिया है। 'ब्रिकवेल कम्युनिटी बैंक' की परिसम्पत्तियाँ कोर ट्रस्ट बैंक ने खरीदी हैं। इसकी 7 करोड़ 20 लाख डॉलर की परिसम्पत्तियाँ थीं। (i) ब्याज-दर बढ़ जाने, (ii) मकानों की कीमतों में गिरावट आ जाने, (iii) परिणामस्वरूप मकान मालिकों के लाभों में कमी आने, (iv) फलस्वरूप अधिक परिणाम में 'पूर्व भूगतान की चूक' तथा (v) कालांतर में इस अपप्रवृत्ति के बढ़ते जाने - आदि जैसे विशेष उल्लेखनीय कारणों से 'अमेरिका' में आये 'सब-प्राइम ऋण संकट' का असर 'वित्तीय प्रणाली' तथा कुछ बैंकों पर प्रतिकूल रूप से अवश्य पड़ा है। परंतु बैंकरों तथा अन्य क्षेत्रों के 'उच्च पदस्थ मुख्य कार्यपालक अधिकारियों के वेतनों पर नियंत्रण', 'बाजार की अर्थव्यवस्था को चलाने के लिए नियमों की जरूरत समझने', 'राहत पैकेजों' से बाहर निकलने की रणनीति आदि उपायों से इस संकट की स्थिति से शीघ्र ही बाहर निकला जा सकेगा।

## उपायों पर प्रस्तावित विचार

वैश्विक आर्थिक मंदी से पीड़ित देशों ने इस संकट से उबरने के लिए समन्वित उपायों पर विचार करना आरम्भ कर दिया है। 'विश्व की बड़ी आर्थिक महाशक्तियों' के नेताओं ने मिलकर 'पिट्सबर्ग' में आर्थिक मंदी से निपटने तथा भविष्य में इसकी पुनरावृत्ति नहीं होने देने के संभावित उपायों पर विचार-विमर्श करने का निर्णय लिया है। अमेरिकी राष्ट्रपति बराक ओबामा अपने कार्यकाल में पहली बार 'जी-20 शिखर' बैठक का आयोजन कर रहे हैं। उनके द्वारा उस बैठक में - आर्थिक मंदी से उत्पन्न हुई स्थिति से निपटने के एजेंडे पर बात करने की पेशकश तथा किस तरह विभिन्न आर्थिक महाशक्तियों के बीच सामंजस्य बिठाया जाये - इन मुद्दों पर मंथन की प्रस्तावित रणनीति इस दिशा में इनकी, समयोचित चिंता का प्रतीक है। इस 'दो दिवसीय सम्मेलन' में - (i) वैश्विक आर्थिक वृद्धि से जुड़े मॉडल, (ii) पर्यावरण बदलाव, (iii) केंद्र वित्तीय नियमों, तथा (iv) बैंकों के शीर्ष अधिकारियों को किये जाने वाले भुगतानों - पर विचार किया जायेगा। 'यूरोपीय सेंट्रल बैंक' की गवर्निंग परिषद के सदस्य 'एक्सेल वेबर' के अनुसार - इस बैठक में वैश्विक वित्तीय ढाँचे में दीर्घकालिक परिवर्तनों पर सहमति हो सकती है। जी-20 समूह के नेता और 'नियामक' द्वारा इन मुद्दों' तथा उक्त एजेंडे पर व्यापक सहमति बनाये जाने की उम्मीद 'विश्वस्तरीय आर्थिक शक्तियों' के समस्या के निदान के प्रति सच्चे अर्थों में, चिन्तित होकर प्रयास करने का द्योतक है।

## अप्रभावित भारतीय अर्थव्यवस्था

एक तरफ जहाँ पूरे विश्व में 'वित्तीय संकट' के परिणामस्वरूप धीमी पड़ती आर्थिक गतिविधियाँ हैं, वहीं भारत में हर माह 'प्रत्यक्ष विदेशी पूँजी निवेश (एफ.डी.आई.)' में बढ़ोतरी हो रही है। यह इस बात का संकेत है कि भारत विदेशी निवेशकों के लिए एक आकर्षक जगह बनता जा रहा है। 'जुलाई, 2009' में पिछले वर्ष की तुलना में 56 प्रतिशत की वृद्धि हुई है। 'जुलाई, 2009' के दौरान भारत में कुल 3.51 अरब डॉलर का एफ.डी.आई. आया, जबकि पिछले वर्ष की इसी अवधि में यह केवल 2.24 अरब डॉलर था। वैश्विक मंदी के बावजूद भारत में एक उत्साहवर्धक पहलू यह है कि 'वर्ष 2009' में एफ.डी.आई.में माह-दर-माह आधार पर भी वृद्धि देखी जा सकती है। 'मई, 2009' की तुलना में 'जून, 2009' में एफ.डी.आई. 23 प्रतिशत बढ़ी है। 'जून, 2009 की तुलना में 'जुलाई, 2009' में इसमें 36 प्रतिशत की वृद्धि हुई। 'वर्ष 2009-10' वित्तीय वर्ष में 'अप्रैल-जुलाई माह' के दौरान भारत में 10.53 अरब डॉलर का विदेशी निवेश हुआ, जबकि पिछले वर्ष इसी अवधि में यह 12.32 अरब डॉलर था। इनमें 'सेवा क्षेत्र' ने विदेशी निवेशकों को सर्वाधिक लुभाया है, जिसमें 1.86

अरब डॉलर का निवेश दर्ज किया गया। द्वितीय पायदान पर 1.18 अरब डॉलर के निवेश के साथ 'हाऊसिंग और रियल एस्टेट क्षेत्र' रहा। 'विनिर्माण' तथा 'दूरसंचार क्षेत्र' में प्रत्यक्ष विदेशी निवेश का परिणाम लगभग आसपास ही (क्रमश: 0.68 अरब डॉलर एवम् 0.67 अरब डॉलर) रहा। 'ऑटो मोबाईल' क्षेत्र में यह विनिवेश थोड़ा कम अवश्य रहा, फिर भी यह 0.27 अरब डॉलर था।

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि, भारत में - (i) मॉरीशस, (ii) अमेरिका, (iii) साइप्रस, (iv) जापान तथा (v) सिंगापुर से अच्छे मात्रा में निवेश हो रहा है। परंतु, पिछले कई वर्षों से 'मॉरीशस' भारत में निवेश के मामले में अग्रणी (3.37 अरब डॉलर) रहा है। 0.81 अरब डॉलर सहित 'अमेरिका' दूसरे स्थान पर, 0.48 अरब डॉलर सहित 'साईप्रस' तीसरे स्थान पर, 0.41 अरब डॉलर के निवेश सहित 'जापान' चौथे तथा 0.37 अरब डॉलर के निवेश सहित 'सिंगापुर' पाँचवे स्थान पर है। इन 'विकसित' तथा उच्च विकासशील राष्ट्रों की भारत के विभिन्न क्षेत्रों में विनिवेश की ये इच्छाएँ तथा भौतिक कार्य-परिणाम इस बात की ओर इशारा करते हैं कि 'मंदी से प्रभावित वैश्विक अर्थव्यवस्था' भारत में आर्थिक गतिविधियों के फलने-फूलने के सम्भावित आसार देख रही है, जो निश्चय ही उत्साहजनक है।

## बढ़ती एफ.डी.आई.

पिछले डेढ़-दो वर्षों से जारी 'विश्व स्तरीय आर्थिक मंदी के पूर्व' तथा उसके बाद भी भारतीय अर्थव्यवस्था के अप्रभावित रहने का एक और पैमाना यहाँ 'वर्ष 2004-2005' से 'वर्ष 2008-09' की पाँच वर्षीय अवधि में 'विदेशी प्रत्यक्ष निवेश' में लगातार वृद्धि भी है। 'वर्ष 2004-05' में भारत में एफ.डी.आई. की मात्रा 3.2 अरब डॉलर थी, जो वर्ष 2005-2006 में 2.3 अरब डॉलर बढ़कर 5.5 अरब डॉलर हो गयी। 'वर्ष 2006-2007' में यह पूर्वापेक्षा तीन गुना से थोड़ा ही कम बढ़कर 15.7 अरब डॉलर हो गयी। 'वर्ष 2007-2008' में एफ.डी.आई. पूर्वापेक्षा 8.88 अरब डॉलर की उल्लेखनीय वृद्धि सहित 24.58 अरब डॉलर हो गयी। 'वर्ष 2008-2009' में भारत में 'एफ.डी.आई. का प्रवाह' लगातार बढ़ोतरी की प्रवृत्ति प्रदर्शित करते हुए पूर्वापेक्षा 2.73 अरब डॉलर बढ़कर 27.31 अरब डॉलर हो गया। ये आँकड़े आधारित तथ्य इस बात का सबूत हैं कि 'वैश्विक आर्थिक मंदी' के बावजूद भारत में आर्थिक गतिविधियों के लिए स्थितियाँ अनुकूल हैं। निष्कर्षत: भारत में यदि - (i) राजनैतिक स्थिरता, (ii) वित्तीय अनुशासन, (iii) उच्च शासन-संचालन पद्धति, (iv) कम पूँजी-निवेश द्वारा अधिक लोगों को रोजगार उपलब्ध कराने वाली परियोजनाएँ तथा (v) अधोसंरचनात्मक विकास की गति को सर्वोत्तम ढँग से बरकरार रखा जाये, तो वर्तमान में जारी 'आर्थिक मंदी' के झंझावातों से भारतीय अर्थव्यवस्था अछूती रह जायेगी।

## संकटावधि में आशावादी परिदृश्य

'गंभीर मंदी' के बाद से अब तक की सर्वाधिक चिंताजनक आर्थिक सुस्ती की बात 'संयुक्त राष्ट्र' भी स्वीकार करता है। विशेषकर 'संयुक्त राज्य' तथा 'यूरोप' में शेयर आदि में आकस्मिक 'गिरावट' के परिणामस्वरूप, जिसकी उपस्थिति 'विकसित राष्ट्रों' में भी देखी जा सकती है - 'विश्व आर्थिक उत्पाद' में 'वर्ष 2009' में 0.4 प्रतिशत के संकुचन की सम्भावना 'यूनाईटेड नेशंस' द्वारा व्यक्त की गयी है। 'यू.एन. के प्रतिवेदनानुसार', 'अपेक्षाकृत निर्धन राष्ट्रों' में वित्तीय संकट के प्रभाव के संबंध में आत्म-संतोष की स्थिति है। यू.एन. के उसी प्रतिवेदन में यह कहा गया है -'आगे आने वाली अवधि में 'प्रमुख राष्ट्र' अवश्यम्भावी रूप से उल्लेखनीय 'आर्थिक संकुचन' का सामना करेंगे। 'बेल आऊट' तथा 'प्रेरणादायक पैकेजों' के सफल होने के बावजूद 'आर्थिक आरोग्य लाभ की प्राप्ति' निकट भविष्य में नहीं हो पायेगी। इसी संबंध में रॉब मॉस, प्रमुख अर्थशास्त्री (यू.एन.सचिवालय) का विचार तो और भी चिंताजनक है- कि 'दिन-प्रतिदिन हम निराशाजनक परिदृश्य के करीब होते जा रहे हैं।'

इन सभी विपरीत परिस्थितियों के बावजूद 'वैश्विक अर्थव्यवस्था' के उबरने के संबंध में 'यू.एन. के दृष्टिकोण' से ही आशाजनक तथ्य यह है कि एक ओर जहाँ विकसित अर्थव्यवस्थाएँ 1.5 प्रतिशत तक सिकुड़ेंगी, वहीं 'विकासशील राष्ट्र की अर्थव्यवस्थाएँ' कम-से-कम 2.7 प्रतिशत तक

बढ़ोतरी दर्ज करेंगी। 'विकासशील राष्ट्रों की अर्थव्यवस्थाओं' में होने वाली यह वृद्धि अगले दो-तीन वर्षों में सम्पूर्ण विश्व को 'आर्थिक मंदी रूपी अंधकारपूर्ण गहराई' से निकालकर 'धरातलीय उजाले' का दर्शन करा देगी।

## सुधार-संकेत : बदलता रुख

वर्तमान आर्थिक मंदी के अनिश्चिततापूर्ण वातावरण की पीड़ादायक स्थितियों का पिछले डेढ़ वर्षों तक सामना करने के बाद अब अर्थव्यवस्था में सुधार के संकेतों के साथ ही 'अमेरिकी कम्पनियों' के रुख में बदलाव परिलक्षित होने लगा है। अभी तक खर्चों की कटौती में जुटी कम्पनियाँ अब अपने कर्मचारियों के वेतन-भत्तों को फिर पुराने ऊँचे स्तरों पर लाने में जुट गयी हैं। इतना ही नहीं, कम्पनियाँ अब अपने पुराने कर्मचारियों को फिर से बहाल कर रही हैं। 'अमेरिका' के 'जॉब पोर्टल कैरियर बिल्डर' तथा 'यू.एस.ए. टुडे' की रिपोर्टों के अनुसार - 27 प्रतिशत नियोक्ताओं ने कहा है कि 'वर्ष 2008 के द्वितीयार्द्ध के बाद से' 'वर्ष 2009 के लगभग सितम्बर माह की अवधि के दौरान' उन्होंने एक क्षेत्र में कर्मचारियों की कटौती की है, तो दूसरे क्षेत्र में नियुक्तियाँ भी की हैं। चूंकि अब अर्थव्यवस्था में सुधार के संकेत परिलक्षित हो रहे हैं, ऐसे में कम्पनियों को अपने कारोबार में वृद्धि की सम्भावनाएँ दिख रही हैं। यही कारण है कि अब कम्पनियाँ 'कठिन समय में अपनायी गयी रणनीति' को पलटने में जुट गयी हैं।

'अमेरिकी अर्थव्यवस्था में धनात्मक बदलाव की हाल में परिलक्षित हो रही ये स्थितियाँ निश्चय ही 'विश्व की आर्थिक मंदी' की असुविधाजनक परिस्थितियों से उबरने की द्योतक हैं। आवश्यकता है - 'मध्यमकालीन तथा दीर्घकालिक ठोस' - (i) उत्पादन, (ii) अधोसंरचनात्मक विकास तथा (iii) रोजगार-सृजन उपायों (नीतियों) का निर्माण कर उसे ईमानदारीपूर्वक अर्थव्यवस्था के व्यापक हित में क्रियान्वित किए जाने की।

## संकट से उबरने के उपाय

बड़े 'निवेश बैंकों' की - उचित-अथवा अव्यवहारिक तरीके से कम समय में अधिक 'विशुद्ध लाभोपार्जन' के उद्देश्य से अपनायी गयी 'ऋण-नीतियों के दुष्परिणामस्वरूप दिवालिया होने की विगत कुछ घटनाओं से वैश्विक अर्थव्यवस्था में जो मंदी एवम् अस्थिरता की अवस्थाएँ उत्पन्न हो गयी हैं, उन्हें दूर करने हेतु 'मध्यमकालीन' तथा 'दीर्घकालिक रणनीतियों' की आवश्यकता है। 'रोजगार के संकुचन की विकटावस्था' से उबरने के लिए (विशेषकर भारत जैसे विकासशील राष्ट्रों में) - 'उपलब्ध अदोहित प्राकृतिक तथा मानव संसाधनों पर आधारित' उनकी कार्य-क्षमताओं के आलोक में - 'कम निवेश की आवश्यकता वाली' छोटी-छोटी 'नयी उत्पादन प्रक्रियाओं' को आरम्भ करना होगा।

'आई.एम.एफ.' द्वारा अभिव्यक्त 'वर्ष 2010 तक बेरोजगारी में वृद्धि की आशंका' के मद्दे नजर- अभी से विश्व के सभी विकसित, विकासशील एवम् अर्द्धविकसित राष्ट्रों को सभी क्षेत्रों (औद्योगिक क्षेत्र, सेवा क्षेत्र, प्राथमिक क्षेत्र तथा सूचना एवं प्रौद्योगिकी क्षेत्र आदि में)- विद्यमान या सम्भावित उत्पादन-प्रक्रियाओं में अधिक से अधिक कार्यदक्ष/सक्षम लोगों को अपेक्षाकृत कम पारिश्रमिक-दरों पर रोजगार प्रदान करने की रणनीति बनानी होगी। इस कदम से बहुत बड़ी संख्या में लोगों में 'क्रय-शक्ति का बृहत्तर सृजन होगा। विभिन्न वस्तुओं एवम् सेवाओं की समग्र माँग में कुछ ही समय में उल्लेखनीय वृद्धि हो जायेगी। फलत: उत्पादन के परिमाणों में वृद्धि करनी पड़ेगी, जो पूर्वापेक्षा अधिक लोगों के लिए 'रोजगार के नये अवसरों' का द्वार खोलेगा। इस प्रकार, शीघ्र ही 'मंदी की मार से पीड़ित वैश्विक अर्थव्यवस्था' पटरी पर वापस आ जायेगी।

'अमेरिकी बैंकों' की बद-से-बदतर होती स्थिति का 'भारतीय बैंकों' पर भी प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष प्रभाव नहीं पड़े, इसके लिए यह आवश्यक होगा कि बैंकों द्वारा - 'बड़ी व्यावसायिक इकाईयों, कॉरपोरेट घरानों, वास्तविक परिसम्पत्तियों के निर्माण तथा विस्तार हेतु ऋण चाहने वाले लोगों' को बड़े परिमाण में ऋण-सुविधाएँ उपलब्ध कराये जाने के पूर्व - बैंक उनके 'ऋण-वापसी की क्षमता, उद्देश्यों के प्रति प्रतिबद्धता' तथा निर्मित होनेवाली परिसम्पत्तियों की लाभदायक मूल्यों पर भविष्य की माँग आदि के विषय में पूर्ण जानकारी प्राप्त कर लें।

विभिन्न 'आर्थिक महाशक्तियों' द्वारा सामंजस्य स्थापित करके 'आर्थिक मंदी' से उबरने की तैयारी समसामयिक तथा उत्साहवर्धक है। परंतु, इसके लिए सभी राष्ट्रों को सिर्फ अपने अल्पकालिक आर्थिक हितों की प्राप्ति के संकीर्ण उद्देश्यों से ऊपर उठकर 'दीर्घकालिक वैश्विक आर्थिक स्थिरता' की प्राप्ति के लिए ईमानदारीपूर्वक कार्य करना होगा।

भारत को 'वैश्विक आर्थिक मंदी' के नकारात्मक प्रभावों से बचाये रखने के लिए यहाँ विशेष रणनीति बनाकर विभिन्न क्षेत्रों (विशेषकर 'प्रचुर प्राकृतिक' तथा 'परम्परागत अनुभवाधारित विशिष्टता प्राप्त मानव-संसाधनों की उपलब्धता वाले 'कृषि' तथा 'ग्रामीण क्षेत्रों') - में 'उच्च स्तरीय अधोसंरचनात्मक विकास की प्रक्रिया' तेज करनी होगी, ताकि आने वाले कुछ वर्षों तक 'एफ.डी.आई.' का उच्च प्रवाह बना रहे। 'आर्थिक मंदी' से विश्व को निजात दिलाने में 'विकासशील राष्ट्रों' द्वारा भविष्य में दिये जाने वाले योगदान के मद्दे नजर - 'विश्व बैंक', 'आई.एम.एफ.', 'यू.एन.डी.पी.' 'यूनीसेफ' आदि 'वैश्विक (विश्व स्तरीय) संस्थाओं/संगठनो'को पूर्वापेक्षा उदार शर्तों पर आसानी से -'विकास परियोजनाओं' तथा उत्पादन कार्यों के लिए ज्यादा-से-ज्यादा 'वित्तीय तथा पर्यवेक्षणीय सहायताएँ' देने की रणनीति पर विचार करना होगा। 'आर्थिक मंदी' से सर्वाधिक बुरी तरह प्रभावित अर्थव्यवस्थाओं के (विशेषकर विकासशील राष्ट्रों को)- कृषि तथा इससे सम्बन्धित अन्य क्षेत्रों के उत्पादों के 'मूल्य-संवर्द्धन क्रिया-कलापों' पर आधारित उद्योगों की यथेष्ट संख्या में स्थापना पर बल देना चाहिए ताकि बड़े पैमाने पर (कम पारिश्रमिक दर पर ही सही) - 'रोजगार के अवसरों का अनवरत सृजन' हो सके।

ऊपरवर्णित 'रणनीतियों को विभिन्न राष्ट्रों' द्वारा अपनी-अपनी परिस्थितियों तथा आवश्यकताओं (वर्तमान एवम् भविष्य के लिए आँकलित) के अनुरूप सुविचारित ढँग से अपनाये जाने पर 'वैश्विक अर्थव्यवस्था' शीघ्र ही 'वर्तमान मंदी की त्रासदी' से पूरी तरह उबर जायेगी। यही वर्तमान समय की महत्त्वपूर्ण माँग भी है।

## वित्तीय प्रणाली को वास्तविक अर्थव्यवस्था के साथ जोड़ना

| चैनल | व्यवस्था |
|---|---|
| वित्तपोषण की लागत | उच्च ब्याज दरों, उच्चतर स्प्रेड तथा इक्विटी की कम कीमतों से निधीयन की लागत में वृद्धि होती है, निवेश में कमी आती है। |
| ऋण उपलब्धता | सख्त वित्तीय स्थिति से बैंकों और अन्य वित्तीय संस्थाओं की उधार देने की इच्छा में कमी आती है। |
| जोखिम विमुखता | जोखिम विमुखता के उच्चतर स्तर से जोखिम प्रीमिया में तथा गुणवत्ता की ओर झुकाव की प्रवृत्ति में बढ़ोतरी होती है। |
| फर्म की निवल मालियत | इक्विटी तथा संपत्तियों की कीमतों में कमी आने से फर्म की निवल मालियत में गिरावट आती है जिससे गलत विकल्प के चुनाव तथा नैतिक जोखिम की समस्या बढ़ती है। |
| पारिवारिक इकाइयों की निवल मालियत | इक्विटी तथा संपत्तियों की कीमतों में कमी आने से पारिवारिक इकाइयों की निवल मालियत में गिरावट आती है तथा ऋण पात्रता में गिरावट आने से उन्हें उधार प्राप्त करना और कठिन हो जाता है। |
| विनिमय दरें | ''सुरक्षित'' मानी जाने वाली मुद्राओं की चाह तथा पूंजी के प्रवाह में विपर्यय होने से विनिमय दर प्रभावित होती है और इसका व्यापार पर प्रभाव पड़ता है। |
| विश्वास | ग्राहकों, व्यापारियों तथा निवेशकों के विश्वास के स्तर में गिरावट आती है जिससे उनके कार्यकलापों में कमी आती है। |

स्रोत : भारत में बैंकिंग की प्रवृत्ति एवं प्रगति संबंधी रिपोर्ट 2008-09

# सब प्राइम संकट और भारतीय परिदृश्य

● संतोष श्रीवास्तव
यूनियन बैंक ऑफ इंडिया
स्टाफ प्रशिक्षण केन्द्र
अरेरा हिल्स, भोपाल

बच्चों को ताश के पत्तों का खेल खेलने में बहुत मजा आता है, जब वह ताश के पत्तों का मकान बना कर, उसके नीचे के ''मेन पिलर'' को खींच लेते हैं, और जब पूरा ताश का मकान ढहढहा कर गिर जाता है तब बच्चे ताली बजा बजा कर खुश होते है। लेकिन यदि किसी देश की ''अर्थव्यवस्था'' ढह जाये तो यह उस देश के साथ-साथ पूरे विश्व के लिए चिंता का विषय बन जाता है। विश्व की मजबूत कही जाने वाली अमेरिका की अर्थव्यवस्था में वेयर एण्ड स्टर्नस, बार्कलेस, लीमन ब्रदर्स, एआइजी, मेरिल लिंच और सिटी ग्रुप आदि के दिवालिया होने के साथ ही पूरे विश्व में मंदी का दौर शुरू हो गया था। यह खेद की बात है कि हम अभी यह कहने की स्थिति में नहीं हैं कि जिस आर्थिक मंदी के दौर से हम गुजर रहे हैं, क्या हम उसकी ''तह'' तक पहुंच गये हैं ? यदि हम इसकी तह तक पहुँच पाते, तो हम यह कह सकते थे, कि यह मंदी का दौर कितने समय चलेगा? अथवा आर्थिक मंदी का दौर समाप्त हो गया है। वास्तव में देखा जाये तो सब प्राइम ऋण संकट का प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष संबंध इस आर्थिक मंदी से भी है।

## भारतीय अर्थव्यवस्था - एक समग्र विवेचन

वैश्विक आर्थिक मंदी के संकट ने भारत के विकास की गति में अवरोध पैदा किया है, पहले उसने वास्तविक क्षेत्र को प्रभावित किया और उसके बाद अब वह वित्तीय क्षेत्र में पहुँच गया। वास्तविक क्षेत्र में इसका प्रभाव मुख्यत: निर्यात में गिरावट के रूप में आया, जिसने अन्य क्षेत्रों में नये निवेश के विश्वास स्तर को कम किया। वित्तीय क्षेत्र में, एफआईआई निवेशों की भारी निकासी ने शेयर बाजार को नीचे कर दिया। परिणामस्वरूप भारतीय अर्थव्यवस्था पर इसके प्रभाव को ब्याज दरों में उतार - चढ़ाव, देशी एवं विदेशी चलनिधि में अचानक संकुचन, वाणिज्यिक क्षेत्र को गैर बैंक निधियों के प्रवाह में कमी, औद्योगिक उत्पादन और निर्यात में विशेष कमी के रूप में व्यक्त किया जा सकता है। सकल घरेलू उत्पाद में गत पांच वर्षों 2003-08 के दौरान हो रही 8.9% की औसत वृद्धि दर, के बाद 2008-09 के लिए अब 6.5-6.7% की सीमा में निर्धारित की गई है। इसके बावजूद, भारत विश्व की सर्वाधिक तेजी से बढ़ रही प्रमुख अर्थव्यवस्था में से एक है, भारत की अर्थव्यवस्था में हमें निम्न प्रमुख बातें दृष्टिगोचर होती हैं :-

- वर्ष 2008-09 में कृषि और संबद्ध गतिविधियों की विकास दर पिछले वर्ष के 4.8% की तुलना में 2.6% रहने का अनुमान है
- औद्योगिक क्षेत्र पर हाल के संकट का बहुत बड़ा प्रभाव पड़ा है। औद्योगिक उत्पादन का सूचकांक आइआइपी वर्ष 2007-08 के 8.5% की तुलना में मार्च 2008-09 में 2.4% बढ़ा। निर्माण क्षेत्र में 2007-08 के 9.00% की तुलना में वर्ष 2008-09 मे 2.3% की वृद्धि दर्ज की गई
- वर्ष 2008-09 में, बुनियादी सुविधा क्षेत्र की विकास दर पिछले वर्ष के 5.9% की तुलना मे 2.7% रही
- वर्ष 2008-09 में, सेवा क्षेत्र की विकास दर भी पिछले वर्ष के 10.9% की तुलना में धीमी हो कर 9.6% रहने का अनुमान है
- व्यापार, होटल, परिवहन व संचार की विकास दर को मांग की कमी ने प्रभावित किया तथा यह पिछले वर्ष के 12.4% की तुलना में 10.3% रहने का अनुमान है। सामुदायिक, सामाजिक एवं वैयक्तिक सेवाओं की वृद्धि में अनुकूल प्रवृति को देखते हुए एक साल पहले के 6.8% की तुलना में 9.3% होने का अनुमान है
- प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि दर, पिछले वर्ष के 7.6% के अनुमान की तुलना में वर्ष 2008-09 में 5.6% रहना अनुमानित है

## सब प्राइम ऋण संकट क्या है ?

व्यवहारिक तौर पर यह कहा जाता है कि ''आर्थिक संकट की जड़ ''सब प्राइम ऋण'' भी हैं। बैंकिंग भाषा में इसका

विवेचन, इस तरह भी किया जा सकता है:

''बैंकों को अपनी ऋण नीति में यह निर्देशित किया जाता है कि वे ऋण प्रदान करने के लिए उत्कृष्ट उधारकर्ताओं का चयन करें, ताकि ऋण पोर्टफोलियो अच्छी गुणवत्ता वाला एवं सुरक्षित रहे। लेकिन वास्तव में होता यह है, कि ''उधार देते समय उधारकर्ताओं के मूल्यांकन मानदण्डों में कुछ छूट प्रदान कर, ऐसे उधारकर्ताओं को भी उधार दिया जाता है, जो ''उत्कृष्ट'' की श्रेणी में नहीं आते हैं'', और इस तरह का दिया गया ऋण ''सब प्राइम ऋण'' कहलाता है।''

सामान्यत: उधारकर्ता के मूल्यांकन मानदण्डों में जो छूट प्रदान की जाती है, वह निम्नानुसार हैं:

- **मकान के मूल्य का मार्जिन**
- **न्यूनतम आय का स्तर सकल / शुद्ध आय के गुणक में अथवा प्रस्तावित ऋण की किश्त कटौती के पश्चात शुद्ध आय।**
- **रोजगार की स्थिति :**
  - नियोक्ता की हैसियत
  - कार्य का प्रकार स्थायी वेतन / प्रोत्साहन आदि
- **कमजोर मूल्यांकन क्रेडिट स्कोर**
- **पूर्व में लिये गये ऋण का रिकार्ड :**
  - ऋण के रिकार्ड की उपलब्धता
  - पूर्व ऋण के पुनर्भुगतान में चूक अथवा फोरक्लोजर रिकार्ड याने ऋण भुगतान में चूक की स्थिति में ऋणदाता द्वारा मकान / परिसम्पत्ति पर कब्जा प्राप्त करना।

## सब प्राइम ऋणों का चलन क्यों ?

सवाल यह उठता है कि बैंक एवं अन्य वित्तीय संस्थाएं सब प्राइम ऋण क्यों प्रदान करती हैं। इसके मुख्य कारण निम्न हैं:

- सब प्राइम ऋणों पर उच्च ब्याज दर लगाना
- क्रेडिट कार्ड के मामले में अधिक शुल्क वसूल करना
- निजी बंधक बीमाकर्ताओं से बीमा करवाना।

## सब प्राइम ऋण का इतिहास

सब प्राइम ऋण का प्रचलन वित्त वर्ष 2005-06 के दौरान शुरू हुआ, जब अमेरिका में स्व-स्वामित्व के घरों की संख्या में वृद्धि करने की नीति को बढ़ावा दिया गया और इस कारण सब प्राइम उधारकर्ताओं की संख्या में वृद्धि हुई तथा प्रतिस्पर्धा के कारण ब्याज दरों में गिरावट हुई। इसके परिणाम यह हुए कि ऋण की मांग में वृद्धि हुई तथा अमेरिकन प्रॉपर्टी के मूल्य में अनुपातहीन वृद्धि हुई। अपनी सम्पत्तियों के मूल्य में वृद्धि के कारण उधारकर्ताओं ने अपनी बंधक सम्पत्तियों पर कम ब्याज दर पर पुनर्वित्त अथवा मकान के बढ़े हुए मूल्य पर द्वितीय बंधक की सुविधा प्राप्त की। इसने उपभोक्तावाद की संस्कृति को बढ़ावा दिया और इससे वहां के लोगों में आय से अधिक व्यय की प्रवृत्ति का प्रादुर्भाव हुआ, और इसमें सहायक बने :

- क्रेडिट कार्ड
- आसानी से उपलब्ध बंधक ऋण

ऋणदाताओं ने नवोन्मेषित वित्तीय उत्पाद - प्रतिभूतिकरण का प्रयोग कर इन बंधक ऋणों की प्रतिभूतियों को बंधक करके ''बंधक समर्थित प्रतिभूतियों'' (Mortgage Backed Securities) एवं ''संपाश्र्विक ऋण भार'' (Collateralised Debt Obligation) जैसी प्रतिभूतियों का निर्माण किया। इन प्रतिभूतियों को रेटिंग के पश्चात निवेश बैंक एवं हेज फण्ड्स से क्रय किया और अंतत: निवेशकों ने अमेरिकी सम्पत्तियों में उछाल से प्रेरित होकर इन प्रतिभूतियों में भारी मात्रा में निवेश किया तथा ऋणदाताओं ने अपने जोखिम भार को अन्यत्र हस्तांतरित कर दिया। इस प्रकार ऋणदाताओं के पास पुन: चलनिधि आ जाने से वे बार-बार इसी प्रक्रिया को दोहराते रहे इससे ऋणदाता उपलब्ध कोषों का उपयोग करने हेतु ऋण मूल्यांकन मानदण्डों में शिथिलता बरतने लगे और इससे एक दुश्चक्र का निर्माण हुआ। इस दुश्चक्र ने आगे चलकर आर्थिक सुनामी का रूप ले लिया, और विश्व की एक मजबूत आर्थिक व्यवस्था को ध्वस्त कर दिया, जिसने पूरे विश्व को अपनी चपेट में ले लिया और आर्थिक मंदी का दौर शुरू हो गया। इसके दो कारण सामने आते हैं, जो निम्नानुसार हैं:

### प्रमुख कारण

- भवन स्वामियों द्वारा ऋण की किश्त जमा करने में असमर्थता
- ऋणदाताओं द्वारा ऋण का सही मूल्यांकन एवं उत्पाद / स्कीम के बारे में उधारकर्ता को पूर्ण जानकारी न देना

- तेजी के समय सट्टेबाजी एवं हैसियत से अधिक कार्य करना
- सब प्राइम बंधक स्वत: ही जोखिमपूर्ण उत्पाद है
- एमबीएस और सीडीएस जैसे वित्तीय उत्पादों के द्वारा जोखिम का फैलाव करना तथा कुछ हद तक गुप्त रखना

## परोक्ष कारण

- अण्डरराइटिंग का कमजोर स्तर
- जोखिम प्रबंधन का स्तर सुदृढ़ न होना
- जटिल एवं अपारदर्शी वित्तीय उत्पाद
- कई स्तरों पर क्रय विक्रय के कारण प्रतिभूतियों का मूल्यांकन वास्तविकता से अधिक होना (लीवरेज)
- रेटिंग एजेंसियों के द्वारा सीडीओ एवं एमबीएस की क्रेडिट रेटिंग वास्तविकता से बेहतर करना

## अपर्याप्त सरकारी नियंत्रण

मई 2008 तक इस प्रकार के ऋणों की वापसी में चूक की दर में 25% तक की वृद्धि हुई तथा ऋणदाताओं ने फोरक्लोजर की प्रक्रिया शुरु कर दी जो कि वर्ष 2006 की तुलना में 79% अधिक थी। बैकों ने आपस में ऋण देने की प्रक्रिया को कम कर दिया जिससे ब्याज दर में वृद्धि हुई। ऐसे कई व्यवसाय जिनका सब प्राइम संकट से कोई लेना-देना नहीं था, उन्हें भी इस संकट का सामना करना पड़ा।

## सब प्राइम ऋण संकट से निपटने के उपाय

भारत ने इस संकट से निपटने के लिए निम्न उपाय किये हैं:

- बासल मानदण्डों के अंतर्गत कुछ संवर्गों के लिए जोखिम भार को कम किया गया। जैसे भारत में अनरेटेड कम्पनियों के लिए जोखिम भार जो पहले 150% था उसे कम करके 100% कर दिया गया।
- भारतीय रिज़र्व बैंक ने देश में चलनिधि बढ़ाने के लिए आरक्षित नकदी अनुपात (सीआरआर) तथा अर्थव्यवस्था की चुनौतियों का सामना करने के लिए रेपो दर में कई चरणों में युक्तियुक्त परिवर्तन किया।
- भारतीय रिज़र्व बैंक ने बैंकों को निर्देशित किया कि उपलब्ध धन को वित्त के रूप में प्रदान करें, ताकि जरूरतमंद कारोबारियों को वित्त से वंचित नहीं होना पड़े।
- 20 लाख रुपये से अधिक राशि के आवासीय गृह निर्माण ऋणों में मानक सम्पत्तियों के लिए 1% के प्रावधान को 0.40% किया गया, इसी प्रकार वाणिज्यिक अचल सम्पत्तियों के लिए ऋण एवं व्यक्तिगत ऋण जिसमें क्रेडिट कार्ड भी शामिल है पर प्रावधानों को 2% से घटा कर 0.40% कर दिया गया।
- विदेशी विनिमय की आवक को प्रोत्साहित करने के लिए एफसीएनआर जमाराशियों पर ब्याज दर में 75 बेसिस पाइंट की वृद्धि की गई तथा यह लाइबर + 100 बीपी है। इसी प्रकार एनआरई (बाह्य) रुपये खाता में भी 100 बीपी की वृद्धि की गई है तथा यह लाइबर + 175 बीपी है।
- भारतीय रिज़र्व बैंक, प्रतिकूल अंतरराष्ट्रीय घटनाक्रम से निर्मित परिस्थितियों एवं मुद्रास्फीति, वित्तीय स्थिरता और विकास की गति संबंधी घरेलू परिस्थितियों के अनुरूप सतत कार्रवाई कर रहा है, जिसके सकारात्मक परिणाम दृष्टिगोचर होने की संभावना है।
- भारतीय रिज़र्व बैंक के नीतिगत उद्देश्य ने चालू वर्ष के दौरान सकल घरेलू उत्पाद में 6% की वृद्धि दर, मार्च 2010 की समाप्ति पर मुद्रास्फीति की दर 4%, मुद्रा आपूर्ति (एम 3) की वृद्धि दर 17%, सकल जमाराशि की वृद्धि 18% तथा समायोजित खाद्येतर ऋण की वृद्धि दर 20% अनुमानित की है, जिससे ऋण गुणवत्ता बनाये रखते हुए व्यवहार्य दरों पर ऋण का विस्तार होगा।
- विश्व अर्थव्यवस्था ने भी यह पाया है कि भारत की बैंकिंग प्रणाली मजबूत, स्वस्थ, पर्याप्त पूंजी से परिपूर्ण एवं विनियमित है, इसलिए यहां की अर्थव्यवस्था पर आर्थिक मंदी का प्रभाव ज्यादा नहीं पड़ा है, साथ ही अर्थशास्त्री भारत में जीडीपी का 61% भाग घरेलू खपत के रूप में होना मानते हैं।
- सब प्राइम ऋण संकट के परिणामस्वरूप विश्वव्यापी आर्थिक मंदी को देखते हुए, कुछ देशों ने आर्थिक पैकेजों की घोषणा की है।
- एक सर्वेक्षण में यह बात सामने आई है कि अन्य विकसित देशों की तुलना में भारत की वित्तीय स्थिति बेहतर है।

वृहद रूप में विश्व अर्थव्यवस्था को भविष्य के लिए अपनी रणनीति इस तरह की बनानी एवं विकसित करनी है कि किन्हीं भी परिस्थितियों में आर्थिक मंदी का दौर पुन: नहीं आये।

# विश्वव्यापी आर्थिक संकट का मनोविज्ञान

● कुमार परिमलेन्दु सिन्हा
प्रबंधक
भारतीय रिज़र्व बैंक, मुंबई

वर्तमान विश्वव्यापी आर्थिक संकट को जिस प्रकार वित्तीय जगत की शब्दावली और अर्थशास्त्र की भाषा में व्याख्यायित करते हुए इसके मूल में ऋण चूक स्वैप (क्रेडिट डिफॉल्ट स्वैप-सीडीएस), प्रतिभूतिकृत सब प्राइम मॉर्गेज और विनियमन की अपर्याप्तता आदि को कारण बताया जा रहा है, उसी प्रकार यदि मनोविज्ञान की दृष्टि से इसके कारणों और इसके स्वरूप का विश्लेषण किया जाए तो इस संकट के पीछे मानव-मन की कुछ मूलवृत्तियों की भूमिका से इनकार नहीं किया जा सकता है। वास्तविक आधारों और जमीनी सच्चाइयों को नज़रअंदाज कर बड़े आर्थिक लक्ष्यों को हासिल करने के लिए की गई बड़ी-बड़ी अपेक्षाओं की विफलता, छोटी अवधि के फायदे के लिए गंभीर जोखिमों की उपेक्षा करना और तर्कसंगत स्वहित का तर्कहीन लालच में बदल जाना उन्हीं मूलप्रवृत्तियों से निर्देशित होने के संकेत देते हैं । दूसरे शब्दों में मनोविज्ञान की भाषा में कहें तो मनुष्य के आर्थिक विकास के इतिहास को निर्मित करने वाले विभिन्न चरण - औद्योगीकरण, पूँजीवाद, समाजवाद, साम्यवाद, वैश्वीकरण, खुले बाज़ार की अर्थव्यवस्था, उपभोक्तावाद, उदारीकरण, स्व-विनियमन और तेजी से बदलते हुए बैंकिंग-आर्थिक परिवेश के संघटकों से लेकर इस विश्वव्यापी आर्थिक संकट तक की यात्रा में मनुष्य को निर्देशित करने वाली उसकी नवोन्मेषी दृष्टि के साथ ही उसके मन की विभिन्न प्रवृत्तियों- आशा, अपेक्षा, प्रतिस्पर्द्धा, अधिकार-चेतना, लालच, असुरक्षा और आकस्मिक भय (पैनिक) की भी एक निश्चित भूमिका रही है। अर्थशास्त्र के पिता कहे जाने वाले सुप्रसिद्ध अर्थशास्त्री एडम स्मिथ ने भी जब अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'The Theory of Moral Sentiments' लिखी, उस समय भी उन्होंने अर्थशास्त्र में मनोभावों की भूमिका से इनकार नहीं किया था। इसी तरह सुप्रसिद्ध अर्थशास्त्री जॉन एम.कीन्स भी जब 1930 की विश्वव्यापी महामंदी के कारणों को रेखांकित करने के क्रम में उस महामंदी के दौर की निराशा और अवसाद का वर्णन करते हुए 'ऐनिमल स्पिरिट' शब्द का प्रयोग करते हैं तो वे क्लासिकल अर्थशास्त्र की उन अवधारणाओं के विपरीत अपनी स्थापना करते हैं जिनमें यह कहा जाता रहा था कि आर्थिक नीति निर्धारकों/सहभागियों से यह अपेक्षा की जाती है कि वे मनोभावरहित तार्किक प्राणी की तरह सोचें। कीन्स की प्रगतिशील अवधारणा के अनुसार मनुष्य की आर्थिक गतिविधियों में उसके मनोभावों और संवेगों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। वर्तमान विश्वव्यापी आर्थिक संकट के परिप्रेक्ष्य में आज के महान अर्थशास्त्री रॉबर्ट शिलर भी अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'Irrational Exuberance' cesb 'Speculative bubbles' का विश्लेषण और उसकी व्याख्या करते हुए जब स्टॉक मार्केट के उच्चतम स्तर पर जाने और उसके धराशायी होने की भविष्यवाणी कर रहे होते हैं या अपने सहलेखक जॉर्ज ए.एकेरलॉफ के साथ मिलकर इस संकट के पीछे मानव मनोविज्ञान की भूमिका की पड़ताल करते हुए अपनी पुस्तक 'Animal Spirit : How Human Psychology Drives the Economy, and Why It Matters for Global Capitalism' में इस संकट के स्वरूप और कारणों के विश्लेषण में जब समकालीन आर्थिक जीवन और परिवेश को निर्देशित करनेवाले महत्वपूर्ण कारकों के रूप में आत्मविश्वास, भय, गलत विश्वास, भ्रष्टाचार, सच्चे व्यवहार के अभाव के प्रति चिंताओं और तर्कपूर्ण अपेक्षाओं की विफलता को शामिल करते हैं, तो इस विश्वव्यापी आर्थिक संकट के पीछे मानव मनोविज्ञान की भूमिका कुछ ज्यादा साफ हो जाती है। रॉबर्ट शिलर उन अर्थशास्त्रियों में से एक हैं जिन्होंने

> औद्योगीकरण, पूँजीवाद, समाजवाद, साम्यवाद, वैश्वीकरण, खुले बाज़ार की अर्थव्यवस्था, उपभोक्तावाद, उदारीकरण, स्व-विनियमन और तेजी से बदलते हुए बैंकिंग-आर्थिक परिवेश के संघटकों से लेकर इस विश्वव्यापी आर्थिक संकट तक की यात्रा में मनुष्य को निर्देशित करने वाली उसकी नवोन्मेषी दृष्टि के साथ ही उसके मन की विभिन्न प्रवृत्तियों- आशा, अपेक्षा, प्रतिस्पर्द्धा, अधिकार-चेतना, लालच, असुरक्षा और आकस्मिक भय (पैनिक) की भी एक निश्चित भूमिका रही है।

सबसे पहले अपनी पुस्तक 'Irrational Exuberance' के दूसरे संस्करण में 2005 में अमेरिका में रियल इस्टेट बुलबुले की ओर संकेत किया था तथा यह भविष्यवाणी की थी कि यह बुलबुला एक दिन फूटने वाला है और इससे वित्तीय संकट आनेवाला है। उन्होंने 2008 में अपने लेख "Sub prime Solution : How the Global Crisis happened and What To Do About It" में भी आवासीय और आर्थिक संकट की उत्पत्ति के कारणों की व्याख्या की और इससे उबरने के लिए एक योजना प्रस्तुत की।

इस संबंध में जॉर्ज ए.एकेरलॉफ तथा रॉबर्ट शिलर का स्पष्ट मानना है कि आर्थिक गतिविधियों के निर्देशक तत्वों तथा अर्थव्यवस्थाओं की कार्यपद्धति, उनके प्रबंधन तथा नीति निर्माण की पृष्ठभूमि आदि कारकों को समझने के लिए यह जरूरी है कि चिंतन के उन स्वरूपों तथा सोच की उन दिशाओं पर ध्यान दिया जाए जो वहाँ के जनमानस के विचार और उनकी भावनाओं, उनकी मनोवृत्तियों का स्वरूप निर्धारित करती हैं। हम अर्थजगत की घटनाओं तथा आर्थिक गतिविधियों को वास्तविक रूप में तब तक नहीं समझ सकते जब तक हम इस तथ्य को अच्छी तरह न जान लें कि उन घटनाओं के अधिकांश कारणों का स्वरूप मानसिक है, उसके मनोभाव और चिंतन के तरीके से उनका गहरा संबंध है। मनुष्य के आर्थिक निर्णयों को प्रभावित करने में उसके मनोभावों की भी महत्वपूर्ण भूमिका होती है। मनुष्य के आर्थिक निर्णयों पर उसका आत्मविश्वास, उसकी अपेक्षाओं, उसके सामाजिक-आर्थिक दबावों, तर्कहीन लालच और समूह की सोच से प्रभावित होकर निर्णय लेने की प्रवृत्ति का गहरा असर पड़ता है। अर्थव्यवस्थाओं के स्वरूप और आर्थिक गतिविधियों के निर्देशक तत्वों को समझने के लिए मनुष्य के संव्यवहारों का अध्ययन आवश्यक है। व्यावसायिक या आर्थिक कार्यव्यापार में सच्चे व्यवहार की अपेक्षा, गलत विश्वास और आधारहीन अपेक्षाएँ मनुष्य के आर्थिक निर्णयों को गहराई से प्रभावित करती हैं। यहाँ मनुष्य एक वस्तुगत इकाई न रहकर एक व्यक्तिगत इकाई बन जाता है और उसकी व्यक्तिगत सोच, उसके चिंतन तथा उसके आकलन और अनुमान उसके आर्थिक निर्णयों को निर्देशित करते हैं। इसी धारणा ने आर्थिक चिंतन के क्षेत्र में `व्यक्तिवाद' की भूमिका को रेखांकित किया। आर्थिक एवं सामाजिक चिंतन के क्षेत्र में नव उदारीकरण को अभिप्रेरित करने वाला सर्वाधिक महत्वपूर्ण कारक 'व्यक्तिवाद' रहा है। 'व्यक्तिवादी' चिंतकों की यह स्पष्ट मान्यता है कि मुक्त बाजार अर्थव्यवस्था तथा सभी सामाजिक और आर्थिक संगठनों के निर्माण, उसकी वैचारिकता और प्रतिबद्धता की निर्मिति का मूल उद्गम मनुष्य का मस्तिष्क ही है। इसलिए संस्थाओं की सोच के निर्माण की पृष्ठभूमि और प्रक्रिया व्यक्ति की सोच से ही शुरू होती है। व्यक्ति के चिंतन से संस्थाओं के चिंतन की दिशा प्रभावित और निर्धारित होती है।

मनुष्य का मस्तिष्क और उसकी चेतना परिस्थितियों को समझने, उसके प्रति समुचित अनुक्रिया करने और तार्किकता की शक्ति में सक्षम होती है। फिर भी मनुष्य की तार्किकता का प्रसार और उसकी शक्ति की एक सीमा है और इस तार्किक प्राणी - मनुष्य का उद्देश्य अधिकतम की प्राप्ति की ओर होते हुए भी 'संतुष्ट' की तरफ ज्यादा रहता है। मनुष्य की तार्किकता से जुड़े कुछ महत्वपूर्ण पहलुओं जैसे व्यक्तिगत उत्तरदायित्व की भावना, पारस्परिक अन्तर्सम्बंधों के विकास तथा उचित समय की परख की क्षमता का अर्थशास्त्र और प्रबंधन की दृष्टि से अपना महत्व है। लेकिन मनुष्य की तार्किकता के कुछ नकारात्मक पहलू भी होते हैं। मनुष्य की तार्किकता जब अति आत्मविश्वास के रूप में उसके निर्णयों को प्रभावित करने लगती है, तब उसमें आधारभूत सच्चाइयों तथा तथ्यात्मक पहलुओं को नज़रअंदाज करके आधारहीन अपेक्षाओं तथा प्रत्याशाओं का सहारा लेने की प्रवृत्ति विकसित होने लगती है। वर्तमान आर्थिक संकट में बड़ी भूमिका निभाने वाले दो प्रमुख कारकों - सब-प्राइम उधार और प्रतिभूतिकरण की प्रवृत्ति का यदि गहराई से विश्लेषण किया जाए तो इनके पीछे छिपे लाभ कमाने का मनोविज्ञान, आधारहीन अपेक्षाओं तथा प्रत्याशाओं के आधार पर किए जाने वाले निवेश का मनोविज्ञान, छोटी अवधि के फायदे के लिए बड़े जोखिमों को नज़रअंदाज करने और अति आत्मविश्वास से भरे फैसलों की प्रवृत्ति वाले मानव मनोविज्ञान की भूमिका स्पष्ट दिखाई देती है। इसी तरह निवेशकों और आर्थिक संगठनों के आर्थिक निर्णयों के पीछे के अति आत्मविश्वास, जोखिमों को नज़रअंदाज करके अत्यधिक लाभ कमाने की प्रवृत्ति तथा संकट के गहराने पर पैदा

हुई अनिर्णय और संभ्रम की स्थिति, आकस्मिक भय (पैनिक) की स्थिति का निर्माण और उसका तेजी से प्रसार भी मानव मनोविज्ञान के कुछ ऐसे महत्वपूर्ण पहलू हैं जिनके विवेचन के बिना इस विश्वव्यापी संकट का विश्लेषण पूरा नहीं होता है। वर्तमान आर्थिक संकट के इस मनोवैज्ञानिक पहलू का एक पार्श्व आधुनिक आर्थिक-सामाजिक जीवन पर गहराई से असर डालने वाले बाजारवाद, उपभोक्तावाद, विज्ञापनवाद और प्रसिद्ध मीडिया सिद्धांतकर मार्शल मैक्लूहान की यह मान्यता कि ''मीडियम इज मैसेज'' से प्रभावित —निर्देशित एक 'उपभोक्ता' और 'निवेशक' मात्र की भूमिका में जीवन जीनेवाले मानव मन की सोच और उसकी चेतना भी है, जिसने मनुष्य के जीवन में बाजार, निवेश, लाभ और उपभोग की अवधारणाओं तथा उसकी भूमिका को नये सिरे से परिभाषित किया। बाजार, विज्ञापन और इंटरनेट के माध्यम से आई सूचनाएँ जाने-अनजाने हमारे निर्णय लेने की प्रक्रिया को गहराई से प्रभावित करती हैं। 1990 दशक के अंतिम वर्षों में निवेशक आर्थिक संभावनाओं के तर्कपूर्ण आकलनों से ज्यादा 'नई अर्थव्यवस्था' की अवधारणा के साथ आए उदारीकरण, वैश्वीकरण तथा मुक्त बाजार व्यवस्था तथा विश्व व्यापार के नए स्वरूप आदि के प्रति आत्मविश्वास से भरे हुए थे और उनके प्रसार के माध्यमों–बाजार, विज्ञापन और इंटरनेट के आधार पर नई आर्थिक संभावनाओं की तलाश कर रहे थे। स्टॉक मार्केट की ऊँचाइयाँ बढ़ने और सकारात्मक फीडबैक मिलने के साथ ही निवेश के निर्णयों में आत्मविश्वास की निरंतर वृद्धि होती रही। बाजार की ऊँचाइयाँ और आत्मविश्वास की वृद्धि के इस चक्र के कालांतर में गिरावट में तब्दील होते ही निवेशकों को वास्तविकता का एहसास हुआ।

अर्थशास्त्र और बैंकिंग के कुछ सामान्य नियम होते हैं कि हर प्रकार के निवेश और आर्थिक फैसलों में जोखिमों का आकलन और वित्तीय विनियमन का पालन किया जाए, सच्चे व्यावसायिक संव्यवहारों का निर्वाह किया जाए तथा अपने आर्थिक निर्णयों में बचाव व्यवस्था को सुनिश्चित स्थान दिया जाए। इन नियमों में मानव मनोविज्ञान का प्रवेश और हस्तक्षेप उन निर्णयों और उनसे संबंधित निष्पादन पर असर डालते हैं। मानव मनोविज्ञान के उन्हीं हस्तक्षेपों ने अविनियमित अनुमानों और अपेक्षाओं की अतिशयता को जन्म दिया जिनके परिणाम के रूप में विश्व को इतने बड़े आर्थिक संकट का सामना करना पड़ा।

ऐसे भी आर्थिक निर्णयों और परिणामों को निर्धारित करने में आधुनिक आर्थिक-सामाजिक जीवन जी रहे मनुष्य के मनोविज्ञान की बड़ी भूमिका होती है। यदि मनुष्य सोचता है कि अच्छा और लाभप्रद समय आने वाला है तो वह आत्मविश्वास के साथ अपने निर्णय लेता है। यदि उसे भावी गिरावट का अंदाजा होता है तो वह रक्षात्मक तरीके से कार्य करता है तथा अपने बचाव की व्यवस्था सुनिश्चिचित करता है। कुछ हद तक यह माना जा सकता है कि वर्तमान संकट के पहले बड़े वित्तीय संस्थानों के प्रबंधक जानबूझकर दोषयुक्त निवेश नहीं कर रहे थे, उन्हें जो सूचनाएँ मुहैया कराई जा रही थीं, उनके आधार पर वे जो निर्णय ले रहे थे, वे उनकी समझ से सही थे तथा उन्हें इनकी लाभप्रदता पर विश्वास था। कुछ वित्तीय संस्थानों ने उच्च जोखिमों के सहारे बड़े लाभ भी कमाए, लेकिन बड़े लाभ के इन थोड़े-से दृष्टांतों ने निवेशक वित्तीय संस्थानों के बीच जल्दी ही लत का रूप ले लिया और उनके वित्तीय कार्यपालकों ने अपने संस्थानों के हित में लिए जा रहे जोखिमों के संभावित नकारात्मक परिणामों से निपटने में अपनी क्षमता को ज्यादा करके आँकना शुरू किया। इनके बीच स्वस्थ प्रतिस्पर्द्धा, जोखिमों के सही आकलन और विवेकपूर्ण मानदंडों के पालन के बजाय इस बात पर बल दिया जाने लगा था कि किसी भी तरह जीत दर्ज करनी है - प्रतिस्पर्द्धा का यह नकारात्मक रूप वित्तीय संस्थानों की सेहत के लिए ऋणात्मक सिद्ध हुआ। प्रसिद्ध अर्थशास्त्री हर्श सेफरिन मेरिल लिंच और लीमन ब्रदर्स के बीच की प्रतिस्पर्द्धा और सब प्राइम उधारदाता/ मॉर्गेज उधारदाता बनने की होड़ पर लिखते हैं : ''उन्होंने नंबर एक बनना चाहा। तत्काल परितुष्टि पर ध्यान ज्यादा केंद्रित था। अधिक खाना, पीना और धूम्रपान जैसे पदार्थ आज आपको आनन्द दे सकते हैं, लेकिन बाद में उनकी भारी कीमत चुकानी पड़ सकती है।'' इस संकट में प्रतिस्पर्द्धा का यह नकारात्मक रूप तथा संव्यवहारात्मक झुकाव की प्रवृत्ति ने बड़ी भूमिका निभाई। निवेशक व्यवसायियों द्वारा निवेश संबंधी निर्णय लेने में उस मूलप्रवृत्ति का बड़ा हाथ था कि ''यदि हर कोई यह कर रहा है तो यह ठीक ही है'', ''भीड़-भावना'' से प्रभावित होकर निर्णय लेने की प्रवृत्ति के साथ ही कुछ चिंतक इस संकट के केंद्र में छल-कपट और विश्वास टूटने की बात को भी

रेखांकित करते हैं। 'Predictably Irrational' के लेखक प्रसिद्ध अर्थशास्त्री डैन ऐरिली की बातों से इसकी सहज ही पुष्टि हो जाती है : ''बाजार के सहभागी -बंधक बैंकर से लेकर निवेश बैंकर तक- सभी राशि की एकमुश्त चोरी तो नहीं कर रहे थे, लेकिन वे ऐसे लेनदेन करने में व्यस्त थे जिसे वे जानते थे कि उनमें जोखिम है अथवा वे ऐसी प्रतिभूतियाँ बेच रहे थे जिसके बारे में उन्हें संदेह था कि वे दोषयुक्त हैं। उधारदाताओं ने वैसे लोगों को ऋण दिया जो उसे चुका नहीं सके, बैंकरों ने जोखिम भरे उन ऋणों से समर्थित प्रतिभूतियों का पैकेज तैयार किया और बेचा क्योंकि सारे बैंकिंग उद्योग में सभी यही कर रहे थे।'' हर्श सेफरिन भी उस विश्वास के भंग होने की बात स्वीकारते हैं: ''आपने मूलत: विश्वास के आधार पर बंधक खरीदा। आपने उस व्यक्ति पर विश्वास किया जो उसे बेच रहा था, आपको धोखा नहीं देगा। आप विश्वास के आधार पर खरीद रहे थे जबकि आपका विश्वास कायम नहीं रह पाया।''

लेकिन रॉबर्ट आरनॉट उधारदाताओं की नीयत के साथ ही उधारकर्ताओं की नीयत पर भी सवाल उठाते हैं : ''हम लूटने वाले उधारदाताओं की बात करते हैं। पर लूटने वाले उधारकर्ताओं के बारे में हम क्या सोचते हैं। यदि कोई दलाल किसी को बंधक के आवेदन पर झूठी जानकारी देने के लिए प्रोत्साहित करता है तो दलाल और उधारकर्ता दोनों ही दोषी हुए।'' इसी दृष्टि से कॉलिन सिल्वरथ्रोन उधारकर्ताओं को चार श्रेणियों में बाँटते हैं: 1) वे जिन्हें यह विश्वास था कि कीमतें बढ़ती रहेंगी; 2) वे जो यह जानते थे कि यह उन्माद है, लेकिन किसी भी तरह उन्हें उधार लेना है; 3) वे लोग जो इसे नकारते थे, इस पर संदेह करते थे लेकिन अपनी सोच को दबाते हुए भटकाए गए ; तथा 4) वे लोग जो यह नहीं पढ़ते थे कि वे किस दस्तावेज पर हस्ताक्षर कर रहे हैं। जब सीमित साधनों वाला एक व्यक्ति यह सुनता था कि उसके मित्र ने मॉर्गेज लेकर नया मकान लिया है और उसकी लाइफस्टाइल चमत्कृत रूप से बदल गई है तो ऐसा सुननेवाला दूसरा व्यक्ति वैसा ही करने में थोड़ा भी नहीं हिचकता था और रियल इस्टेट बूम में शामिल होकर अपनी लाइफस्टाइल बदलने में लग जाता था। मॉर्गेज आस्तियों के प्रतिभूतिकरण ने भी इस विश्वास को दृढ़ बना दिया था कि कीमतों का बढ़ना जारी रहेगा। कुछ समय तक ऐसा हुआ भी, लेकिन बाद में सब कुछ गिरावट की ओर जाने लगा।

## आर्थिक संकट की मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि

1930 की महामंदी और द्वितीय विश्व युद्ध के बाद से अधिकांश पश्चिम यूरोपीय देशों की घरेलू आर्थिक नीतियाँ ''न्यूनता के मनोविज्ञान'' पर आधारित थीं। अर्थात यह विश्वास कि संसाधन और अवसर सीमित हैं और उनको फिर से वितरण करने तथा लोगों के बीच बाँटने के लिए निष्पक्षता को बढ़ावा दिया जाना चाहिए तथा सरकारी नीतियाँ बनाई जानी चाहिए। कई दशकों तक सर्वसामान्य की भलाई के लिए अर्थव्यवस्था को विनियमित करने तथा उसमें हस्तक्षेप करने के लिए राष्ट्रीय सरकार की अवधारणा में पश्चिम यूरोपीय देशों की इस सार्वजनिक नीति को स्वीकार किया गया था। सोवियत संघ के विघटन के बाद केंद्रीय और पूर्व यूरोपीय देशों की घरेलू नीतियों में सामाजिक लोकतंत्र के सिद्धांतों को बढ़ावा मिला।

इसके विपरीत अमेरिकी नीतियों में बहुत पहले से ही ''प्रचुरता के मनोविज्ञान'' की प्रमुखता रही, अर्थात संसाधन और अवसर प्रचुर हैं तथा यह व्यक्ति पर निर्भर है कि वह उनका लाभ उठाए। सफलता और असफलता व्यक्ति की अपनी क्रियाओं, उसके अपने निष्पादन पर निर्भर करती है। सफलता उसके कठिन परिश्रम और उसकी पहल का प्रतिफल है और असफलता का कारण कोई अन्य व्यक्ति अथवा सरकार नहीं है। इस अमेरिकी विश्वास की जड़ें उस राष्ट्र के साथ उसकी शुरुआत से ही जुड़ी हुई हैं। मानवीय महत्ता और व्यक्तिगत स्वातंत्र्य की अवधारणा की गहरी जड़ें उनके मानस में तो थीं ही, यूरोपीय निवासी जब यहाँ आए तो वे अपने साथ स्वतंत्रता और व्यक्तिगत उत्तरदायित्व में पूर्ण विश्वास तथा उसके साथ ही सार्वजनिक या निजी किसी भी क्षेत्र में सरकार के हस्तक्षेप में उतने ही अविश्वास की भावना लेकर आए। उनके सामाजिक-राजनीतिक जीवन और चिंतन की संकल्पनाओं में यह बात सामान्य रूप से शामिल थी कि अच्छे लोग, जो कठिन परिश्रम करते हैं, वे अपने तथा अपने बच्चों के जीवन को बेहतर और समृद्ध बना सकते हैं, और ऐसा करके वे अलग तरह के एक बेहतर लोकतांत्रिक देश का निर्माण कर सकते हैं।

जब सुप्रसिद्ध अर्थशास्त्री एडम स्मिथ की प्रसिद्ध पुस्तक 'द वेल्थ ऑफ नेशंस' 1776 में प्रकाशित हुई उसमें भी इस बात पर जोर दिया गया था कि एक निर्बाध (Laissez fair), मुक्त बाजार आर्थिक प्रणाली ही व्यक्ति को समृद्ध बना पाने में सक्षम है तथा राष्ट्र को समग्र आर्थिक विकास की ओर ले जा सकती है। इस आर्थिक सिद्धांत को एक उदार राजनीतिक दर्शन जो जनसाधारण के जीवन और नागरिकों द्वारा स्वयं को स्व-शासित किए जाने वाले उनके अधिकारों में सरकार की बहुत छोटी भूमिका पर जोर देता था, का समर्थन प्राप्त हुआ। अमेरिकी अपने जीवन में दखल देने वाले किसी राजा, रानी या पोप को नहीं चाहते थे। जनता के सामाजिक-आर्थिक जीवन के फैसलों में सरकार और उसकी नीतियों का कम-से-कम हस्तक्षेप अमेरिकी लोकतांत्रिक मूल्यों की पहचान थी। थॉमस जेफरसन के शब्दों में इसकी पुष्टि देखी जा सकती है – ''कम से कम शासित करने वाली सरकार ही सर्वोत्तम सरकार होती है।''

सुदृढ़ लोकतांत्रिक मूल्यों वाले इस देश के प्रचुर प्राकृतिक संसाधन और विकसित मानव संसाधन के साथ ही विकसित अर्थव्यवस्था तथा निरंतर औद्योगिक विकास ने इसके व्यक्ति स्वातंत्र्य वाले राजनीतिक दर्शन और उदार आर्थिक नीतियों को बढ़ावा दिया। यूरोपीय देशों के युद्धों से अलग होकर अमेरिका अपने को एक नये प्रकार के देश के रूप में निर्मित करता रहा जिस पर राष्ट्रीय झगड़ों और कठोर वर्ण व्यवस्थाओं के बोझ नहीं थे। व्यक्तिगत सफलताओं से सामूहिक अमेरिकी सफलता का स्वरूप निर्मित होता रहा, जिसने राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक सभी संदर्भों में तीव्र व्यक्तिवाद के प्रति गहरे विश्वास को प्रोत्साहित किया। नैतिक मूल्यों के साथ मनुष्यों द्वारा किए जाने वाले कठिन परिश्रम ने उन्हें आर्थिक विकास की सीढ़ियों को चढ़ने के साथ ही समग्र अर्थव्यवस्था के विकास में मदद की तथा एक ऐसे नागरिक समाज के निर्माण को अभिप्रेरित किया जो विकासापेक्षी, बेहतर भविष्य और परितुष्टि में विश्वास रखने वाले एक सच्चे 'अमेरिकी सपने' के अनुरूप हो। समय-समय पर आए आकस्मिक भय (पैनिक) और अन्य आर्थिक आघातों तथा गृहयुद्धों के उतार-चढ़ावों के बावजूद इस अमेरिकी सपने को 19वीं और 20वीं सदी के दौरान वास्तविकता में बदलने की कोशिश जारी रही। लेकिन 1929 की अचानक गिरावट (Crash) और विश्वव्यापी महामंदी ने कुछ-कुछ दिवास्वप्न जैसी इस धारणा को तोड़कर रख दिया। इसने अमेरिकी आत्मविश्वास को हिलाकर रख दिया। फिर कुछ वर्षों तक अमेरिकी नीतियों में ''प्रचुरता के मनोविज्ञान'' की जगह ''न्यूनता के मनोविज्ञान'' ने ले ली। अब केवल संघ सरकार के पास अर्थव्यवस्था को उत्प्रेरित और प्रोत्साहित करने के लिए पर्याप्त धनराशि थी। अर्थव्यवस्था को व्यवस्थित और मजबूत करने तथा व्यक्ति के संरक्षण के लिए सरकार को आगे आना पड़ा। परंपरागत अमेरिकी व्यक्तिवाद को सक्रिय सरकारी हस्तक्षेप से समर्थित करना पड़ा। 25 प्रतिशत बढ़ी हुई बेरोजगारी, बैंकों के धराशायी होने, फॉर्मों और आवासों के फोरक्लोजर होने, अवस्फीति और उत्पादन में गिरावट के बीच उस समय के राष्ट्रपति फ्रैंकलिन डेलानो रुजवेल्ट के प्रशासन को अर्थव्यवस्था को मजबूत करने के लिए अनेक कदम उठाने पड़े तथा रोजगार सृजित करने पड़े। अर्थव्यवस्था के विनियमन में सरकार की सक्रिय संलग्नता बढ़ानी पड़ी। धीरे-धीरे स्थिति सुधरी और विकास का एक नया दौर शुरू हुआ। द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद नये-नये आविष्कारों और नये उद्योगों की स्थापना तथा नई प्रौद्योगिकी के उदय के साथ ही उपभोक्ता अर्थव्यवस्था की अवधारणा सामने आई और परिवहन, दूरसंचार, उपभोक्ता इलेक्ट्रॉनिक उपकरणों के साथ ही सूचना प्रौद्योगिकी नाम की नई प्रौद्योगिकी का जन्म हुआ। इसके साथ ही एक बार फिर ''प्रचुरता के मनोविज्ञान'' का युग लौटा। व्यापक पैमाने पर उपभोक्ता ऋण, ज्यादा सक्षम विनिर्माण और वितरण –प्रणाली तथा विस्तृत स्वरूप वाली सूचना प्रौद्योगिकी तथा दूरसंचार प्रणालियों की सहायता से नई उपभोक्ता वस्तुओं के विनिर्माण और नई उपभोक्ता सेवाओं का सृजन हुआ। सूचना प्रौद्योगिकी और दूरसंचार प्रणालियों की नई क्रान्ति ने सारे विश्व को, विकासशील और विकसित सभी देशों को बाजार, व्यापार, अर्थव्यवस्था और वित्तीय गतिविधियों की दृष्टि से बहुत निकट ला दिया। इससे विश्वस्तरीय उपभोक्ता बाजार, मुद्रा बाजार, उपभोक्ता सेवाओं, मुक्त बाजार व्यवस्था, विदेशी निवेश, बहुराष्ट्रीय कंपनियों तथा वैश्विक स्तर पर निवेश के व्यापक अवसरों वाली वैश्विक अर्थव्यवस्था के एक नए युग की शुरुआत हुई, जिसमें अनेक वैश्विक वित्तीय संस्थानों का आविर्भाव हुआ तथा विश्व की राष्ट्रीय अर्थव्यवस्थाएँ धीरे- धीरे परस्पर निर्भर होती गईं। लेकिन ''प्रचुरता के मनोविज्ञान'' से प्रेरित

अमेरिकी आशावाद से प्रभावित इस वैश्वीकरण से आई आर्थिक विकास की क्रांति ने संयमित यथार्थवाद से अभिप्रेरित एक विनियमित, व्यवस्थित तथा सुरक्षित आर्थिक जगत की जगह अपेक्षाओं की अतिशयता और उच्च आशावादिता वाली सोच को जन्म दिया। ठेठ अमेरिकी आशावाद और विश्वास जिसमें हमेशा 'न्यूनता', असफलता और कमी की अवधारणा को खारिज किया जाता रहा और इस धारणा पर जोर दिया जाता रहा कि भविष्य तो निर्विवाद रूप से पूरी तरह सुरक्षित, समृद्ध और बेहतर है, ने इस संकट को जन्म देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी।

विश्व स्तर पर अर्थव्यवस्थाओं के बीच परस्पर निर्भरता, विदेशी निवेश तथा वैश्वीकरण के विभिन्न पहलुओं ने वर्तमान वित्तीय गिरावट और आर्थिक मंदी को विश्वव्यापी बनाने तथा इसकी गंभीरता बढ़ाने में पूरी मदद की । यही कारण था कि एक विकसित देश के अपर्याप्त रूप से विनियमित बाजार और अतिशय अपेक्षाओं से अभिप्रेरित अनियंत्रित लालच के मेल से उत्पन्न हुए इस आर्थिक संकट ने जल्दी ही सारे विश्व की अर्थव्यवस्था को अपनी चपेट में ले लिया।

## संकट का स्वरूप, विस्तार और गंभीरता

इस विश्वव्यापी आर्थिक संकट की शुरुआत अमेरिकी वित्तीय प्रणाली के एक प्रमुख अंग सब-प्राइम उधार से उत्पन्न चलनिधि (लिक्विडिटी) संकट तथा क्रेडिट क्रंच से वित्तीय क्षेत्र के बड़े-बड़े संगठनों, बैंकों, स्टॉक मार्केट के धराशायी होने तथा उसके परिणामस्वरूप निवेशकों, वेतनभोगियों तथा उत्पादकों की आर्थिक स्थिति पर पड़े प्रतिकूल प्रभावों से हुई। बड़े पैमाने पर मॉर्गेज आस्तियों के प्रतिभूतिकरण ने इस संकट को गंभीर बनाने में मदद की। इस संकट ने जल्दी ही यूरोप और एशिया की अर्थव्यवस्थाओं और स्टॉक मार्केट को अपनी चपेट में ले लिया। इस संकट की गंभीरता सारे विश्व में विकास दर की तेजी से गिरावट, अर्थव्यवस्था में स्लोडाउन, वित्तीय संकट से कंपनियों द्वारा अपने कर्मचारियों की छँटनी, बड़े-बड़े बैंकों और वित्तीय संगठनों की बुरी वित्तीय स्थिति से उनके डूबने तथा रोजगारों में कमी के रूप में सामने आने लगी। इस संकट के संकेत पहले से ही दिखाई देने लगे थे। स्टॉक मार्केट और रियल इस्टेट में आये बुलबुले कुछ अर्थशास्त्रियों को भावी संकट के संकेत तो दे ही रहे थे, लेकिन जोखिम के कुछ और संकेतकों में भी इस इस संकट के आने की दस्तक सुनाई पड़ रही थी। सब प्राइम संकट के कारण ऋण जोखिम का संकेतक (TED Spread) (इंटर बैंक और अमेरिकी सरकार के ट्रेजरी बिल पर ब्याज दरों का अंतर) पिछले सारे रिकॉर्डों को तोड़कर 465 आधार अंकों (10 अक्तूबर 2008) की ऊँचाई तक चला गया। इसी तरह ट्रेजरी बिलों (जो एक जोखिम रहित निवेश माना जाता है) का 3 महीने का प्रतिलाभ शून्य के करीब हो गया। छोटे फायदे के लिए बड़े-बड़े जोखिमों को नज़रअंदाज करने वाले बड़े-बड़े वित्तीय संस्थान बुरी तरह असफल हो रहे थे और बैंक डूबने लगे थे । एफ.डी.आई.सी. के आँकड़ों के अनुसार 2008 की तीसरी तिमाही तक 25 अमेरिकी बैंक डूब गए थे जिनकी कुल आस्ति 348 बिलियन रुपये थी । अमेरिका में बाजार का पूंजीकरण अक्तूबर 2008 तक 20 ट्रिलियन रुपये से घटकर 12 ट्रिलियन रुपये हो चुका था । अमेरिका की मंदी का असर पूरी दुनिया में फैल रहा था । अमेरिका के साथ ही यूरोपीय देशों और एशियाई देशों के शेयर बाजारों में तेजी से गिरावट हुई। वर्ल्ड बैंक प्रमुख ज़ुलीक के अनुसार भारत ने 45 बिलियन रुपये का फोरेक्स रिज़र्व पूँजीगत बहिर्वाह (कैपिटल आउटफ्लो) के कारण गँवाया, विनिमय दर का 20% तक अवमूल्यन हुआ और औपचारिक क्षेत्र में अक्तूबर 2008 से दिसंबर 2008 तक करीबन 5,00,000 लोगों की नौकरियाँ चली गई । चीन की विकास दर भी कम होने लगी है । सभी देशों के शेयर बाजार 50% तक नीचे आ चुके हैं । बेरोजगारी बढ़ने और विकास में हो रही कमी के आँकड़े समाचार पत्रों के पहले पन्ने पर छपने लगे । अमेरिका में बेरोजगारी 1983 के बाद सबसे ऊँचे स्तर 8.5 % पर पहुंच चुकी है । सबसे कम जोखिम वाले बंधकों में भी चूक की मात्रा बढ़ने लगी । इस संकट से उबरने में अभी तक 14.5 ट्रिलियन रुपये और दुनिया की सभी कंपनियों की 33% कीमत की भेंट चढ़ चुकी है । यू.के. और यूरोप के अन्य देश 2 ट्रिलियन रुपये बेलआउट पैकेज के रूप में खर्च कर चुके हैं। फिर भी संकट की गंभीरता और उसके विस्तार का सही-सही आकलन तथा उससे निपटने की कोशिश अभी जारी है।

## सब प्राइम उधार : तर्कसंगत स्वहित का तर्कहीन लालच में बदल जाना

इस आर्थिक संकट की पृष्ठभूमि पर यदि गौर किया जाए तो यह स्पष्ट है कि वित्तीय संगठन और व्यक्तिगत निवेशक दोनों ने

छोटी अवधि के फायदे के लिए गंभीर जोखिमों की पूरी तरह उपेक्षा की । उन्होंने तर्कसंगत स्वहित के नाम पर विनियमों की अपर्याप्तता का लाभ लेते हुए अपने निवेश में बड़े-बड़े जोखिमों को पूरी तरह नज़रअंदाज किया। उनका तर्कसंगत स्वहित शीघ्र ही तर्कहीन लालच में परिणत हो गया । फेडरल रिज़र्व के पूर्व अध्यक्ष ग्रीनस्पान भी यह मानते हैं कि उनका यह विश्वास गलत था कि ''बैंक स्वहित के माध्यम से अपने संगठनों और शेयरधारकों को बचाने के लिये तर्कसंगतता से काम करेंगे'' । लेकिन स्वहित के लिए किए जाने वाले आर्थिक निर्णयों और जोख़िमों को नज़रअंदाज करके किए जाने वाले निवेशों के पीछे अत्यधिक लाभ कमाने का लालच ज्यादा था। इतना ही नहीं, वित्तीय संकट की गंभीरता के बावजूद मुख्य कार्यपालक अधिकारी (सीईओ) बड़ी मात्रा में बोनस और भत्ते लेते रहे। मेरिल लिंच के उस समय के मुख्य कार्यपालक अधिकारी जॉन थेन ने जनता के शोर मचाने के बाद अपनी परिलब्धियों और बोनस में से मात्र 10 मिलियन डॉलर छोड़ा। बीमा कंपनी एआईजी ने करदाताओं की गाढ़ी कमाई से मिली बेलआउट राशि में से 165 मिलियन डॉलर की राशि अपने शीर्ष कार्यपालकों और कर्मचारियों के बोनस पर खुले तौर पर खर्च कर दिया। शीर्ष कार्यपालकों को चाहिए था कि वे जनता को यह विश्वास दिलाते कि कंपनी के ऋणात्मक निष्पादन और शेयरधारकों की हानि में वे उनके साथ हैं। लेकिन इसके विपरीत उन्होंने सरकारी मदद के रूप में मिले बेलआउट पैकेज से अपनी जेब भरना जारी रखा।

इस विश्वव्यापी आर्थिक संकट के लिए सबसे बड़ा कारण था - सब प्राइम उधार (सब प्राइम लेंडिंग) और उसका प्रतिभूतिकरण। सब प्राइम उधार का संकट आवासीय संपत्ति से जुड़ा हुआ संकट था । उस समय अमेरिका में लोगों में ऋण की आसान शर्तों और आवास की बढ़ती कीमतों के कारण आवास ऋण लेने के प्रति ज्यादा आकर्षण था । ऐसे में लोग मकान खरीदने के लिए ज्यादा से ज्यादा पैसा ऋण के तौर पर लेने में पूरा उत्साह दिखाते थे । इसी समय सब प्राइम उधार की अवधारणा सामने आई और तेजी से जोर पकड़ने लगी। सब प्राइम उधार, वैसे लेनदारों/ उधारकर्ताओं को प्राइम उधार दर से अधिक दर पर दिया जाने वाला वह उधार था, जिसको देने के लिए लेनदारों/ उधारकर्ताओं की ऋण शोधन क्षमता का सही आकलन नहीं किया जाता था । इन लेनदारों/ उधारकर्ताओं के ऋण शोधन का पिछला रिकॉर्ड (Credit history) अच्छा नहीं था, उनकी आय कम थी तथा उनकी आय के स्रोतों का सत्यापन नहीं किया जाता था । ऋण जोखिमों को अनदेखा करके भी यह आशा की जाती थी कि वे लेनदार/उधारकर्ता जोखिम प्रीमियम के साथ ऊँचा ब्याज तो देंगे ही। चूक के बारे में तो सोचने की भी जरूरत नहीं समझी जाती थी। इसी तरह बड़े-बड़े वित्तीय संस्थानों तथा बैंकों के अलावा बहुत सारे गैर बैंकिंग तथा गैर वित्तीय संस्थानों द्वारा भी बड़ी मात्रा में सब प्राइम उधार दिया गया था जो किसी नियंत्रण या विनियम के अधीन नहीं थे ।

आसान शर्तों पर ऋण देने का प्रारंभिक समय बीत जाने के बाद ब्याज दरों को बढ़ाकर ऊंचा कर दिया गया जिससे लेनदारों/ उधारकर्ताओं की मासिक किश्तों की रकम चुकाने की शक्ति उनकी अदायगी क्षमता से बाहर जाने लगी । इससे चूक का सिलसिला बढ़ने लगा। तर्कहीन लालच की प्रवृत्ति इतनी तीव्र थी तथा आधारहीन अपेक्षाओं ने निवेशकों का वास्तविकता से संपर्क इतना दूर कर दिया था कि लोगों में यह गलतफहमी जोरों पर थी कि आवास की कीमतें हमेशा बढ़ती ही रहेंगी। आवास की कीमतें कभी नीचे भी गिरेंगी, यह कोई सोचता भी नहीं था। लेकिन जब आवास की कीमतें उम्मीद के मुताबिक नहीं बढ़ीं, तब चूक और फोरक्लोजर की संख्या तेजी से बढ़ने लगी । अमेरिका में आवास का बुलबुला फटते ही चूक की दर तेजी से बढ़ने लगी। परिणामस्वरूप, सब प्राइम मॉर्गेज से समर्थित प्रतिभूतियों की कीमतें बहुत कम हो गईं । सब प्राइम मॉर्गेज से समर्थित प्रतिभूतियां व्यापक रूप से वित्तीय फर्मों के पास थीं । इसके परिणामस्वरूप कई बैंकों की पूँजी में भारी गिरावट आने लगी ।

## प्रतिभूतिकरण : अति आत्मविश्वास, उन्माद (मेनिया) और अति आशावाद

आवासीय बुलबुले के पीछे अति आत्मविश्वास, उन्माद (मेनिया) और अति आशावाद का बहुत बड़ा हाथ था। जैसा कि हमने ऊपर चर्चा की है ''प्रचुरता के मनोविज्ञान'' से अभिप्रेरित ठेठ अमेरिकी आशावाद और विश्वास जिसमें हमेशा 'न्यूनता', असफलता और कमी की अवधारणा को खारिज किया जाता

रहा और इस धारणा पर जोर दिया जाता रहा कि भविष्य तो निर्विवाद रूप से पूरी तरह सुरक्षित, समृद्ध और बेहतर है, ने इस संकट को जन्म देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी। उपभोक्ताओं का कर्ज के जाल में फँसते जाने के बावजूद निवेश करते समय तथा उधार लेते समय उनमें स्व-नियंत्रण की कमी रही। प्रतिस्पर्द्धा के वशीभूत होकर और वास्तविक आकलन से परे जाकर वित्तीय संस्थानों के कार्यपालकों के आर्थिक निर्णय तथा व्यक्तिगत निवेशकों की अति आत्मविश्वास और अति आशावाद से भरी यह सोच कि हमारे निवेश पूरी तरह सुरक्षित हैं, कालान्तर में उन्हें बहुत भारी पड़ा।

वर्तमान आर्थिक संकट की शुरुआत आवासीय कीमतों के बुलबुले से हुई। किसी भी बुलबुले के निर्माण के पीछे प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से उस मानवीय उन्माद (मैनिया) का हाथ होता है, जिसकी जड़ें अति आत्मविश्वास और अति आशावाद में छिपी होती हैं। बुलबुलों का निर्माण तब होता है, जब लोग बिना कुछ सोचे समझे कोई वस्तु बस इसलिए खरीदना चाहते हैं कि वे इसे ज्यादा से ज्यादा कीमत में बेच सकते है। यहाँ बाजार की अस्थिरता, जोखिमों के आकलन तथा वास्तविक परिस्थितियों की समझ से ज्यादा काल्पनिक संभावनाओं पर बल होता है।

रियल इस्टेट और प्रोपर्टी बाजार में बूम आना ज्यादा सहज होता है क्योंकि उनकी कीमतों की सूचना के लिए कोई केंद्रीकृत क्लियरिंग हाउस नहीं होते, उनकी लेन-देन की लागत ऊँची होती है तथा उनकी खरीद- बिक्री की बारंबारता भी कम होती है। इस क्षेत्र में किया जाने वाला निवेश सामान्य रूप से लंबी अवधि का माना जाता है। लेकिन विभिन्न आर्थिक-सामाजिक कारणों से अस्वाभाविक रूप से कीमतें बढ़ने से फायदे कमाने के उद्देश्य से इसमें छोटी अवधि के लिए किए जाने वाले निवेश से यह सही-सही पता लगाना मुश्किल होता है कि कीमतों में आई यह उछाल बुलबुला है या मात्र अर्थव्यवस्था में सुधार और विकास का द्योतक । वर्तमान आवासीय बुलबुले को बैंकिंग प्रणाली के समर्थन ने उसे और भी व्यापक रूप देने में मदद की। जब तक अर्थव्यवस्था में सब कुछ ठीक ठाक था ऐसा माना जाता रहा कि रियल इस्टेट की कीमतों में आई यह उछाल उसी का परिणाम है और बैंकों ने बड़े पैमाने पर उधार देकर इस प्रवृत्ति को पूरा समर्थन दिया। बढ़ती कीमतों के प्रति आशावाद ने भविष्य की कल्पना और संभावनाओं को मजबूत किया तथा बाजार में बड़ी संख्या में नए निवेशक दाखिल हो गए और जिससे एक ओर तो कीमतें बढ़ीं दूसरी ओर निवेशकों में उत्साह भी बढ़ा। ऐसी परिस्थिति में अर्थव्यवस्था के विनियामकों और पर्यवेक्षकों की भूमिका महत्वपूर्ण हो जाती है। लेकिन वे भी इस बूम के प्रभाव को कम नहीं कर पाए। यहाँ भी मनोभावों ने अपनी भूमिका अदा की । इस चक्र में फँसे लोग इसके नकारात्मक परिणामों को देख और समझ पाने में असफल रहे । वे यह कल्पना भी नहीं कर पाए कि कभी कीमतों में ऐसी गिरावट भी आ सकती है, वे सोचते भी थे तो बस इतना कि बुरी परिस्थिति आएगी भी तो इतनी चिंताजनक नहीं होगी। बोस्टन, मिलवाउकी, लॉस एंजेल्स और सैन फ्रांसिस्को – इन चार बाजारों में 2003 में किए गए एक सर्वे में लगभग 80 % मकान मालिकों ने इस बात पर विश्वास व्यक्त किया कि अगले कुछ वर्षों में आवास की कीमतें पर्याप्त मात्रा में बढ़ेंगी। जब मकान मालिकों से यह पूछा गया कि अगले महीनों में मकानों की कीमतें कितनी बढ़ने की आशा है तो बोस्टन के मकान मालिकों ने उत्तर दिया यह वृद्धि 7.2% होगी , लॉस एंजेल्स के मकान मालिकों ने बताया कि यह संभावित वृद्धि 10.5% होगी, मिलवाउकी के मकान मालिकों ने बताया कि यह संभावित वृद्धि 11.7% होगी तथा सैन फ्रांसिस्को के मकान मालिकों ने बताया कि उन्हें 15.7% तक रिटर्न मिल सकता है। लोग अति आशावाद के कारण भविष्य के बारे में गलत आर्थिक विकल्प अपना रहे थे। जैसे वे क्रेडिट कार्ड की शेषराशि को लंबी अवधि के ऊँचे ब्याज दरों वाले कार्ड पर अंतरित कर रहे थे क्योंकि उन्हें विश्वास था कि वे भविष्य में कम ब्याज दर होते ही अपना सारा भुगतान कर देंगे । चूक करने वाले बहुत सारे उधारकर्ताओं को अपने ऋण के मूलधन की राशि पर 90% तक का ब्याज देना पड़ रहा था जो वह कभी नहीं दे सके और उन्होंने भुगतान करना ही छोड़ दिया। वर्तमान बुलबुले में खरीदार और उधारदाता दोनों भविष्य की संभावनाओं के प्रति अति आशावादी रहे। खरीदारों ने इस संभावना को नज़रअंदाज किया कि हो सकता है कि वे भुगतान नहीं कर सकें और मान लिया कि आवासों की कीमतें ऊपर जाएंगी और वे उन्हें बेचने तथा ऋण चुकाने में समर्थ हो सकेंगे। उसी तरह उधारदाताओं ने चूक की संभावनाओं को नज़रअंदाज किया क्योंकि आवास की बढ़ती कीमतों ने इसे आसान बना दिया कि

अशोध्य ऋणों को खाते से निकाल दिया जाए। यहाँ जॉन केनेथ गेलब्रेथ की प्रसिद्ध पुस्तक 'द ग्रेट क्रैश' जिसमें उन्होंने विश्व को 1930 की महामंदी की ओर ले जाने वाली घटनाओं का वर्णन किया है, उसकी कुछ पंक्तियाँ यहाँ ज्यादा प्रासंगिक लगती हैं – ''बैंकर भी उन लोगों के लिए जो तेजी के स्थायित्व में विश्वास रखना चाहते थे, प्रोत्साहन के एक स्रोत थे। उनमें (बैंकरों) से अधिकांश ने राष्ट्र के आर्थिक निराशावाद में अभिभावक के रूप में अपनी ऐतिहासिक भूमिका नहीं निभायी तथा अल्प अवधि के आशावाद का आनन्द उठाते रहे।'' वर्तमान आर्थिक संकट के पहले मॉर्गेज आस्तियों के प्रतिभूतिकरण पर दिया जाने वाला बल इसी अति आशावाद और अपेक्षाओं की अतिशयता का फल था।

सब प्राइम उधार की तरह ही इस संकट को गंभीर बनाने में प्रतिभूतिकरण की भी महत्वपूर्ण भूमिका थी। अमेरिकी बैंकों और वित्तीय संस्थानों द्वारा बंधक समर्थित प्रतिभूतियों (Mortgage Backed Securities – MBS) का प्रयोग किया जा रहा था, जिसकी कीमत बंधक के भुगतान और आवास की कीमतों से तय होती थी । प्रतिभूतिकरण के माध्यम से बैंक द्वारा लोगों को दिए गए आवासीय ऋणों को एकत्र कर विक्रय योग्य आस्तियों में परिवर्तित किया जाता था ताकि उससे संबंधित जोखिम कम किया जा सके । लेकिन जोखिम कम किए जाने के उद्देश्य से बनाया गया यह लिखत बाद में जोखिम का सबसे बड़ा कारण बना ।

आवास की कीमतें बढ़ने से बंधक समर्थित प्रतिभूतियों की कीमतें भी बढ़ रही थीं । बैंकों द्वारा ऋण लेकर बड़े पैमाने पर आवास के लिये ऋण दिया जाने लगा ताकि ज्यादा से ज्यादा प्रतिभूतिकरण किया जा सके और लाभ कमाया जा सके। लाभ कमाने के उन्माद और बेतहाशा प्रतिस्पर्द्धा ने बड़े पैमाने पर मॉर्गेज आस्तियों के प्रतिभूतिकरण को अंजाम दिया। बैंकों द्वारा बंधक खरीदे जाते थे, उन्हें प्रतिभूतिकृत किया जाता था और बेच दिया जाता था । बैंकों द्वारा यह सोचे बिना कि किसको ऋण देना है और किसको नहीं, बड़े पैमाने पर ऋण बाँटा जाना शुरू कर दिया गया था। बैंकों ने बंधक प्रतिभूतियों की खरीदारी भी शुरू कर दी। बढ़ती कीमतों से बैंक यह मानने लगे थे कि आवासीय ऋण में जोखिम बहुत ज्यादा नहीं है । उनके लिये डूबंत ऋण का मतलब था ऊँचे मूल्य वाली संपत्ति का हाथ लग जाना और इस तरह सब प्राइम उधार ऋण बड़े पैमाने पर प्रचलित होते गए। अब डूबंत ऋण की चिंता बैंकों को नहीं थी क्योंकि इससे संबंधित जोखिम तो प्रतिभूतियाँ खरीदने वालों को बड़ी आसानी से अंतरित हो रहा था । बढ़ती कीमतों से प्रतिभूतियों की कीमतें भी बढ़ने लगी और इसमें मुनाफा भी काफी आने लगा था। धीरे- धीरे एक ऐसा समय आ गया कि प्रतिभूतियों की कीमतें आवास की कीमतों से तय होने के बजाय आवास की कीमतें एक तरह से प्रतिभूतियों की कीमतों से तय होने लगीं । अच्छा मुनाफा मिलने से लोग इसमें निहित जोखिमों को पूरी तरह नज़रअंदाज करते रहे। इस प्रवृत्ति से आवास की कीमतें आसमान को छूने लगीं। मॉर्गेज ऋण मकान की कीमत, बाजार कीमत से भी ऊपर जाने लगे तथा आवास की कीमतें अधिमूल्यित (ओवर-वेल्यूड) होती गईं । जिन लोगों ने समायोज्य बंधक दर से ऋण लिया था उनके लिये ऋण की किश्तें भरना मुश्किल हो गया क्योंकि कम ब्याज का शुरुआती लुभावना समय अब समाप्त हो चुका था। कीमतें इतनी ज्यादा बढ़ चुकी थीं कि लोगों की आय के मुकाबले वह अधारणीय और अवहनीय हो गईं । तब आवास की माँग और उनकी कीमत दोनों में गिरावट आने लगी । फलस्वरूप, मकान मालिकों के लिए बंधक भुगतान करना या मकान बेचना दोनों ही मुश्किल होने लगा ।

मकान खरीदने वाले कम होते गए और कीमतें तेजी से घटने लगी । कीमतें इतनी कम हो गईं कि उसके मुकाबले मकान का ऋण ज्यादा हो चला । दूसरे शब्दों में, मकान की खरीद में लगाये गए पैसे पर मिलने वाला रिटर्न नकारात्मक होता गया । इससे चूक और फोरक्लोजर की दर तेजी से बढ़ने लगी । ऐसे में हर उधारदाता और निवेशक अपने पैसे वापस निकालना चाह रहा था लेकिन निवेशक बैंकों के पास बहुत ही कम राशि जमा थी । इसका असर यह हुआ कि बैंकों के टूटने का सिलसिला शुरू हो गया ।

प्रतिभूतिकरण के माध्यम से ऊँचे जोखिम वाले अनकदी ऋणों (illiquid loans) को आसानी से नकदी बनाया जा सकता था । तेजी से सफलता मिलने पर एमबीएस, सीडीओ, सीडीएस जैसी व्युत्पन्नों का प्रयोग जोखिम को कम करने के लिये नहीं बल्कि ज्यादा जोखिम लेकर ज्यादा पैसा बनाने के लिये होने

लगा। ज्यादा से ज्यादा पैसे बनाने के लालच से जोखिमों के आकलन को नज़रअंदाज किया गया तथा मूल बंधकों के विनियमन में ढीलापन आया। परिणामस्वरूप, पूरी प्रणाली सट्टा और जुआ की चपेट में आ गई। भावी संकट के पदचाप से आँख मूँदे हुए निवेशक बैंकों और वित्तीय संस्थानों को ज्यादा से ज्यादा कमाई के तर्कहीन लालच ने वित्तीय दिवालियापन के कगार तक पहुँचा दिया।

अशोध्य ऋण और ऋण बीमा कारोबार डेरिवेटिव्स से शुरू हुए दिवालियापन और असफलता के कारण वित्तीय संकट से जूझते हुए बैंकों के पास कोई रास्ता नहीं बचा था और वे अर्थव्यवस्था से तेजी से पैसे निकालने में लग गए ताकि फिर से अपनी पूँजी बना सकें । अमेरिका और यूरोप के बड़े वित्तीय संस्थान ऋण संकट का सामना करने लगे । सितंबर 2008 में लीमन ब्रदर्स टूट गया। लीमन की ऋण प्रतिभूतियों में एक बड़े म्यूचुअल फंड का एक्सपोजर काफी ज्यादा था । निवेशकों ने अपने पैसे निकालने शुरू कर दिए और एक समय आया जब सिर्फ 2 घंटे में मुद्रा बाजार से 550 बिलियन रुपये का आहरण हो गया ।

स्व-नियंत्रण एक ऐसी मानसिक दशा है जो मानसिक तत्परता के रूप में हमारे मस्तिष्क द्वारा लिए गए निर्णयों को प्रभावित करता है। मानसिक तत्परता की यह मानसिक प्रक्रिया धीरे-धीरे विकसित होकर तथा हमारी सोच और आदतों में शुमार होकर हमारे जीवन के फैसलों पर गहरा असर डालती है।

## उपभोक्तावाद, बाजारवाद तथा विज्ञापन की चकाचौंध : स्व-नियंत्रण की कमी

इस संकट के पीछे बड़े पैमाने पर दिए गए उपभोक्ता ऋणों की भी बड़ी भूमिका थी। जीवन की सुख-सुविधाएँ बढ़ाने वाली इलेक्ट्रॉनिक वस्तुओं, दूरसंचार और सूचना प्रौद्योगिकी से जुड़ी उपभोक्ता वस्तुओं की बाढ़ ने उपभोक्तावाद, बाजारवाद तथा विज्ञापन की चकाचौंध से प्रभावित होने की प्रवृत्ति को पूरा बढ़ावा दिया जिसने आम आदमी को एक उपभोक्ता में बदल दिया जिसका अपनी बढ़ती इच्छाओं पर उतना स्व-नियंत्रण नहीं रह गया था। स्व-नियंत्रण एक ऐसी योग्यता होती है जिसके माध्यम से मनुष्य परिस्थिति को समझ कर दो विकल्पों में से एक का चयन कर पाता है और यह तय कर पाता है कि कौन-सा विकल्प बेहतर है, बजाय इसके कि वह किसी लोभ के वशीभूत होकर किसी लुभावने विकल्प को चुन ले। वर्तमान आवासीय बुलबुले के मामले में भी आवास खरीदने वाले उस स्व-नियंत्रण को अपनाने में असफल रहे क्योंकि यह जानते हुए भी कि वे उनकी कीमत को वहन नहीं कर सकते हैं, बड़े-बड़े आवासों की खरीद कर ली । ठीक वैसे ही अपनी विलासिता और सुख सुविधा बढ़ाने के उद्देश्य से बड़े पैमाने पर लिए गए उपभोक्ता ऋणों के मामले में भी लोग उस स्व-नियंत्रण को अपनाने में असफल रहे क्योंकि यह जानते हुए भी कि उस ऋण को चुकाना उनके लिए आसान नहीं है, अपने पर नियंत्रण नहीं रख पाए तथा आसान शर्तों पर मिलने वाले ऋणों को अपनी विलासिता और सुख सुविधाओं की चीजें एकत्र करने में खर्च की। इसी प्रकार उधारदाता भी स्व-नियंत्रण को अपनाने में असफल रहे क्योंकि उन्होंने बैंक के छोटी अवधि के फायदे के उद्देश्य से कमजोर मॉर्गेजों को चुना।

उपभोक्तावादी सोच ने बचत के मनोविज्ञान से ज्यादा उपभोक्ता मनोविज्ञान को बढ़ावा दिया। चैपमैन विश्वविद्यालय में अर्थशास्त्र के प्रोफेसर तथा 2002 के नोबेल पुरस्कार विजेता वरनन एल.स्मिथ द्वारा द वॉल स्ट्रीट जर्नल के एक लेख में लिखी गई पंक्तियाँ उस उपभोक्तावादी मनोवृत्ति और वित्तीय संकट के संबंध को व्यक्त करती हैं – ''कोई वित्तीय संकट जो उपभोक्ता ऋण -विशेष रूप से संपत्ति आय वितरण के निचले छोर पर केंद्रित उपभोक्ता ऋण से उत्पन्न होता है, वह तेजी से और पूरी ताकत से वित्तीय प्रणाली में फैल सकता है। ऐसा प्रतीत होता है कि हम उपभोक्ता ऋण की दूसरी महामंदी (क्रैश) का, विशाल उपभोक्ता रंगरली (consumption binge) के अंत का साक्षी बन रहे हैं।''

स्व-नियंत्रण एक ऐसी मानसिक दशा है जो मानसिक तत्परता के रूप में हमारे मस्तिष्क द्वारा लिए गए निर्णयों को प्रभावित करता है। मानसिक तत्परता की यह मानसिक प्रक्रिया धीरे-धीरे विकसित होकर तथा हमारी सोच और आदतों में शुमार होकर हमारे जीवन के फैसलों पर गहरा असर डालती है। इसका कारण है हमारे मस्तिष्क के एक प्रमुख भाग प्रिफ्रॉन्टल कॉर्टेक्स का धीमा विकास, जो मनुष्य के मनोवेगों और परितुष्टि की संवेदनाओं पर नियंत्रण रखता है। हमारे मस्तिष्क का यह भाग

मस्तिष्क के अन्य भागों की अपेक्षा धीमी गति से परिपक्व होता है। पेन्सिल्वानिया विश्वविद्यालय में मनोविज्ञान की प्रोफेसर एन्जेला ली डकवर्थ की पंक्तियाँ मनुष्य के संवेगात्मक विकास के इस विशिष्ट पहलू को इस तरह स्पष्ट करती हैं ''जब मनुष्य का जन्म होता है तो उसके मस्तिष्क का सब कोर्टिकल क्षेत्र तथा उसकी मस्तिष्क नलिका लगभग ऑनलाइन रहते हैं, यदि जन्म के समय नहीं तो जन्म के तुरंत बाद वे ऑनलाइन हो जाते हैं, इसलिए इस क्षेत्र में संवेग तथा प्रेरणा सही ढंग से नियंत्रण में रहकर कार्य करते हैं। लेकिन मस्तिष्क का प्रीफ्रॉन्टल कॉर्टेक्स उस समय तक पूरी तरह विकसित नहीं हो पाता है जब तक व्यक्ति अच्छी तरह वयस्क लगभग 20 वर्ष तक का नहीं हो जाता । यह भी संभव है कि इसके लिए उसे 50 वर्ष तक की उम्र तक भी जाना पड़ सकता है। यहाँ विकास की मंद गति एक समस्या है, जहाँ हमारे अपने संवेग तथा हमारी अपनी प्रेरणाएँ तो होती हैं, लेकिन इसकी परिपक्वता के लिए हमें स्वयं के 25 वर्ष तक के होने का इंतजार करना पड़ता है, जब तक कि फ्रॉन्टल कॉर्टेक्स पूर्ण आकार नहीं ग्रहण कर लेता है तथा वह चेतना के निचले स्तर की उन इच्छाओं को वास्तविक रूप में नियंत्रित करना शुरू नहीं कर देता है।'' इस प्रकार मनुष्य के इस संवेगात्मक विकास से उसमें आत्म अनुशासन और स्व नियंत्रण की प्रवृत्ति विकसित होती है, जिसका उसके व्यक्तित्व और उसके निर्णयों पर गहरा असर पड़ता है। स्व नियंत्रण के मनोविज्ञान की बेहतर समझ व्यापक परिप्रेक्ष्य में मनुष्य के समग्र आर्थिक -सामाजिक जीवन तथा शासन -व्यवस्था की नीतियों में जीवन की वास्तविकताओं के प्रति उचित दृष्टि विकसित करने के लिए सही दिशा में अभिप्रेरित करती है। इस स्व नियंत्रण की कमी ने वर्तमान आर्थिक संकट में एक प्रमुख मनोवैज्ञानिक कारक के रूप में अपनी भूमिका निभायी।

## संकट के गहराने पर आकस्मिक भय (पैनिक) और विश्वास टूटने का दौर

बुलबुलों के फूटने और बड़े-बड़े वित्तीय संस्थानों और बैंकों के डूबने के साथ ही आर्थिक संकट गहराने लगा। स्टॉक मार्केट के धराशायी होने, निवेशकों के पैसे डूबने तथा बड़ी मात्रा में लोगों की नौकरियाँ जाने का लोगों के मन पर गहरा असर हुआ। आर्थिक संकट का यह दौर एक आकस्मिक भय (पैनिक) और इस आशंका में कि अब इस बुरे दौर का अंत संभव नहीं है में परिणत होता गया। बैंकों से आहरण के लिए बेतहाशा भीड़ जुटने लगी। बैंकों के पास चलनिधि की कमी और उनके दिवालियापन की स्थिति ने लोगों को मनोवैज्ञानिक रूप से ज्यादा प्रभावित किया और वे, क्या सुरक्षित है और क्या असुरक्षित - इसका सामान्य अनुमान लगाने में भी भ्रम की स्थिति में रहने लगे। भविष्य की योजनाओं के बारे में सोचते समय अब पहले की तरह आर्थिक अनुमानों को जगह देना असहज और असुरक्षित लगने लगा। इस संकट ने निवेशकों का विश्वास तो तोड़ा ही, सरकार की आर्थिक नीतियों और बाजार के संघटकों की भूमिका पर भी सवालिया निशान लगा दिए। आर्थिक संकट के प्रति ऐसी प्रतिक्रिया सामान्य आर्थिक परिवर्तनों के बजाय मनुष्य के मनोवैज्ञानिक बदलावों का प्रतिफल ज्यादा था। जिस प्रकार संकट के पहले लोगों ने अतिरेक के वशीभूत होकर अपने निवेशों के डूबने तथा अपने आर्थिक निर्णयों के नकारात्मक परिणामों की संभावना पर सोचने तक की जरूरत नहीं समझी, ठीक उसी प्रकार संकट के बाद अतिरेक के वश में आकर इन नकारात्मक परिणामों को सामान्य रूप में लेने के बजाय, इस संकट के, इस आर्थिक विपदा के कारणों को समझने, उस पर ध्यान देकर उससे उबरने की कोशिश करने के बजाय आकस्मिक भय, अनिर्णय तथा भ्रम के शिकार होकर इस आर्थिक संकट को सदमा भरे अनुभव का रूप दे दिया। बहुत सारे मामलों में तो लोगों द्वारा मनोचिकित्सकों से परामर्श लेने के मामले भी सामने आए। इससे इस संकट की गंभीरता तथा इसके परिणामों का लोगों पर पड़े मनोवैज्ञानिक प्रभावों का संकेत मिलता है।

कुल मिलाकर देखा जाए तो स्पष्ट है कि इस विश्वव्यापी आर्थिक संकट के पीछे विभिन्न आर्थिक कारणों के साथ ही कुछ मनोवैज्ञानिक कारक भी थे। मनुष्य के जीवन की प्रत्येक गतिविधि में उसकी मानसिकता, उसकी सोच, उसके दृष्टिकोण और उसके व्यक्तित्व का बहुत बड़ा हाथ होता है। दूसरे शब्दों में मनुष्य का मनोविज्ञान उसके जीवन में हर कदम पर उसे प्रभावित करता है। इस आर्थिक संकट में भी मनुष्य के मनोविज्ञान की एक निश्चित भूमिका थी। प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक सिंग्मंड फ्रायड के 'Structural model of the psyche' के आधार पर

यदि इस संकट के मनोवैज्ञानिक पहलुओं की समीक्षा की जाए , जिसमें उन्होंने मनुष्य के मानसिक भागों की व्याख्या करते हुए उसे तीन भागों- Id, Ego तथा Super ego में बाँटा है, तो यह कहा जा सकता है कि इस संकट में मनुष्य के मन के Id भाग की मनोवृत्तियों का हाथ अपेक्षाकृत ज्यादा था। फ्रायड ने Id, Ego तथा Super ego का विश्लेषण करते हुए Id तो 'Pleasure principle' से अभिप्रेरित होने तथा Ego को 'Reality principle' से अभिप्रेरित होने की बात कही है। Id मनुष्य के व्यक्तित्व की संरचना में मूल मनोवृत्तियों के रूप में विद्यमान होता है, जो 'Pleasure principle' से निर्देशित होता है। 'Pleasure principle' में पीड़ा और अप्रसन्नता देने वाली सोच को टाला जाता है तथा आनन्द और सुख देने वाली सोच इसमें प्रबल होती है। इसमें वास्तविकताओं पर ध्यान न देकर सुख और परितुष्टि पर अधिक ध्यान रहता है। इसके माध्यम से मनुष्य अपनी जैविक और मनोवैज्ञानिक जरूरतों की संतुष्टि खोजने की चेष्टा करता है। इसके विपरीत Ego मनुष्य के व्यक्तित्व की संरचना में सुरक्षात्मकता, संकल्पनात्मकता, बौद्धिक संज्ञानात्मकता, वास्तविकता और कार्यों के निष्पादन की क्षमता के रूप में विद्यमान होता है। सचेतन जागरुकता Ego की मुख्य विशेषता होती है। इसी से Ego 'Reality principle' से निर्देशित होता है, जिसमें मात्र सुख और आनन्द के प्रति आकर्षण से अधिक जीवन और परिस्थितियों के प्रति वास्तविक दृष्टिकोण पर अधिक बल होता है। यह मनुष्य में तर्कसंगतता और वास्तविकता पर आधारित सोच विकसित करने का कार्य करता है । Ego में भी आनन्द और सुख की जगह होती लेकिन उस आनन्द की प्राप्ति में वास्तविकता का पूरा ध्यान रखा जाता है तथा उसमें वास्तविक जीवन की बाधाओं और अप्रसन्नताओं को सचेत होकर अपनाने तथा उनका सामना करने की प्रवृत्ति ज्यादा होती है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि वर्तमान विश्वव्यापी आर्थिक संकट के पीछे का मनोविज्ञान मनुष्य का फ्रायड के 'Pleasure principle' से निर्देशित होना ज्यादा था बजाय 'Reality principle' से निर्देशित होकर जीवन और परिस्थितियों की वास्तविकता के आधार पर पर निर्णय लेने के।

लेकिन इसके साथ-साथ यह भी सच है कि इस संकट ने जहाँ आर्थिक क्षेत्र में अनेक नकारात्मक पहलुओं को उजागर किया है वहीं इसने समस्त विश्व को एक नई राह भी दिखाई है- संयम, बचत और उचित तथा संतुलित आर्थिक निर्णयों की राह, विनियमों के पालन की राह तथा आधारहीन अपेक्षाओं के बजाय वास्तविकता को ध्यान में रखते हुए, कारोबार तथा निवेश से संबंधित विभिन्न जोखिमों के सही-सही आकलन पर बल देने की राह और हर कदम पर सुनिश्चित बचाव व्यवस्था बनाए रखने की राह और सबसे बढ़कर अपनी कमजोरियों की पहचान और भविष्य में उनसे बचने के लिए अपेक्षित चिंतन की राह। हमें इस संकट के परिणामों से सबक लेते हुए इसे सकारात्मक रूप में लेना हमारे लिए ज्यादा हितकर होगा। जिस प्रकार विभिन्न मनोवैज्ञानिक पहलू इस संकट के लिए उत्तरदायी रहे हैं उसी तरह इससे उबरने में भी मनुष्य के मनोवैज्ञानिक पहलू ही उसकी ज्यादा मदद कर सकते हैं। उसका धैर्य, उसका संयम, उसकी सहन शक्ति, प्रत्येक पराजय के बाद नये जज़्बे के साथ नयी जीत की ओर बढ़ाए गए कदम की नयी सोच और जीवन की प्रत्येक स्थिति से निपटने की उसकी सुदृढ़ता ही उसे इस संकट से उबारने में सहायक सिद्ध होगी जैसा कि मानव सभ्यता के विकास के लंबे इतिहास में हमेशा होता आया है।

**उचित विनियमन और सजगता जोखिम को एकदम कम कर देती है।**

# भारत-वैश्विक वित्तीय संकट के प्रभाव का प्रबंधन*

● डॉ. डी. वी. सुब्बाराव
गवर्नर
भारतीय रिज़र्व बैंक

## भूमिका

पिछले एक वर्ष से भी कम अवधि में पिछले अक्तूबर से भारतीय अर्थव्यवस्था में जो हुआ उसका अनुमान लगाना कठिन था। मुझे याद है कि पिछले साल की इस अवधि में बार-बार पूछे जाने वाले प्रश्न वे थे कि वे कौनसे कारक हैं जिन्होंने भारत को उच्च वृद्धि पथ पर रखा और इस संबंध में हम क्या कर सकते है? आज बार-बार पूछे जानेवाले प्रश्न वे हैं कि हम उच्च वृद्धि पथ पर कब और कैसे वापस पहुंचेगें? बार-बार पूछे जाने वाले प्रश्नों में यह तेज परिवर्तन भारत पर वैश्विक वित्तीय संकट के प्रभाव को संक्षेप में दर्शा देता है।

## वैश्विक परिदृश्य

वैश्विक आर्थिक परिदृश्य पिछली तिमाही में तेजी से खराब हुआ है। मंदी की गंभीरता के चिन्ह के रूप में आइएमएफ ने पुनः 2009 में वैश्विक वृद्धि के अपने अनुमान को (-)1.0 से (-)0.5 प्रतिशत के दायरे में नीचे निर्धारित किया है जो कि 60 वर्षों में पहला वैश्विक संकुचन है। अमरीका, यूरोप और जापान जैसी सभी विकसित अर्थव्यवस्थाओं के तेज गति से मंदी में जाने के कारण इस संकट का वित्तीय क्षेत्र से वास्तविक क्षेत्र में हुआ प्रसार अविस्मरणीय और समग्र रहा है। हाल की घटनाएं बतलाती हैं कि संकुचनकारी शक्तियां प्रभावी है: मांग घट गई है, उत्पादन घट रहा है, नौकरियां जाने की घटनाएं बढ़ रही है और ऋण बाजार सीमित बना हुआ है। अधिक चिंता की बात यह है कि विश्व व्यापार- वह मुख्य मार्ग जिसके माध्यम से मंदी आगे बढ़ेगी- 2009 में 2.8 प्रतिशत संकुचित होने का अनुमान है जो कि पिछले 80 वर्षों में सबसे तेज संकुचन होगा।

विश्व भर में नीति निर्माण का कार्य स्पष्ट रूप से स्वरूपहीन क्षेत्र है। अनेक देशों की सरकारों और केंद्रीय बैंकों ने इस संकट का उत्तर व्यापक, आक्रामक और अपारंपारिक उपायों से दिया है। इस संबंध में व्यापक चर्चा हो रही है कि ये उपाय पर्याप्त और उचित हैं या नहीं और वे परिणाम दिखलाना कब शुरू करेंगे। इस पर भी अलग से वाद-विवाद हो रहा है कि अल्पावधि के एकाधिकार से प्रेरित रुल बुक को छोड़ देने से मध्यावधि की स्थिरता के साथ किस प्रकार से समझौता किया जा रहा है। फिर भी, यह बात वाद-विवाद से परे है कि 2008/09 की यह भयानक मंदी और गहरी होने जा रही है और इसमें सुधार होने में पहले की सोच से अधिक समय लगेगा।

## डिकपलिंग कल्पना और उभरती अर्थव्यवस्थाएं

'डिकपलिंग कल्पना' के विपरीत उभरती अर्थ-व्यवस्थाओं पर भी उक्त संकट का प्रभाव हुआ है। डिकपलिंक कल्पना जो कि एक वर्ष पहले तक भी बुद्धिवादी रूप से चल रही थी, उसमें यह धारणा थी कि विकसित अर्थव्यवस्थाओं में मंदी आने के बावजूद उभरती अर्थव्यवस्थाएं अपने पर्याप्त विदेशी मुद्रा भंडार, सुधरे हुए नीतिगत ढांचे, मजबूत कारपोरेट तुलन पत्र और तुलनात्मक रुप से सुदृढ़ बैंकिग क्षेत्र के कारण मंदी से बची रहेंगी। तेजी से वैश्विकृत हो रहे विश्व में डिकपलिंग कल्पना कभी भी पूर्णतः अनुकरणीय नहीं थी। पिछले कुछ महीनों की घटनाओं- पूंजी प्रवाह में प्रतिगमन, सरकारी और कंपनी ऋण पर विस्तार में तेज वृद्धि और तेज मुद्रा मूल्यह्रास-को देखते

* डॉ.डी.वी. सुब्बाराव, गवर्नर, भारतीय रिज़र्व बैंक द्वारा 26 मार्च 2009 को भारतीय उद्योगों के राष्ट्रीय सम्मेलन और वार्षिक सत्र में दिया गया उक्त भाषण वैश्विक वित्तीय संकट के भारत पर पड़ रहे प्रभाव का प्रबंधन करने की दिशा में किए गये प्रयासों से पाठकों को अवगत कराने एवं उनके ज्ञानवर्धन हेतु पत्रिका में दिया जा रहा हैं।
स्रोत : भारतीय रिज़र्व बैंक मासिक बुलेटिन, अप्रैल 2009 से साभार।

हुए डिकपलिंग कल्पना पुरानी हो गई है। इस अनुमान को अपनाते हुए की वैश्विकृत विश्व में कोई भी देश एक टापू नहीं हो सकता, उभरती अर्थव्यवस्थाओं की वृद्धि संभावना विभिन्न देशों में पर्याप्त अंतर के साथ क्रमिक वित्तीय संकट से धूमिल हो गई।

### ध्यान दिए जाने वाले प्रश्न

भारत पर भी उक्त संकट का परिणाम हमारी सोच से ज्यादा हुआ है। इसके मद्देनजर, मैं निम्नलिखित प्रश्नों पर ध्यान देने का प्रस्ताव करता हूँ.

(i) भारत इस संकट की चपेट में क्यों आया?

(ii) भारत पर इस संकट का कैसा प्रभाव हुआ है?

(iii) हमने इस चुनौती का सामना किस प्रकार से किया है?

उक्त तीन प्रश्नों के उत्तर चौथे प्रश्न का आधार तैयार करते हैं और यह प्रश्न शायद ज्यादा महत्वपूर्ण है।

(iv) भारत के लिए क्या संभावना है?

### भारत इस संकट की चपेट में क्यों आया?

जितनी शक्ति से वैश्विक संकट ने भारत को प्रभावित किया उससे अनेक लोग परेशान हो गए। यह परेशानी दो विश्लेषणात्मक तत्वों से उभरती है।

पहला विश्लेषण कुछ इस प्रकार है। भारतीय बैंकिग प्रणाली का सब-प्राईम बंधक आस्तियों या असफल संस्थाओं के प्रति कोई प्रत्यक्ष एक्सपोज़र नहीं था। इसकी बहुत कम तुलनपत्रेतर गतिविधियां थीं या प्रतिभूतिकृत आस्तियां थीं। वस्तुत: हमारे बैंक मजबूत बने हुए हैं। अत: पहेली यह है कि भारत इस संकट की चपेट में कैसे आ गया जबकि इस संकट के मूल कारणों से भारत का कुछ खास संबंध नहीं था।

उक्त परेशानी का दूसरा कारण यह है कि भारत की हालिया वृद्धि का मुख्य कारण देशी उपभोग और देशी निवेश रहा है। वणिक माल के निर्यात से नापी गई बाह्य मांग हमारी जीडीपी के 15 प्रतिशत से भी कम है। तब प्रश्न यह है कि जब भारत की निर्भरता बाह्य मांग पर इतनी कम है तो वैश्विक मंदी होने के बावजूद भारत पर उसका असर क्यों होना चाहिए?

परेशानी के उक्त दोनों कारणों का उत्तर वैश्विकरण में है। मैं इसे स्पष्ट करना चाहता हूँ। पहला, वैश्विक अर्थव्यवस्था में पिछले दशक में भारत का समन्वय तेजी से बढ़ा है। विश्व में समन्वय के लिए मात्र निर्यात से अधिक प्रयासों की आवश्यकता होती है। वैश्विकरण की सामान्य नाप के अनुसार जीडीपी के अनुपात के रूप में भारत का दोतरफा व्यापार (वणिक माल निर्यात+आयात) एशियाई संकट के वर्ष अर्थात 1997-98 के 21.2 प्रतिशत से बढ़कर 2007-08 में 34.7 प्रतिशत हो गया।

दूसरा,भारत का विश्व के साथ वित्तीय समन्वय अधिक नहीं तो कम-से कम भारत के व्यापार वैश्विकरण जितना गहरा तो रहा ही है। यदि हम वैश्विकरण की विस्तारित नाप लेते हैं अर्थात जीडीपी के प्रति कुल बाह्य लेनदेन (सकल चालू खाता प्रवाह+सकल पूंजी प्रवाह) का अनुपात 1997-98 के 46.8 प्रतिशत से दुगने से भी अधिक बढ़कर 2007-08 में 117.4 प्रतिशत हो गया।

महत्वपूर्ण रूप से, भारतीय कंपनी क्षेत्र की बाह्य निधीयन तक पहुंच पिछले पांच वर्षों में काफी बढ़ गई है। इस बात को कुछ आंकड़े स्पष्ट कर देंगे। 2003-08 के पांच वर्षों की अवधि में भारत की जीडीपी में कंपनी निवेश का हिस्सा 9 प्रतिशत अंक बढ़ा। कंपनी बचत ने इसके आधे से कुछ ज्यादा का वित्तपोषण किया किंतु शेष वित्तपोषण का बढ़ा हिस्सा बाह्य स्त्रोतों से आया। जहां निधी देशी तौर पर उपलब्ध थी, वहीं विदेशी निधीयन देशी वित्तपोषण की तुलना में कम महंगा दिख रहा था। दूसरी और, चलनिधि से भरे हुए वैश्विक बाजार में और भारतीय वृद्धि की संभावना की स्पष्टता के कारण विदेशी निवेशक और उधारदाता जोखिम उठाने और भारत में निवेश का वित्तपोषण करने के लिए तैयार थे। उदाहरण के लिए, पिछले वर्ष (2007-08) भारत को जीडीपी के 9 प्रतिशत से अधिक की राशि का पूंजी अंतर्वाह प्राप्त हुआ जबकि भुगतान संतुलन में चालू खाते का घाटा जीडीपी के मात्र 1.5 प्रतिशत ही था। चालू खाते के घाटे के अतिरिक्त ये पूंजी प्रवाह कंपनियों के बाह्य वित्तपोषण का महत्व

और भारतीय वित्तीय समन्वय की गहराई सिद्ध करते हैं।

अत: मंदकारी कारकों के बावजूद भारत पर उक्त संकट का असर होने का कारण भारत का वैश्विक अर्थव्यवस्था के साथ तेजी से बढ़ता हुआ समन्वय ही है।

## भारत पर इस संकट का कैसा प्रभाव हुआ है?

इस संकट का संसर्ग भारत में सभी माध्यमों–वित्तीय माध्यम, वास्तविक माध्यम और महत्त्वपूर्ण रूप से जैसा कि सभी वित्तीय संकटों में होता है, विश्वास माध्यम से आया।

सबसे पहले हम वित्तीय माध्यम पर नजर डालेंगे। भारत के वित्तीय बाजार– इक्विटी बाजार, मुद्रा बाजार, विदेशी मुद्रा बाजार और ऋण बाजार– अनेक दिशाओं से दबाव में आ गए थे। पहला, वैश्विक चलनिधि की कमी के परिणाम के रूप में भारतीय कंपनियों का विदेशी वित्तपोषण कम होने लगा जिससे वे अपनी ऋण मांग देशी बैंकिंग क्षेत्र की और अंतरित करने के लिए बाध्य हो गए। इसके अलावा, स्थानापन्न वित्तपोषण की अपनी खोज में कंपनियों ने देशी मुद्रा बाजार, पारस्परिक निधियों से अपने निवेश वापस ले लिए; परिणामस्वरूप, गैर–बैंकिंग वित्तीय कंपनियां, जहां पारस्परिक निधियों ने अपनी निधियों का बड़ा हिस्सा निवेश किया था, शोधन दबाव में आ गईं। विदेशी वित्तपोषण के देशी वित्तपोषण द्वारा इस प्रतिस्थापन से मुद्रा बाजार और ऋण बाजार दोनों ही दबाव में आ गए। दूसरा, वैश्विक अधोगामी प्रक्रिया के एक भाग के रूप में पूंजी प्रवाह की प्रतिगामिता के कारण विदेशी मुद्रा बाजार दबाव में आ गए। इसके साथ–साथ, कंपनियां स्थानीय रूप से जुटाई गई निधि को अपने विदेशी दायित्व पूरे करने के लिए विदेशी मुद्रा में परिवर्तित कर रही थीं। ये दोनों कारक रुपए पर अधोगामी दबाव बनाते हैं। तीसरा, रुपए की अस्थिरता के प्रबंधन के लिए रिज़र्व बैंक द्वारा विदेशी मुद्रा बाजार में किए गए हस्तक्षेप के कारण चलनिधि की स्थिति और भी तंग हो गई।

अब मैं वास्तविक माध्यम पर आता हूँ। यहां, वैश्विक संकेतों का देशी अर्थव्यवस्था में अंतरण एकदम सीधा रहा है जो कि निर्यात मांग में गिरावट के माध्यम से हुआ था। अमरीका, यूरोपीय संघ और मध्य–पूर्व, जिनके साथ भारतीय माल और सेवा व्यापार का तीन–चौथाई भाग जुड़ा हुआ है, एक जैसी मंदी की चपेट में आ गए। मंदी गहरी हो जाने और वित्तीय सेवाओं के फर्म–आउटसोर्सिंग सेवाओं के पारंपारिक रूप से मुख्य उपयोगकर्ता–पुनर्गठित होने के कारण सेवा निर्यात वृद्धि निकट भविष्य में कम होने की संभावना है। मध्य–पूर्व द्वारा कच्चे तेल की कम कीमतों से समायोजन करने और विकसित देशों में मंदी आने के कारण प्रवासी कामगारों के विप्रेषण में भी कमी आने की संभावना है।

अंतरण के उक्त वित्तीय और वास्तविक माध्यमों के अलावा यह संकट विश्वास माध्यम से भी फैलता है। वैश्विक वित्तीय बाजारों, जो विश्वास के संकट के कारण सीमित हो गए थे, के एकदम विपरीत भारतीय वित्तीय बाजार व्यवस्थित रूप से कार्यरत थे। इसके अलावा, हमारे बैंकों ने उधार देना जारी रखा। किंतु, सितंबर 2008 के मध्य में लीमन असफलता के तुंरत बाद की अवधि की वैश्विक चलनिधि की तंग हालत, ऋण चक्र में परिवर्तन के शीर्ष पर आए अनुसार, ने वित्तीय प्रणाली जोखिम अरुचि बढ़ा दी ओर कुछ बैंकों को उधार के बारे में सावधान कर दिया।

उक्त स्पष्टीकरण का उद्देश्य यह दिखलाना है कि वैश्विक वित्तीय क्षेत्र की समस्याओं का भाग न होते हुए भी भारत विदेशी आघातों और देशी भेद्‌ता के बीच प्रतिकूल प्रतिसूचना स्थिति के कारण उक्त संकट से किस प्रकार प्रभावित हुआ।

## हमने इस चुनौती का सामना किस प्रकार से किया है?

अब मैं इस बात पर आता हूँ कि हमने इस संकट का सामना कैसे किया। सितंबर 2008 के मध्य में लीमन ब्रदर्स की असफलता के तुरंत बाद कई अन्य बड़ी वित्तीय संस्थाएं भारी दबाव में आ गई थीं। इसस विश्व के अनेक वित्तीय बाजारो में अनिश्चितता और अस्थिरता आ गई। जैसा कि मैंने ऊपर स्पष्ट किया है, यह संक्रमण उभरती अर्थव्यवस्थाओं और भारत तक भी फैल गया। सरकार और भारतीय रिज़र्व बैंक दोनों ने इस चुनौती का सामना घनिष्ठ समन्वय और परामर्श करके किया। सरकार के प्रतिसाद में मुख्य बल राजकोषीय उत्प्रेरण पर था जबकि रिज़र्व बैंक की कारवाई में मौद्रिक सहायता और प्रतिचक्रीय विनियामक उपाय शामिल थे।

## मौद्रिक नीतिगत प्रतिसाद

रिज़र्व बैंक के नीतिगत प्रतिसाद का लक्ष्य उक्त संक्रमण को बाहर से दबाना था ताकि देशी मौद्रिक और ऋण बाजार सामान्य रूप से कार्यरत रहें और चलनिधि का दबाव शोधन क्षमता को प्रभावित न कर पाए। विशेष तौर पर, हमने तीन उद्देश्यों को लक्ष्य बनाया: पहला, रुपया चलनिधि की स्थिति अनुकूल बनाए रखना: दूसरा, विदेशी मुद्रा चलनिधि बढ़ाना; और तीसरा, एक ऐसा नीतिगत ढांचा बनाए रखना जो ऋण सुपुर्दगी को ठीक रखेगा ताकि वृद्धि की कमी को रोका जा सके। इससे पिछली अवधि के उच्चतम स्फीतिकारी दबाव के प्रतिसाद में मौद्रिक कड़ाई से घूमकर रिज़र्व बैंक का नीतिगत रुझान कम होते स्फीतिकारी दबाव और चालू चक्र में कम वृद्धि के प्रतिसाद में मौद्रिक शिथिलता पर आ गया। उक्त उद्देश्यों को पूरा करने के हमारे प्रयास सितंबर 2008 के मध्य में प्रारंभ हुए अनेक नीतिगत पैकेजों के रूप में आए जो कभी-कभी अनपेक्षित वैश्विक घटनाओं और कभी-कभी भारतीय बाजारों पर संभाव्य वैश्विक घटनाओं के प्रभाव की अपेक्षा के प्रतिसाद के रूप में थे।

अन्य केंद्रीय बैंकों जैसे ही हमारे नीतिगत पैकेजों में पारंपरिक और अपारंपरिक दोनों ही उपाय शामिल थे। पारंपरिक पक्ष में हमने नीतिगत ब्याज दरें बड़ी मात्रा में और तेजी से कम कीं, केंद्रीय बैंक द्वारा अवरुद्ध बैंक आरक्षित निधि की मात्रा घटाई और निर्यात ऋण के लिए पुनर्वित्त सुविधा का विस्तार किया और उसे उदार बनाया। विदेशी मुद्रा चलनिधि के प्रबंधन पर केंद्रित उपायों में अनिवासी भारतीयों की विदेशी मुद्रा जमाराशियों पर उच्चतम ब्याज दर के ऊर्ध्वमुखी समायोजन, कंपनियों के लिए बाह्य वाणिज्यिक उधार व्यवस्था को पर्याप्त रूप से शिथिल करना और गैर-बैंकिंग वित्तीय कंपनियों तथा आवासीय वित्त कंपनियों को विदेशी उधार तक पहुंच देना शामिल है।

भारतीय रिज़र्व बैंक द्वारा उठाए गए अनेक अपारंपरिक कदमों में से महत्त्वपूर्ण इस प्रकार है: भारतीय बैंकों को उनकी अल्पावधि विदेशी निधीयन आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए उन्हें रुपया-डॉलर विनिमय सुविधा देना, गैर-बैंकिंग वित्तीय कंपनियों की सहायतार्थ एक्सक्लूजीव रिफाइनान्स विंडो की व्यवस्था और उधारयोग्य उपलब्ध स्रोतों को लघु उद्योगों, आवास तथा निर्यात के लिए दिए गए ऋण के वित्तपोषण के लिए शीर्ष वित्तीय संस्थाओं को देना। आस्तियों को अधोमूल्यित करने वाले घटनाक्रम को दर्शाते हुए हमने 2006 में लागू किए गए प्रति-चक्रीय विनियामक उपायों को उलट दिया।

## सरकारी राजकोषीय उत्प्रेरण

पिछले पांच वर्षों में भारत में केंद्र और राज्य दोनों सरकारों ने भूतकालीन राजकोषीय अधिकता को उलटने के गंभीर प्रयास किए हैं। इन उपायों में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण राजकोषीय जवाबदेही और बजट प्रबंधन अधिनियम (एफआरबीएम) था जिसने राजकोषीय स्थिरता के लिए क्रमबद्ध रोड मैप सुनिश्चित कर दिया।

तथापि, इस संकट की गहराई और उसके असाधारण प्रभाव ने प्रति-चक्रीय सार्वजनिक व्यय की आवश्यकता स्पष्ट रूप से दिखा दी। तदनुसार, केंद्र सरकार ने राजकोषीय लक्ष्यों से छूट प्राप्ति के लिए एफआरबीएम अधिनियम के आपातकालीन प्रावधानों का सहारा लिया और दिसंबर 2008 तथा जनवरी 2009 में दो राजकोषीय उत्प्रेरण पैकेज लाए। इन राजकोषीय उत्प्रेरण पैकेजों की संयुक्त राशि जीडीपी का लगभग 3 प्रतिशत थी और इसमें अतिरिक्त सार्वजनिक व्यय, बुनियादी सुविधाओं पर व्यय के लिए सरकारी गारंटीयुक्त निधि, अप्रत्यक्ष करों में कटौती, व्यष्टि और लघु उद्यमों के लिए विस्तारित गारंटी कवर और निर्यातकों के लिए अतिरिक्त सहायता शामिल थे। ये उत्प्रेरक पैकेज ग्रामीण गरीब लोगों के लिए पहले से ही घोषित विस्तारित सुरक्षा नेट, कृषि ऋण माफी पैकेज और सरकारी स्टाफ के लिए वेतन वृद्धि के शीर्ष पर आ गए और इन सब से मांग उत्प्रेरित होने की संभावना है।

## मौद्रिक उपायों का प्रभाव

संयुक्त रूप से, सितंबर 2008 के मध्य में प्रारंभ किए गए उपायों ने सुनिश्चित किया कि भारतीय वित्तीय बाजार उचित पद्धति से कार्यरत रहें। इन उपायों के माध्यम से वित्तीय प्रणाली को संभाव्य रूप से उपलब्ध प्राथमिक चलनिधि की कुल राशि लगभग 390,000 करोड़ रुपये या जीडीपी का 7 प्रतिशत है। इस पर्याप्त सुगमता ने नवंबर 2008 के मध्य से शुरू हुई

अनुकूल चलनिधि की स्थिति सुनिश्चित की है जो कि अनेक संकेतकों से सिद्ध होती है जिनमें भारांकित औसत मांग मुद्रा दर, एक दिवसीय मुद्रा बाजार दर और 10–वर्षीय बैंचमार्क सरकारी प्रतिभूति पर आय शामिल है। नीतिगत दर कटौती से संकेत लेते हुए अनेक बड़े बैंकों ने उनकी बैंचमार्क मूल उधार दरें कम की हैं। बैंक ऋण भी बढ़ा है लेकिन पिछले वर्ष की तुलना में इसकी गति कम है। किंतु, रिज़र्व बैंक की स्थूल गणना दर्शाती है कि वाणिज्यिक क्षेत्र की और कुल संसाधन प्रवाह पिछले वर्ष की तुलना में कम है। इसका कारण यह है कि बैंक ऋण बढ़ने के बावजूद वाणिज्यिक क्षेत्र को बैंकेतर संसाधन प्रवाह में हुई गिरावट को यह पूर्णतः ठीक नहीं कर पाया।

## प्रतिसाद का मूल्यांकन

उक्त संकट के प्रतिसाद के मूल्यांकन में यह स्मरण करना महत्त्वपूर्ण है कि इस संकट का मूल विश्व भर में एक समान होने के बावजूद इस संकट में विभिन्न अर्थव्यवस्थाओं पर अलग–अलग प्रभाव डाला है। महत्वपूर्ण रूप से, विकसित अर्थव्यवस्थाओं में, जहां इसकी शुरुआत हुई थी, यह संकट वित्तीय क्षेत्र से वास्तविक क्षेत्र में बढ़ा। उभरती अर्थव्यवस्थाओं में बाह्य आघातों के देशी भेद्यताओं में संप्रेषण पारंपरिक रूप से वास्तविक क्षेत्र से वित्तीय क्षेत्र की ओर रहा है।

देशों ने उक्त संकट का सामना अपनी स्थिति के अनुसार किया है। इस प्रकार, विभिन्न देशों में नीतिगत प्रतिसाद सामान्यतः एक समान होने के बावजूद उनके विशिष्ट स्वरूप, मात्रा, क्रम और समय में अंतर है। विशेष रूप से, विकसित अर्थव्यवस्थाओं में नीतिगत प्रतिसाद में अप्रकट वित्तीय संकट और गहराती मंदी से सामना किया जाना था, वहीं भारत में हमारा प्रतिसाद मुख्य रूप से आर्थिक वृद्धि में कमी को रोकने पर केंद्रित था।

## भारत के लिए संभावना

भारत के लिए संभावना मिश्रित स्वरूप की है। आर्थिक गतिविधियां कम होने के स्पष्ट संकेत हैं। वास्तविक जीडीपी वृद्धि 2008–09 की पहली और दूसरी तिमाही में थोड़ी कम रही है और तीसरी तिमाही में तेजी से कम हुई है। सेवा क्षेत्र, जो पिछले पांच वर्षों में हमारी वृद्धि का मूल प्रेरक रहा है, मंद हो रहा है और यह मंदी मुख्यतः निर्माण, परिवहन और संप्रेषण, व्यापार, होटल और रेस्टॉरेन्ट्स के उप क्षेत्र में है। सात वर्षों में पहली बार अक्तूबर 2008– जनवरी 2009 के दौरान लगातार चार महीनों में निर्यात समग्र दृष्टि से कम हो गए। हाल के आंकड़े दर्शाते हैं कि प्रणाली में अनुकूल चलनिधि की स्थिति के बावजूद बैंक ऋण की मांग घट रही है। मांग में मंदी के कारण कंपनी मार्जिन कम हो गई है जबकि सकंट संबंधी अनिश्चय ने कारोबार विश्वास को प्रभावित किया है। औद्योगिक उत्पादन सूचकांक ने हाल के दो महीनों में ऋणात्मक वृद्धि दर्शाई है और निवेश मांग घट रही है। ये सभी कारक बतलाते हैं कि वृद्धि हमारी पूर्ववर्ती सोच से सभी अधिक कम रहेगी।

इस संकट के आगमन का सामना करने में भारत की स्थिति अच्छी है। इनमें से कुछ हाल की घटनाएं है। इनमें से सर्वाधिक उल्लेखनीय हेडलाईन मुद्रास्फीति, जो थोक मूल्य सूचकांक से मापी जाती है, में तेज गिरावट आई जबकि उपभोक्ता मूल्य सूचकांक में अभी भी कमी होनी है। स्पष्ट रूप से, गिरते हुए पण्य मूल्य अवस्फीति के पीछे के मुख्य प्रेरक रहे हैं; किंतु कम होती हुई देशी मांग से भी कुछ सहयोग मिला है। मुद्रास्फीति में गिरावट से उपभोग मांग बढ़ेगी और उसे सहारा मिलेगा तथा कंपनियों की इनपुट लागत कम होगी। इसके अलावा, वैश्विक कच्चे तेल की कीमतों और नाफ्ता की कीमतों में गिरावट जारी रहती है तो तेल और उर्वरक कंपनियों की सब्सिडी कम हो जाएगी और बुनियादी सुविधाओं पर व्यय का राजकोषीय स्थान खुल जाएगा। बाह्य क्षेत्र की संभावना से यह अनुमान लगाया गया है कि आयात में निर्यात की अपेक्षा अधिक संकुचन होगा जिसके चालू खाते का घाटा कम रहेगा।

ऐसे अनेक ढांचागत कारक हैं जिनसे भारत को सहायता मिली है। पहला, बाह्य आघातों की गंभीरता और बहुगुणकता के बावजूद भारतीय वित्तीय बाजारों ने प्रशंसनीय लोच दिखाई है। यह बहुत महत्वपूर्ण है क्योंकि भारतीय बैंकिंग प्रणाली मजबूत, स्वस्थ, सुपूंजीकृत और विवेकपूर्ण रूप से विनियमित है। दूसरा, आरक्षित निधि की हमारी अनुकूल स्थिति विदेशी निवेशकों का विश्वास बढ़ाती है। तीसरा, अधिकांश भारतीय

इक्विटी और आस्ति बाजारों में सहभागी नहीं होते, अंतः विकसित अर्थव्यवस्थाओं को परेशान करने वाली धन–हानि का नकारात्मक प्रभाव काफी कम है। परिणामस्वरूप, उपभोग मांग बनी रहेगी। चौथा, भारतीय प्राथमिकता प्राप्त क्षेत्र के उधार की अधिदेशात्मकता के कारण कृषि का संस्थागत ऋण अप्रभावित रहा है। सरकार द्वारा लागू कृषि ऋण माफी पैकेज ने कृषि क्षेत्र को इस संकट से और भी उबारना चाहिए। अंत में, वर्षों में, भारत ने सामाजिक सुरक्षा– नेट कार्यक्रमों का गहन नेटवर्क तैयार किया है जिसमें ग्रामीण रोजगार गारंटी कार्यक्रम जैसा मुख्य कार्यक्रम भी शामिल है। स्वस्थिरीकरण के इन विशिष्ट भारतीय रूप ने वैश्विक संकट के घातक प्रभाव से गरीबों की रक्षा करनी चाहिए।

## भारतीय रिज़र्व बैंक का नीतिगत रुझान

भावी परिदृश्य में रिज़र्व बैंक का नीतिगत रुझान रूपया और विदेशी निधि की चलनिधि की स्थिति निरंतर अनुकूल बनाए रखने का होगा। पारस्परिक निधि पर दबाव डालने वाले संकेतक अनुकूल हो गए हैं और एनबीएफसी भी उनकी आस्तियों और देयताओं के आवश्यक समायोजन कर रही हैं। निर्यात मांग में संकुचन के बावजूद हम अपने भुगतान संतुलन का प्रबंधन कर सकेंगे। रिज़र्व बैंक की यह अपेक्षा है कि वाणिज्य बैंक अपनी जमा और उधार दरों के समायोजन के लिए नीतिगत दर–कटौती से संकेत लेंगे ताकि उत्पादक क्षेत्रों की और ऋण–प्रवाह बना रहे। विशेष रूप से, रिज़र्व बैंक द्वारा एमएसएमई (व्यष्टि, लघु और मझौले उद्यम) क्षेत्र, आवास क्षेत्र और निर्यात क्षेत्र के लिए खोले गए विशेष पुनर्वित माध्यम ने यह देखना चाहिए कि इन क्षेत्रों की और ऋण–प्रवाह बना रहे। इसके अलावा, एनबीएफसी को सहायता देने के लिए गठित एसपीवी ने एनबीएफसी के वित्तपोषण की बाधाओं को दूर करना चाहिए। सरकारी राजकोषीय उत्प्रेरण को इन प्रयासों के आपूर्ति ओर मांग दोनों पक्षों की ओर से संपूरक होना चाहिए।

## सुधार कब आएगा

पिछले पांच वर्षों में भारत की वृद्धि नौ प्रतिशत के अपूर्व स्तर तक पहुंच गई थी जिसके मुख्य प्रेरक देशी उपभोग और निवेश थे भले ही निवल निर्यात का हिस्सा बढ़ता रहा हो। यह अचानक या संयोग से नहीं हुआ था। यह सत्य है कि बढ़िया वैश्विक वातावरण, सुगम चलनिधि और कम ब्याज़ दरों ने सहायता की,किंतु भारत की वृद्धि के मूल में उद्यमशीलता की बढ़ती भावना, उत्पादकता में वृद्धि और बढ़ती हुई बचत थी। ये मूल शक्तियां लगातार बनी हुई हैं। फिर भी,वैश्विक संकट, निवेश और निर्यात मंद हो जाने से भारत का वृद्धि पथ प्रभावित होगा। स्पष्ट रूप से, हमारे आगे दुखदायी समायोजन का समय है। किंतु, वैश्विक, अर्थव्यवस्था में सुधार शुरू होते ही भारत की प्रगति तेजी से होगी जिसे हमारे मजबूत मूल तत्वों और निर्बाध वृद्धि संभावना की सहायता प्राप्त होगी। इस बीच, सरकार और भारतीय रिज़र्व बैंक के सामने समायोजन को न्यूनतम परेशानी के साथ प्रबंधित करने की चुनौती है।

# सजगता संकट को टालती है

# वैश्विक वित्तीय संकट : कारण और उसकी गतिमानता एवं भारत पर प्रभाव

● सी. सी. मित्रा
मुख्य महाप्रबंधक
भारतीय रिज़र्व बैंक

वैश्विक वित्तीय संकट की जड़ें अमरीका में हुए सबसे बड़े आवास ऋण तथा उससे संबंधित ऋण के बुलबुले में हैं जो सब-प्राइम घोटाले के कुख्यात नाम से जाना जाता है। इस संकट ने पूरे विश्व की अर्थव्यवस्था को गिरावट की खाई में धकेल दिया है। 70 वर्ष से चल रही वैश्विक वित्तीय प्रणाली में आधुनिक पूंजीवाद के विकास के दौरान वित्तीय प्रणाली को लगा हुआ यह सबसे जोरदार झटका है। अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष (आईएमएफ) की ओर से वैश्विक अर्थव्यवस्था का लेखा-जोखा लिया गया, जिसके अनुसार वैश्विक अर्थव्यवस्था को क्रयशक्ति समता के अनुसार नापे जाने पर वर्ष 2009 में वैश्विक आर्थिक वृद्धि की दर में 0.5% तक गिरावट आ सकती है और यदि उसे बाजार विनिमय दरों के अनुसार नापा जाए तो यह ऋणात्मक भी हो सकती है। उन्नत अर्थव्यवस्थाएं (अमरीका, यूरो क्षेत्र, यूके, जापान आदि) विश्व युद्ध के बाद सबसे गहरी आर्थिक मंदी झेल रही हैं और 2009 में उनका उत्पादन (Output) 2% से घटने का अनुमान लगाया गया है। आईएमएफ रिपोर्ट कहती है कि आर्थिक क्षेत्र की अनिश्चितता को दूर करने में नीतियां विफल हो गयी हैं जिसके कारण वैश्विक वित्तीय संकट बरकरार है और इससे सभी देशों में परिसंपत्तियों के मूल्य अत्यधिक घट गये हैं। घरेलू संपत्ति कम हुई है और उपभोक्ता मांग पर घटती मांग का दबाव आ रहा है।

## संकट की उत्पत्ति

मूलत: अमरीका में उत्पन्न हुए इस संकट ने बाद में वैश्विक रूप धारण किया तथा संकट गहराता गया जिससे विश्व की आर्थिक स्थिति और अधिक बदतर होती गई। यह अत्यधिक संक्रामक तथा जटिल स्वरूप का संकट है और इससे विभिन्न बाजार और कई देशों की अर्थव्यवस्थाएं रोगग्रस्त हुई है। वित्तीय प्रणाली के बहुत से क्षेत्र अत्यधिक दबाव झेल रहे हैं। कुछ बाजारों एवं संस्थाओं ने अपना कार्य बंद कर दिया है। परिणामस्वरूप, वास्तविक अर्थव्यवस्था पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है। वित्तीय बाजार विश्वास पर निर्भर होते हैं। लेकिन अब वित्तीय बाजारों पर ही कोई विश्वास नहीं रहा है।

विश्वभर की सरकारों और केंद्रीय बैंकों ने आर्थिक स्थिति को सुधारने और प्रणालीगत, खतरों को कम करने के लिए विभिन्न उपाय किए हैं। इनमें से प्रोत्साहन पैकेज घोषित करने, केंद्रीय बैंकों द्वारा अंत्यत कम समय में भारी मात्रा में बाजार में चलनिधि उपलब्ध कराने, वित्तीय संस्थाओं को पुन: पूंजी प्रदान करने, कुछ वित्तीय गतिविधियों और विशेष कर अंतर-बैंक उधारियों के लिए गारंटी देने, परिसंपत्तियों की सीधी खरीद आदि पर कुछ सरकारों ने विचार-विमर्श किया है। 1930 ही महामंदी के बाद संक्रमित हुए इस महाभयंकर संकट के कारणों का पता लगाने वाले अधिकतर अंतरराष्ट्रीय समूहों, अध्ययनों, अनुसंधानों ने स्वीकार किया है कि वास्तविक अर्थव्यवस्था को छिन्न-विच्छिन्न कर देने के लिए निम्नलिखित घटक जिम्मेदार हैं:

- उत्पाद वृद्धि के उपाय ढूंढ़ना
- जोखिम का बढ़ता आकार
- एजेंसी समस्याएं
- शिथिल हामीदारी मानक
- रेटिंग एजेंसी प्रोत्साहन समस्याएं
- वित्तीय संस्थाओं द्वारा खराब जोखिम प्रबंधन
- बाजार पारदर्शिता का अभाव
- विद्यमान मूल्यांकन आदर्शों की मर्यादाएं
- वित्तीय प्रणाली के लिए परिवर्तित वातावरण के अनुमानों का समझने में विनियामकों की विफलता
- स्क्लेरॉटिक पर्यवेक्षण
- उभरती अर्थव्यवस्थाओं की और से सस्ती मुद्रा उपलब्ध होना

इस संकट के लिए केवल ऊपर दिये गये कारण की जिम्मेदारी नहीं है, बल्कि उनकी हानिकारक जटिलता और प्रणालीगत संबद्धता के कारण दबावों का एक जबरदस्त समूह निर्माण हुआ जिससे वॉल स्ट्रीट की मजबूत तिजोरियां भी ढह गयीं।

ऊपर वर्णित अधिकांश कारणों को प्रमुख क्षेत्रों में पुनर्गठित किया जा सकता है और इस संकट को तीव्र बनाने में उनके अनुषंगी प्रभावों को निम्नानुसार विश्लेषित किया जा सकता है:

## समष्टिगत अर्थशास्त्रीय मामले

वर्तमान आर्थिक संकट के प्रमुख कारण प्रचुर मात्रा में चलनिधि की उपलब्धता और सस्ती ब्याज दरें हैं। किंतु वित्तीय क्षेत्र में निर्माण किये गए उत्पाद अत्यधिक मात्रा में चलनिधि बढ़ाने और तीव्र गति से ऋण विस्तार के लिए उत्तरदायी रहे हैं। नब्बे के दशक के मध्य से सक्षम समष्टि की आर्थिक वृद्धि ने यह भ्रम फैलाया कि उच्च स्तर की आर्थिक वृद्धि न केवल संभव थी बल्कि वह भविष्य में भी दीर्घकाल के लिए बरकरार रहेगी। यह वह अवधि थी जिसके दौरान समष्टि की आर्थिक वृद्धि, मुद्रा स्फीती की कम दरों और सस्ती ब्याज दरों के कारण गतिशील हुई। इसे ''महान आधुनिकीकरण'' (ग्रेट मॉडरेशन) के नाम से जाना जाता है। ''महान आधुनिकीकरण'' के कारण पिछले बीस वर्षों में समष्टिगत अर्थव्यवस्था की स्थिरता में आई हुई अत्यधिक गिरावट एक अद्‌भुत आर्थिक विकास है। इस ''महान आधुनिकीकरण'' का प्रमुख कारण ढांचागत परिवर्तन, सुधारित आर्थिक नीति या केवल सद्‌भाग्य है इसके बारे में अभी तक मतैक्य नहीं हुआ है।

चूंकि ग्राहक मुद्रा स्फीति की दर कम रही, ऋण की मात्रा तेजी से बढ़ती गई, इसलिए केन्द्रीय बैंकों विशेषत: अमरीका के केंद्रीय बैंकों ने मौद्रिक नीति कठोर करने की कोई आवश्यकता नहीं समझी। बढ़ते ऋणों की मात्रा से वस्तुओं और सेवाओं के मूल्य बढ़ने के बजाए अतिरिक्त चलनिधि ने परिसंपत्तियों का मूल्य तेजी से बढ़ा दिया। इन मौद्रिक नीतियों से वैश्विक वित्तीय तथा वस्तुओं के बाजार में संतुलन बिगड़ता गया। अमरीका की सस्ती ब्याज दरों ने अति विस्तृत 'हाऊसिंग बबल' निर्माण करने में सहायता की, जिसमें अप्रतिबंधित बंधक पर दिए गए एवं जटिल वित्तीय प्रतिभूतिकरण के तकनीकी माध्यम से दिए गए ऋणों ने आग में घी डालने का काम किया। अमरीका सरकार द्वारा प्रायोजित वित्तीय संस्थाओं, जैस फैनी में, फ्रेडिमैक पर सरकार का अपर्याप्त नियंत्रण तथा इन संस्थाओं पर होनेवाले भारी राजनैतिक दबावों ने निम्न आय के लोगों को घर खरीदने के लिए ऋण देने हेतु प्रोत्साहन के कारण स्थिति और बदतर होती गई। अमरीका में उन्नीस सौ नब्बे की खर्च करने योग्य आय की 7% होनेवाली व्यक्तिगत बचत 2005 तथा 2006 में घटकर शून्य प्रतिशत हो गई। ग्राहक ऋण एवं बंधक तेजी से बढ़ते गए। विशेषत: अमरीका में सब प्राइम बंधक ऋण 2001 के 180 बिलियन डॉलर की तुलना में 2005 में 625 बिलियन डॉलर तक बढ़ गए।

अमरीका में तीव्रता से बढ़े ऋणों के विस्तार के लिए आवश्यक वित्तीय चालू खाता डेफिसिट बढ़ता गया, चीन तथा सऊदी अरब जैसी उभरती अर्थव्यवस्थाओं ने अपनी मुद्रा डॉलर के साथ स्थिर कर दी और शिथिल अमेरिकन मौद्रिक नीति अपनाई जिसके कारण, सस्ती ब्याज दरें, निर्यात में अधिक वृद्धि एवं भारी मात्रा में चालू खाता अधिशेषों ने वैश्विक असंतुलन निर्माण करने में सहायता की। परिणामस्वरूप इन देशों के चालू खाता अधिशेष अमरीका सरकार की प्रतिभूतियों तथा कम जोखिम वाली परिसंपत्तियों में रिसाईकिल किए गए, जिससे उनसे प्राप्त होनेवाली आय कम होती गई और निवेशक अधिक आय देने वाली, अधिक जोखिमवाली परिसंपत्तियों को खोजने लगे। फलस्वरूप जोखिमों का गलत मूल्यांकन किया गया, अधिक आय देने के लिए और अधिक जटिल नवोन्मेषी लिखत बनाए गए जो उधार ली गई निधियों के साथ संयुक्त करके चलनिधि की खरीद के लिए उपयोग में लाये गए।

## सिंथेटिक प्रतिभूतिकरण

यद्यपि प्रतिभूतिकरण तत्वत: एक स्पृहणीय आर्थिक मॉडल है तथापि, उसके साथ अपारदर्शिता आई जिसने निहित परिसंपत्तियों के घटिया स्तर पर परत डाल दी। इससे ऋण

विस्तार हुआ और यह विश्वास हुआ कि जोखिमों को विभाजित कर अलग अलग कर दिया है।

**पहला चरण** : उधारकर्ता, ऋणदाता से ऋण लेता है। यह बंधक करने वाले दलाल की सहायता से किया जा सकता है। कई मामलों मे ऋण दिये जाने के बाद ऋण दाता और बंधक रखने वाले दलाल का उधारकर्ता से बाद में कोई संपर्क नहीं रहता है।

**द्वितीय चरण** : ऋण दाता, ऋण को उसके जारीकर्ता को बेचता है और उधारकर्ता, सेवादाता को मासिक भुगतान करना शुरू कर देता है।

**तृतीय चरण** : जारीकर्ता निवेशक को प्रतिभूतियां बेचता है। अंडरराइट बिक्री में सहायता करता है, रेटिंग एजेन्सी प्रतिभूतियों का रेटिंग करती है जिससे और अधिक ऋण प्राप्त किया जा सकता है।

**चतुर्थ चरण** : सेवादाता, उधारकर्ता से मासिक भुगतान जमा करता है और और भुगतानों को जारीकर्ता के पास भेज देता है। सेवादाता और ट्रस्टी बकाया ऋणों का प्रबंध पूलिंग और सेवा करार में निर्धारित शर्तों के अनुसार करते हैं।

प्रतिभूतियों के अंधाधुंध विस्तार के साथ उनका अत्यधिक लाभ उठाने से पूरी प्रणाली में अनियमित ऋण विस्तार होता गया और यह विश्वास भी रहा कि जोखिमों को अच्छी तरह से विभाजित कर दिया गया है।

अधिक जोखिमें उठायी गयीं लेकिन जोखिम-मुक्त सरकारी प्रतिभूतियों तथा जोखिम भरे कार्पोरेट बांडों के बीच के ऐतिहासिक अत्यधिक कम स्प्रेड के कारण उन जोखिमों का उचित मूल्यांकन नहीं किया गया। वित्तीय संस्थानों ने 30 से 60 प्रतिशत भारी लाभ देनेवाली अन्य बहुत सी वित्तीय संस्थाओं में अपने निवेश किए। ये निवेश परिसंत्तियों के मूल्य में थोड़ी-सी भी गिरावट आने पर अत्यधिक असुरक्षितता के

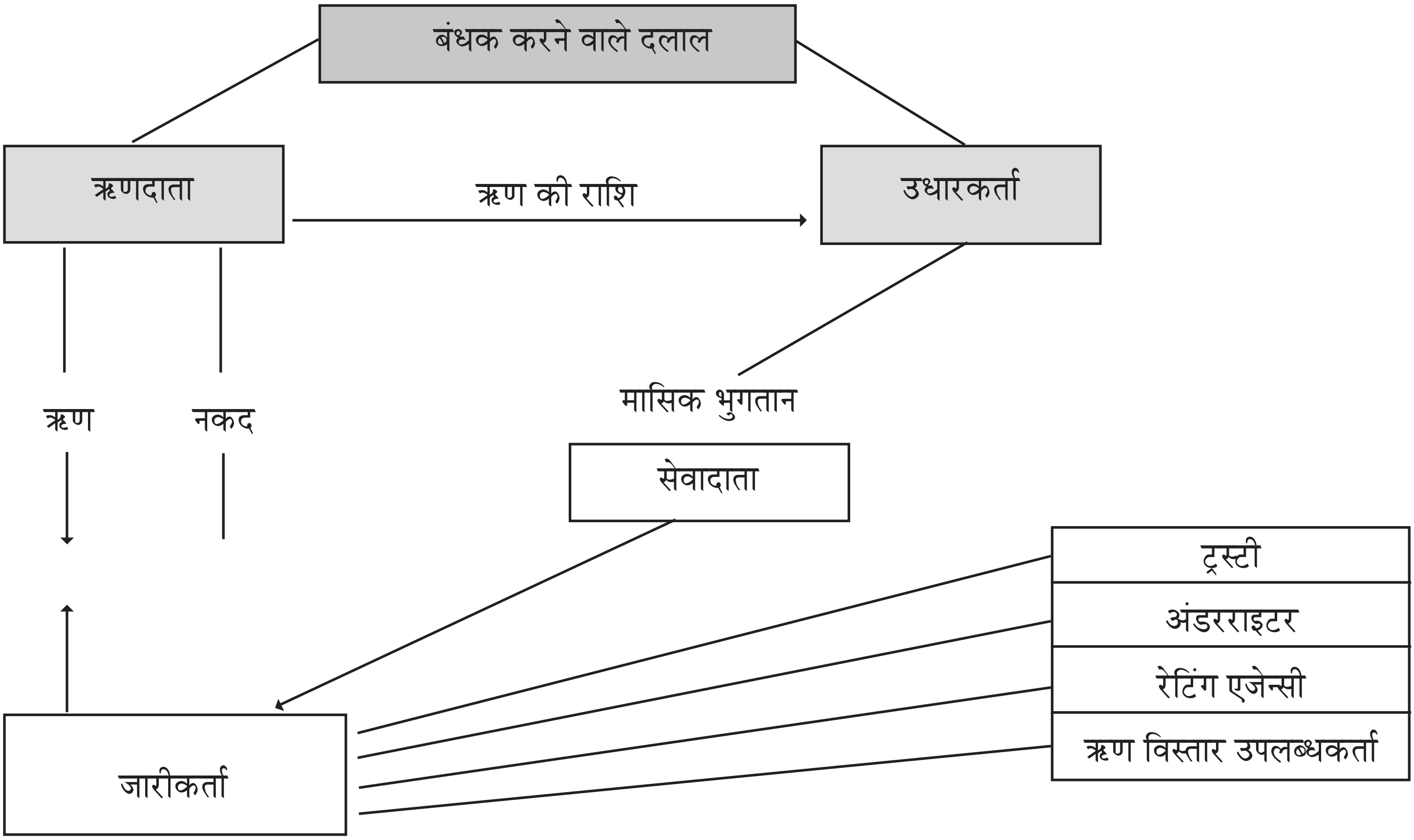

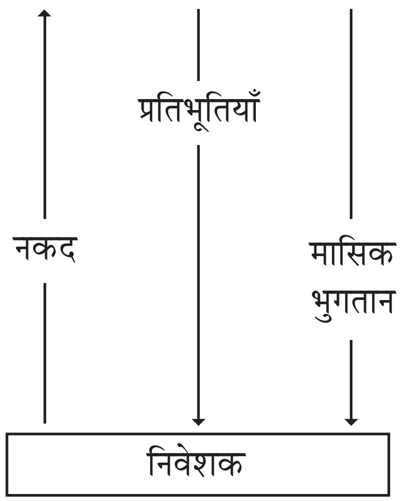


घेरे में आ गए।

## जोखिम प्रबंधन

वित्तीय संस्थाओं तथा उनके विनियामकों और पर्यवेक्षकों, दोनों द्वारा जोखिम के मूल्यांकन में पूर्णतया मूलभूत चूकें हुई हैं। इन चूकों के कई उदाहरण पाए जा सकते हैं ऋण और चलनिधि जोखिम के बीच का अन्योन्य संबंध तथा वित्तीय संस्थाओं का लाभ पूर्णत: सत्यापित करने में हुई भूल इनमें महत्त्वपूर्ण उदाहरण है। इन चूकों का परिणाम वित्तीय संस्थाओं ने अपनी जोखिमों का समग्र रूप से प्रबंध करने के लिए उनकी सक्षमता का अधिमूल्यांकन किया और जो पूंजी की मात्रा उन्हें रखनी थी उसे नजर अंदाज कर दिया। मॉडेल आधारित जोखिम मूल्यांकनों द्वारा आम तौर पर लगने वाले झटकों और अंतिम जोखिमों के एक्सपोजर को कम आंका गया। परिणाम, समग्र जोखिम एक्सपोजर के कम आंकने में हुआ। दबाव परीक्षण भी हमेशा गंभीरता से न करते हुए या गलत अनुमानों के आधार पर किए गए। स्पष्ट है कि किसी भी बैंक को अंतर बैंक या वाणिज्यिक पत्र बाजारों के संपूर्ण ठप्प पड जाने की अपेक्षा नहीं थी।

वितरण के लिए निर्मित और वितरित प्रतिभूतियाँ निर्मित को लौटाने जैसे जटिल प्रतिभूतिकरण ढांचे में शामिल सभी पार्टियों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा। इसके कारण उधारकर्ता, उधारदाता के बीच का फर्क अस्पष्ट हुआ, उधार देने से संबंधित मानकों का ह्रास, अमेरिकी बंधक बाजार का नियमन एवं पर्यवेक्षण न होने, चलनिधि जोखिम के महत्व को न समझे जाने जैसे परिणाम भुगतने पड़े। उपर्युक्त सभी घटकों ने एक दुश्चक्र निर्माण किया और जैसे-ही ऋण बाजार में चलनिधि कम हो गई, ब्याज दरें बढ़ने लगीं और परिणामस्वरूप विभिन्न वित्तीय संस्थाएं और उधारकर्ता सब प्राइम घोटाले के दलदल में फंसते गए।

## ऋण पात्रता निर्धारण एजेन्सियों की भूमिका

नवोन्मेषी और जटिल वित्तीय लिखतों को अमेरिकी सरकारी प्रतिभूतियों के सममूल्य पर रखते हुए उन्हें उच्चतम ऋण पात्रता देने में रेटिंग एजेन्सियों ने बहुत अधिक तत्परता दिखाई, जिससे आर्थिक एजेंटों द्वारा जोखिम कम आंकी गई। गलत रेटिंग पद्धतियों, अमेरिकी सब-प्राइम बाजार से संबंधित पर्याप्त पिछले आंकड़ों के उपलब्ध न होने तथा ऋण मानकों के ह्रास को नजरअंदाज करने के परिणामस्वरूप रेटिंग एजेन्सियों द्वारा नवोन्मेषी एवं जटिल वित्तीय उत्पादों की जोखिम को कम दिखाया गया।

एक और परेशानी बढ़ाने वाला प्रमुख क्षेत्र था – प्रतिभूतियों का जारीकर्ता स्वयं रेटिंग एजेन्सियों के पारिश्रमिक प्रोत्साहन की व्यवस्था देखता था। प्रतिभूतियों के जारीकर्ता रेटिंग एजेंसियों को अधिक पारिश्रमिक अदा कर यह सुनिश्चित करते थे कि उनके जटिल और नवोन्मेषी उत्पादों को रेटिंग एजेन्सियों द्वारा 'एएए' रेटिंग दी जाए।

## ह्रास

कुछ निवेशकों के लिए केवल उच्च रेटिंग (AAA) प्रतिभूतियों में ही निवेश किए जाने की विनियामक आवश्यकताओं के कारण ऐसी उच्च रेटिंग वाली प्रतिभूतियों की मांग को प्रोत्साहन मिला और इससे रेटिंग एजेन्सियों द्वारा उचित रेटिंग पद्धतियों को कड़ाई से लागू करने में गहरी चुप्पी साधी गयी।

## असफल कार्पोरेट नियंत्रण

चूंकि आस्तियों का मूल्य लगातार बढ़ रहा था और निवेशक अच्छा खासा लाभ कमा रहे थे, जोखिम मूल्यांकन

के साधनों में उल्लेखनीय शिथिलता आई, ऋण के मानकों का ह्रास हुआ, विवेकपूर्ण जोखिम प्रबंधन सिद्धांतों को लागू करने में ढील दी गई जिसके संयुक्त प्रभाव से विवेकपूर्ण जाँच और कार्पोरेट नियंत्रण का संतुलन बिगड़ता गया। वित्तीय संस्थाओं के बहुत से कार्यपालकों को उनके द्वारा लेनदेन किए जाने वाले नये, अत्यधिक जटिल एवं जोखिम भरे वित्तीय उत्पादों की विशेषताएं ध्यान में नही आ पायी और न ही उन्हें उन उत्पादों को जारी करने से उनकी कंपनियों की समग्र जोखिम के बारे में कोई जानकारी थी। वे उनके द्वारा ली जा रही जोखिमों को सरासर नजर अंदाज कर रहे थे। इन कंपनियों के बहुत से बोर्ड सदस्यों ने प्रबंध तंत्र पर आवश्यक नियंत्रण नहीं रखा और इनके मालिकों अर्थात शेयर धारकों ने भी इसमें कोई दिलचस्पी नहीं ली।

वित्तीय संस्थाओं में बनाये गये वेतन के ढांचे ने आय/लाभप्रदता में लंबी अवधि की शोधन क्षमता तथा स्थिरता के बजाए अत्यधिक जोखिम वाले अल्पावधि लाभों को तूल दी। इसके अलावा प्रबंध-तंत्र पर शेयरधारकों का दबाव बढ़ता गया कि वे निवेशकों को ऊंची दरों से शेयर मूल्य और डिविडेंड अदा करें। इससे वर्ष-दर-वर्ष प्रत्येक तिमाही में शेयरों और डिविडेंड का मूल्य बढ़ता गया और परिणामस्वरूप बहुत सी कंपनियों के लिए वित्तीय निष्पादन के क्षेत्र में अवांछनीय असहनीय बेंच मार्क निर्माण किए गए।

## नियामक, पर्यवेक्षी तथा संकट प्रबंधन में असफलता

नियामकों द्वारा बतायी गई पूंजी की आवश्यकताएं जटिल वित्तीय लिखतों तथा वित्तीय कंपनियों द्वारा लिये जा रहे अत्यधिक लाभ की जोखिम की राशि के अनुरूप नहीं थी। उदाहरण के तौर पर व्यापारी लेनदेनों के लिए पूंजी की आवश्यकताएं कम रखी गई थी। यद्यपि, ऐसे लेनदेनों में काफी अधिक जोखिम होता है।

व्यक्तिगत फर्मों/बैंकों तथा कंपनियों पर बहुत अधिक ध्यान केंद्रित किया गया था जबकि बाजार में चलनिधि की उपलब्धता, विनियामक और पर्यवेक्षी समन्वय, सूचना का आदान प्रदान और सामूहिक निर्णय लेने जैसे प्रणालीगत मामलों पर बहुत कम ध्यान दिया गया। जो भी नियमावली बनायी गयी वह प्रत्येक व्यक्तिगत फर्म के लिए अलग-अलग तैयार की गयी और व्यापक बाजार गतिशीलता तथा आंतरिक लिंकेजों को पूरी तरह नजरअंदाज किया गया। यह कहना उचित होता कि 'समष्टिगत विवेकपूर्ण मानदंडों की चिंता न करते हुए व्यक्तिगत मानदंडों को अधिक महत्व दिया गया।

एक और प्रमुख कमी ऐसी रही कि प्रचुर मात्रा में उत्पन्न किए गए अनियंत्रित डेरिवेटिवों तथा विशेष रूप से ऋण डेरिवेटिवों की ऑफ बैलेन्स शीट गतिविधियों ने संकट को बढाने में उल्लेखनीय भूमिका निभायी। अनियंत्रित डेरिवेटिवों और ऋण डेरिवेटिवों की जोखिम को आंकने में अपर्याप्त कौशल न होने के साथ-साथ अपर्याप्त पर्यवेक्षी तथा नियामक संसाधनों एवं पर्यवेक्षण की विभिन्न राष्ट्रीय प्रणालियों के उपयोग से स्थिति और बदतर बनती गयी।

## संकट से संक्रमण

जब 2006 के मध्य से अमरीका की अर्थव्यवस्था में मौद्रिक नीति को कठोर करने की आवश्यकता थी तब फलत: यह संकट उत्पन्न हुआ और यह स्पष्ट हो गया था कि अमरीका में सब-प्राइम आवास का बुलबुला बढ़ती हुई ब्याज दरों के कारण फूटने वाला हैं। अगस्त 2007 से, प्रमुख स्टॉक बाजारों में अकस्मात लगे हुए झटकों और प्रत्यय बाजारों में आयी व्यापक गिरावट से निवेशकों का विश्वास खो दिया। यूरोप सहित पूरे विश्व में प्रत्यय डेरिवेटिव बाजारों के साथ-साथ वित्तीय संस्थाओं में भी हानि की जोखिम सर्वत्र व्याप्त थी। चलनिधि की अत्यंत कमी, उसी प्रकार बाजार में निधियन अपर्याप्त होने के कारण व्यापार और दैनंदिन व्यवसाय करने में काफी कठिनाई हुई, पूंजीगत हानि और निवल संपत्ति में उल्लेखनीय कमी के कारण कई बैंकों और वित्तीय संस्थानों की ऋण शोधन क्षमता प्रभावित हुई।

विनियामक चक्र के विपरीत दिशा में चलने के फलस्वरूप एक ऋणात्मक प्रतिसूचना का फंदा (loop) तैयार हुआ, जिसके कारण यह संकट बहुआयामी प्रभाव से फैलता गया। लेखांकन सिद्धांत, जैसे मार्क-टु-मार्केट, (जिन्होंने तेजड़िया-दौड़ के दौरान लाभ और रिजर्व पर पड़े प्रतिकूल प्रभाव के

कारण वित्तीय संस्थाओं को अपने तुलन पत्र में आस्तियों का मूल्य कम दिखाना पड़ा।) इस प्रकार उन्हें पूंजी स्तर को बनाए रखने हेतु या तो और आस्तियाँ बेचनी पड़ी या अपनी ऋण मात्रा को कम करना पड़ा। किसी एक वित्तीय संस्था द्वारा की गई 'उत्तेजित ब्रिक्री' (Fire sales) ने अन्य वित्तीय संस्थाओं को इसी प्रकार की आस्तियों का मूल्य बहुत ही कम करने के लिए बाध्य किया। अनेक हेज निधियों का मूल्य उसी प्रकार गिरता गया और मार्जिन मांग (Margin call) ने समस्याओं को तीव्र किया।

इस बीच क्रेडिट रेटिंग एजेंसियों ने भी उच्च दर के सम्मिश्र और संरचित लिखतों को कम रेटिंग देना प्रारंभ किया। इसके कारण बैंकों/वित्तीय फर्मों को अपनी जोखिम भारित पूंजीगत आवश्यकताओं को बढ़ाना पड़ा। एक बार फिर आस्तियों के शीघ्र निपटान हेतु इन संस्थाओं पर दबाव बढ़ा जिससे आस्तियों के मूल्यों और बाजारों को और अधिक दबाव का सामना करना पड़ा। पहले से ही नकदी की कमी से प्रभावित बैंकों/वित्तीय संस्थाओं को आर्थिक संकट झेलना पड़ा और प्रारंभ में पायी गयी चलनिधि की समस्या बहुत सी संस्थाओं के लिए शोधन क्षमता (solvency) की समस्या बन गयी।

बाजार में पारदर्शिता के अभाव के साथ क्रेडिट रेटिंग में अकस्मात आयी उल्लेखनीय कमी तथा अमरीका सरकार का दिवालिया लीमन ब्रदर्स को न बचाने के निर्णय ने 2008 की शरद ऋतु में वित्तीय बाजारों में होने वाला विश्वास खो दिया और विश्वव्याप्त चलनिधि संकट निर्माण करते हुए अंतर बैंक मुद्रा बाजार व्यावहारिक रूप से बंद करने पड़े। इससे पूरे विश्व भर के वित्तीय बाजार अभी भी उबर नहीं पाए हैं। बहुत सी वित्तीय लिखतों को जटिलता और अंतर्निहित आस्तियों की संवेदनशीलता भी स्पष्ट करती है कि अमरीकी सब-प्राइम बाजार की छोटी सी समस्या ने समूचे विश्व की वित्तीय प्रणाली को पूरी तरह मंदी की कगार पर लाकर खडा कर दिया है।

वैश्विक परिदृश्य अभी भी अस्थिर (Non-tranquil) है परंतु यह उथलपुथल पूरे विश्वभर में और विशेष रूप से भारत के हाल के वित्तीय बाजारों में अधिकता से देखी जा सकती है। यद्यपि उष:काल नहीं हुआ है फिर भी आधी से अधिक रात बीत चुकी है। गिरावट के दौरान अभी भी जो एक जोखिम पूर्णत: प्रकट होनी शेष थी, वह थी 'बचाव की भूमिका'। *''अब तक मैं इसे कम-ग्रेड का बुखार कहता हूँ यह पूर्ण इन्फ्लूएंजा में प्रकट नहीं हुआ है, परंतु हमें इस पर जोर रखना जरूरी है।'' (विश्व बैंक के अध्यक्ष रॉबर्ट जोएलिक)।*

## एक दूसरे से अलग करने के (डि-कपलिंग) सिद्धांत की विफलता

एक वर्ष पूर्व भी बौद्धिक रूप से व्यावहारिक माने जाने वाले उपर्युक्त सिद्धांत के अनुसार यदि प्रगत अर्थव्यवस्थाओं में गिरावट आती है तो भी उभरती अर्थव्यवस्थाएं अपने पर्याप्त विदेशी मुद्रा रिजर्व, सुधारित नीति ढांचे, मजबूत कार्पोरेट तुलन पत्रों और अपेक्षाकृत स्वस्थ बैंकिंग क्षेत्र के कारण हानिरहित रहेंगी। तेजी से भूमंडीकरण होते हुए विश्व में उपर्युक्त सिद्धांत कभी भी पूर्णत: प्रेरक नहीं रहा। पिछले कुछ महीनों के प्रमाण दर्शाते हैं की पूंजी बाहर जा रही है - सार्वभौमिक और कार्पोरेट ऋण पर स्प्रेड और आकस्मिक करेंसी अवमूल्यन - तेजी से हो रहा है। उपर्युक्त सिद्धांत पूर्णत: नकारा जा रहा है।

## भारत इस संकट से क्यों प्रभावित हुआ है?

आम तौर पर हो रहे भूमंडलीकरण के कारण भारत को दो-तरफा व्यापार (पण्य निर्यात और आयात) सकल घरेलू उत्पाद के अनुपात के रूप में, एशियाई संकट के वर्ष अर्थात् 1997-98 में 21.2 प्रतिशत से बढ कर 2007-08 में 34.7 प्रतिशत हो गया। यदि हम इसे भूमंडलीकरण के विस्तारित उपाय के रूप में देखते हैं तो यह अनुपात 1997-98 के 46.8 से दोगुना होकर 2007-08 में 117.4 हो गया है। उदाहरण के तौर पर पिछले वर्ष भारत में सकल घरेलू उत्पाद से भी अधिक पूंजी आयी जबकि भुगतान संतुलन के चालू खाते में सकल घरेलू उत्पाद के केवल नाम मात्र घाटा दर्शाया गया। अत: संकट को कम करनेवाले उपर्युक्त घटकों के बावजूद यह स्पष्ट है कि भारत वैश्विक अर्थव्यवस्था के साथ तेजी से जुड़ रहा है।

## भारत इस संकट से किस प्रकार प्रभावित हुआ?

भारत में इस संकट का संक्रमण निम्नलिखित सभी चैनलों के माध्यम से फैल गया है:

- वित्तीय चैनल
- रियल चैनल
- विश्वास चैनल

''उपर्युक्त स्पष्टीकरण का आशय यह दर्शाना है कि वित्तीय क्षेत्र की समस्या का हिस्सा न होने के बावजूद, वास्तविक और भरोसेमंद चैनलों के माध्यम से बाह्य आघातों और घरेलू संवेदनशील घटकों के बीच के हानिकारक प्रति सूचना के लूपों के मार्फत भारत को इस वित्तीय संकट ने प्रभावित किया है।''

- गवर्नर : डॉ. डी. सुब्बाराव

## चुनौती का सामना

### मौद्रिक नीति प्रतिसाद

- संतोषप्रद रुपया चलनिधि स्थिति बनाए रखना
- विदेशी मुद्रा चलनिधि में वृद्धि करना

नीति ढांचा बनाए रखना जो ऋण सुपुर्दगी सुचारु रूप से संचालन करेगा ताकि वृद्धि में आई हुई कमी को रोका जा सके। मुद्रास्फीति के दबाव के प्रतिसाद में भारतीय रिजर्व बैंक की मौद्रिक नीति कठोर करने की पिछली नीति के बाजार चालू साइकिल में मुद्रास्फीति का दबाव कम करने तथा वृद्धि की गति मॉडरेट करने के लिए भारतीय रिजर्व बैंक की मौद्रिक नीति में लक्षणीय परिवर्तन किए गए हैं।

### पारंपरिक उपाय

नीतिगत ब्याज दरों में आक्रामक और तेजी से कटौती

- केंद्रीय बैंक द्वारा निर्धारित बैंक रिज़र्व की मात्रा में कटौती और निर्यात ऋण के लिए पुनर्वित सुविधाओं का विस्तार और उनका उदारीकरण
- अनिवासी भारतीयों द्वारा विदेशी मुद्रा जमाराशियों पर ब्याज दरें बढ़ा देना
- कंपनियों के लिए बाह्य वाणिज्यिक उधारों (ईसीबी) को पर्याप्त रूप से शिथिल करना
- गैर-बैंकिंग वित्तीय कंपनियों और आवास वित्त कंपनियों को विदेशी उधार लेने के लिए अनुमति देना

### अपारंपरिक उपाय

- भारतीय बैंकों के लिए रुपया - डॉलर स्वैप सुविधा प्रदान करना ताकि वे अपनी मुद्रा की अल्पावधि आवश्यकताओं का आसानी से प्रबंध कर सके।
- गैर बैंकिंग आर्थिक कंपनियों की सहायता के लिए विशेष पुनर्वित्त सुविधा तथा विशेष प्रकार के लिखत (एसपीवी) जारी करना
- लघु उद्योगों, आवास और निर्यात को दिये गये पुनर्वित्त हेतु पहुँचना उद्योगों के पुनर्वित्त के लिए शीर्ष वित्तीय संस्थाओं (अर्थात सिडबी, एनएचबी) को उपलब्ध उधार देने योग्य संसाधनों में वृद्धि

### सरकारी प्रोत्साहन पैकेज

- इस संकट के अति विशिष्ट प्रभाव और गहराई को समझते हुए केंद्र सरकार ने आर्थिक लक्ष्यों से छूट के लिए राजकोषीय जवाबदेही तथा बजट प्रबंध (एफ.आर.बी.एम.) अधिनियम के आपातकालीन प्रावधानों को ध्यान में लिया और दिसंबर 2008 तथा जनवरी 2009 को सरकारी प्रोत्साहन पैकेज शुरू किये।
- समेकित रूप से जीडीपी के 3 प्रतिशत तक जानेमाने इन दो पैकेजों में अतिरिक्त सरकारी व्यय, विशेषत: पूँजी व्यय, संरचनात्मक खर्च हेतु सरकार द्वारा गारंटीकृत निधि, अप्रत्यक्ष करों में कटौती, सूक्ष्म और लघुवित्त उद्यमों को ऋण देने हेतु विस्तारित गारंटी कवर तथा निर्यातकों को अतिरिक्त समर्थन शामिल थे।
- ग्रामीण गरीबों के लिए विस्तारित सुरक्षा नेट पैकेज, कृषि ऋण छूट पैकेज और सरकारी कर्मचारियों के लिए वेतन वृद्धि जैसे मांग को बढावा देनेवाले पैकेजों के अतिरिक्त उपर्युक्त पैकेजों को माँग बढाने के लिए अधिक वरीयता दी गयी है।
- उपलब्ध की गई चलनिधि की पर्याप्त मात्रा ने नवंबर 2008

के मध्य से चलनिधि की उपलब्धता सुविधाजनक होना सुनिश्चित किया है। भारित औसत मांग मुद्रा दर (weighted average call money rate) एक दिन की मुद्रा बाजार दर तथा 10 वर्षीय बेंचमार्क प्रतिभूति पर प्राप्त आय में वृद्धि जैसे बहुत से संकेतक इसके प्रमाण में मौजूद हैं।

## मौद्रिक उपायों का प्रभाव

- समग्र रूप से, सितंबर 2008 के मध्य से किये गये उपायों द्वारा यह सुनिश्चित हुआ है कि भारतीय आर्थिक बाजार उचित रूप से कार्य कर रहा है।
- इन उपायों के माध्यम से वित्तीय प्रणाली को संभवत: उपलब्ध मूलभूत तरलता की संचयित राशि 75 अरब अमेरिकी डॉलर्स अथवा जी.डी.पी. के 7% से अधिक होती है।
- इसे सुगमता द्वारा नवंबर 2008 के मध्य से एक आरामदेह तरलता की स्थिति सुनिश्चित हुई है जिसका सबूत वेटेड एवरेज कॉल मनी रेट सहित निर्देशको की संख्या, ओवर नाइट मनी मार्केट रेट और 10 वर्षीय बेंच मार्क सरकारी प्रतिभूतियों पर की आय से देता है।
- नीतिगत दरों में कटौती से संकेत लेते हुए बहुत से बडे बैंकों ने अपनी बेंचमार्क मूल उधार दरों में कटौती की हैं।

## सीएफएसए द्वारा भुगतान प्रणालियों का मूल्यांकन

सीएफएसए द्वारा भारत में भुगतान प्रणालियों के संबंध में निम्नलिखित टिप्पणियां की गई हैं:

- उच्च मूल्य समाशोधन प्रणाली, जो बड़ी राशियों का समाशोधन गैरजमानती आस्थगित निवल निपटान आधार पर करती है, से वित्तीय असुरक्षा पैदा हो सकती है। इसने सिफारिश की है उच्च मूल्य वाले लेनदेनों को इससे भी ज्यादा सुरक्षित इलेक्ट्रॉनिक भुगतान प्रणालियों जैसे कि आरटीजीएस अथवा एनईएफटी प्रणालियों में ले जाया जाए।
- जब कभी परस्पर निर्भर भुगतानों की कड़ी लाइन में लग रही हो तो सभी अथवा कोई नहीं आधार पर एमएनसबी निपटान में प्रणालीगत जोखिम पैदा हो सकती है। आरटीजीएस प्रणाली में दक्ष चलनिधि प्रबंधन बैंकों के लिए सबसे ज्यादा महत्त्वपूर्ण है।
- सुपुर्दगी बनाम भुगतान सुनिश्चित करने के लिए समाशोधन निगम/समाशोधन एजेंसी के माध्यम से भुगतान प्रणाली को निक्षेपागारों (डिपॉजिटरी) से अविरल जोड़ने का एक तंत्र स्थापित करना। सीएफएसए ने समाशोधन निगम और आरटीजीएस के बीच एक निरंतर सूत्र होने की आवश्यकता पर टिप्पणी की है।
- सीसीआइएल अकेला सीसीपी है जो मुद्रा, प्रतिभूति और विदेशी मुद्रा बाजारों की आवश्यकताओं की पूर्ति करता है और वर्षों के दौरान इसकी भूमिका बढ़ती रही है जिससे एक ही संस्था पर जोखिम घनीभूत हो रहा है। इसने लेनदेन की मात्रा मे वृद्धि के साथ ऋण सीमा की अपर्याप्तता के बारे में इशारा किया। सीसीआइएल की जोखिम प्रबंधन अपर्याप्तता के प्रणालीव्यापी निहितार्थ हो सकते हैं जो विकेंद्रीकृत प्रणालियों की तुलना में और भी भयंकर होगा। यदि केंद्रीय काउंटर पार्टी फेल होने के लिए बहुत बड़ी मानी जाए तो इस केंद्रीकरण से नैतिक खतरे की समस्याएं भी पैदा हो सकती है।
- सीएफएसए ने सीसीआइएल द्वारा मौजूदा समय के दिन के अंत मे निपटान का अनुसरण करने की तुलना में पूरे दिन निपटानों को फैलाने की सिफारिश की। इसने सीसीआइएल द्वारा एलओसी बढ़ाने, सीबीएसओ और सरकारी प्रतिभूति खंड़ो में निवल नामे उच्चतम सीमा तथा बैक-टू-बैक रिपो व्यवस्था अथवा सीमित प्रयोजन हेतु बैंकिंग लाइसेंस पर विचार करने की सिफारिश की ताकि यह रिजर्व बैंक से चलनिधि सुविधा का लाभ ले सके।
- चूंकि क्रेडिट/डेबिट कार्ड संबंधी धोखाधड़िया निरंतर प्रकाश मे आ रही है अत: धोखाधड़ियो से कारगर तरीके से निपटने के लिए इस क्षेत्र में हो रही ताजातरीन घटनाओं की जानकारी से रू-ब-रू रहना होगा।
- रिज़र्व बैंक को ट्राइ तथा दूरसंचार विभाग से संपर्क करना चाहिए ताकि उन्हें एन्क्रिप्शन मानकों में किसी भी तरह की कमी के समस्त ई-कामर्स इन्फ्रास्टक्चर पर पड़नेवाले प्रतिकूल परिणामो के बारे में तथा एन्क्रिप्शन मानकों तथा समर्थक कारोबारी वातावरण बनाए रखने के बीच एक संतुलन बनाए रकने की आवश्यकता के बारे में शिक्षित किया जा सके।

# विश्वव्यापी आर्थिक संकट : भारत के परिप्रेक्ष्य में

● विजय प्रकाश श्रीवास्तव
बैंक ऑफ इंडिया
प्रधान कार्यालय, मुम्बई

विश्व अर्थव्यवस्था को विगत दो वर्षों में जिन चुनौतियों का सामना करना पड़ा है उसकी किसी ने कल्पना भी नहीं की होगी। संयुक्त राज्य अमेरिका में 2008 के शुरू में आए आर्थिक संकट ने पूरी दुनिया को हिला कर रख दिया। एक अग्रणी विकसित देश की अर्थव्यवस्था इस तरह पटरी से उतर सकती है यह अब भी लोगों के लिए अविश्वसनीय बना हुआ है। 1930 के दशक की महामंदी के बाद विश्व अर्थव्यवस्था पर संकट के ऐसे काले बादल नहीं मंडराए थे।

वैश्वीकरण के इस युग में सभी देशों की अर्थव्यवस्थाएँ एक दूसरे से जुड़ी हुई हैं। अमेरिकी अर्थव्यवस्था का बुरा हाल मुख्य रूप से सब-प्राइम संकट के कारण हुआ जिससे दुनिया के और देश भी प्रभावित हुए बिना नहीं रह सके। भविष्य के बारे में कुछ भी कहना कठिन है लेकिन भविष्य में इस प्रकार की घटनाओं की पुनरावृत्ति न हो, हमें इसके कारणों को समझना होगा और इनसे सीख लेनी होगी।

वैश्वीकरण के इस युग में सभी देशों की अर्थव्यवस्थाएँ एक दूसरे से जुड़ी हुई हैं। अमेरिकी अर्थव्यवस्था का बुरा हाल मुख्य रूप से सब-प्राइम संकट के कारण हुआ जिससे दुनिया के और देश भी प्रभावित हुए बिना नहीं रह सके।

## शुरुआत

अमेरिका में मार्गेज ऋण का कारोबार एक बुलबुले का रूप लेता जा रहा था जिसे एक दिन फटना ही था। इस कारोबार के बैठने के कारण दुनिया भर के निवेशकों की अरबों डालर की पूँजी डूब गई।

दुनिया के समृद्धिशाली देशों में गिने जाने वाले अमेरिका में सस्ती ब्याज दरों का साम्राज्य चल रहा था। वित्त प्रदायी संस्थाओं के एवं निवेश बैंकों के पास अतिरिक्त नकद राशि की अधिकता हो गई थी। इस राशि का विनियोजन करने के लिए इन संस्थाओं ने बगैर पर्याप्त सावधानी बरते हुए प्राइम दरों से निचली दरों पर कर्ज देना शुरू कर दिया। सस्ती ब्याज दरों के लालच में ऐसे लोग भी ऋण लेने के लिए सामने आ गए जिनकी ऋण चुकाने की क्षमता नहीं थी। मकान खरीदने के लिए ऐसे तमाम लोग ऋण पाने में सफल हो गए जिनकी क्रेडिट रेंटिग वांछित से कम थी। इन कर्जदारों ने अपने नए घर हेतु ऋण के लिए जो मार्जिन चुकाया वह भी निर्धारित मानकों से नीचे था। बैंकों द्वारा इस प्रकार अंधाधुंध ऋण वितरित किए जाने के पीछे निम्नलिखित दो महत्त्वपूर्ण कारण थे-

- यह मान लिया गया था कि संपत्ति को बंधक रख कर ऋण देना सुरक्षित अग्रिम है, संपत्ति का मूल्य बढ़ना ही बढ़ना है और ऋणी द्वारा किसी चूक की स्थिति में ऋण खाता किसी भी समय बंद किया जा सकता है।
- प्रतिभूतिकरण अर्थात सिक्यूरिटाइजेशन का विकल्प उपलब्ध है।

इस हिसाब से सब प्राइम ऋणों, जिसका अधिकांश हिस्सा आवास ऋणों का था, को संपार्श्विकृत ऋण देयताओं जैसे डेरिवेटिव के रूप में प्रतिभूत कर दिया गया ताकि इन्हें निवेश के काम में लाया जा सके। संपार्श्विकृत ऋण देयताओं को उच्च जोखिम उच्च लाभ वाली आस्तियों के साथ संबद्ध कर निवेशकों को इन्हें खरीदने के लिए लुभाया गया, फिर बीमा पालिसी के रूप में निर्मित ऋण चूक स्वैप्स का कारोबार भी शुरू हुआ। ऋण चूक स्वैप्स की शुरुआत संपार्श्विक ऋण देयताओं जैसी आस्तियों की वसूली में आने वाले जोखिमों से बचाव के लिखत के रूप में हुई थी लेकिन इन लिखतों का सट्टेबाजी के लिए भी इस्तेमाल किया जाने लगा। सट्टेबाजी करनेवाली ये संस्थाएँ बंधक आधारित आवासीय एवं वाणिज्यिक प्रतिभूतियों पर दांव लगाने लगी थीं जबकि उनके पास इनमें अंतर्निहित साख नहीं थी। बाहरी रेटिंग एजेंसियों द्वारा रेट किए गए ऐसे लिखत दुनिया भर में निवेशकों को बेचे

गए। इन मामलों में रेटिंग एजेंसियों ने रेटिंग कर प्रमाणपत्र तो जारी कर दिए लेकिन इसमें आवश्यक सावधानी एवं पारदर्शिता नहीं बरती। उनका उद्देश्य अधिक से अधिक कमीशन कमाना हो गया था। रेटिंग करते समय इन एजेंसियों ने बंधक रखी गयी रिहायशी आस्तियों के बाजार मूल्य को आधार बनाया था, अन्य पहलुओं जैसे संपत्ति से आय की निरंतरता आदि की उपेक्षा कर दी गई। इस वातावरण में बीमा कंपनियां भी लालच से दूर न रह सकी। जोखिम का सही मूल्यांकन किए बगैर बीमा कंपनियां बंधक रखी गयी आस्तियों का बीमा करती गईं जिसके लिए बाद में उन्हें भारी कीमत चुकानी पड़ी। आगे चल कर सब-प्राइम कर्जदारों द्वारा चूक के मामले काफी तेजी से सामने आने लगे। यह सब इतने बड़े पैमाने पर हुआ कि वित्तीय संस्थाओं के लिए संपाश्विकृत ऋण देयताओं को देय तिथि पर अदा करना मुश्किल हो गया। ऋण चूक स्वैप जैसे लिखत भी अनादरित रह गए।

ऋणों की वसूली के लिए सब प्राइम कर्ज से वित्तपोषित रिहायशी आवासों की बिक्री अब एक मात्र विकल्प बचा था। लेकिन यहां भी एक अजीब स्थिति देखने को मिली। मकानों की नीलामी की घोषणा होती लेकिन बोली लगाने वाले बाजार से गायब थे। इन मकानों को खरीदने के लिए भी ऋण की जरूरत होती पर अब बैंकों ने ऋण देना बंद कर दिया था। इन सब का परिणाम यह हुआ कि आवासीय संपत्तियों की कीमत काफी हद तक गिर गई।

स्थिति की भयावहता का अनुमान इससे लगाया जा सकता है कि अमेरिका में कई बीमा कंपनियों, जिनमें एआईजी भी शामिल है, को अपना कारोबार बंद करना पड़ा। बाद में एआईजी को फेडरल रिजर्व बैंक ने संकट से उबारा। कई निवेश बैंक भी बंद हो गए जिनमें लीमन ब्रदर्स भी शामिल है। कर्ज देने के लिए बैंकों के पास चलनिधि की कमी थी। हालात ऐसे बन गए कि बैंकों पर से जनता का विश्वास उठता गया। बैंकों में राशि जमा करने से भी लोग कतराने लगे। आवासीय संपत्तियों के बाजार मूल्य में भारी गिरावट, बीमा कंपनियों, निवेश एवं अन्य बैंकों की असफलता ने निर्माण कंपनियों एवं वित्तीय संस्थाओं के शेयर मूल्य को काफी नीचे ला दिया। निर्माण कंपनियों के मुश्किल में आने से अन्य संबंधित कारोबार जैसे सीमेंट, स्टील आदि पर भी प्रतिकूल असर पड़ा और इससे जुडी कंपनियों के शेयर मूल्य भी बहुत नीचे आ गए। कंपनियों ने खपत में कमी के मद्देनजर उत्पादन गिरा दिया जिसके कारण बड़ी संख्या में श्रमिकों की छंटनी शुरू हो गई। यह संकट केवल अमेरिका तक सीमित न रह कर यूरोपीय देशों ग्रेट ब्रिटेन, जर्मनी तथा एशिया में जापान में भी पहुँचा और एक तरह से पूरी दुनिया इसकी चपेट में आ गई।

अमेरिका में संकट को हल करने के लिए युद्ध स्तर पर कार्य शुरू हुआ। मेरिल लिंच को बैंक ऑफ अमेरिका ने 5 अरब अमेरिकी डालर में खरीदा। यू एस फेडरल रिजर्व ने एआईजी को 4 अरब अमेरिकी डालर दे कर संभाला। बैंकिंग प्रणाली में चलनिधि लाने के लिए बुश प्रशासन ने 700 खरब अमेरिकी डालर के पैकेज की घोषणा की। फरवरी 2001 में ओबामा प्रशासन ने 767 खरब डालर की राशि और जारी की ताकि अमेरिका का पूँजी खाता मजबूत बन सके। इन सभी उपायों के पीछे मूल उद्देश्य बैंकिंग प्रणाली में लोगों के विश्वास को वापस लाना था लेकिन ये सभी उपाय अस्थायी पाए गए क्योंकि समस्या की जड़ें गहरी थीं।

## राहत उपाय

अप्रैल 2009 में जी-20 देशों की बैठक में विश्वव्यापी आर्थिक संकट पर विस्तृत विचार विमर्श के पश्चात संकट से उबरने हेतु एक विशाल पैकेज मंजूर करने पर सहमति जाहिर की गई। बैठक में टैक्स हैवेन्स को काली सूची में डालने, वित्तीय मानकों को सख्त बनाने एवं साख रेटिंग एजेंसियों आदि पर निगरानी रखने की योजना पर भी हस्ताक्षर किए गए। इसी बैठक में यह भी निर्णय लिया गया कि इस वर्ष के अंत तक विश्व उत्पादन में 4 प्रतिशत की बढ़ोत्तरी की जाय। इस बैठक के निर्णयों पर प्रतिक्रिया व्यापक रूप से सकारात्मक रही और अमेरिका के शेयर बाजार में बढ़ोत्तरी देखी गई। मई 2009 में अमेरिका में फेडरल विनियामकों ने 19 सबसे बड़े बैंकों का सख्त मूल्यांकन किया। इनमें से 10 बैंक मुश्किल में पाए गए जो न्यूनतम पूँजी आवश्यकताओं को भी पूरा कर पाने में सक्षम नहीं थे। इन 10 बैंकों की कुल पूँजी

आवश्यकता 74 खरब अमेरिकी डालर आंकी गई। लेकिन इस मूल्यांकन से यह साबित हो गया कि अमेरिका की बैंकिंग प्रणाली पूरी तरह कमजोर नहीं हुई है और यह अपनी वचनबद्धताओं को पूरा करने में समर्थ है। इस तथ्य पर भी ध्यान दिलाया गया कि पूँजी की पर्याप्तता अथवा आकार के साथ पूँजी की गुणवत्ता भी महत्त्वपूर्ण है।

सब प्राइम संकट से सबक लेकर अमेरिका के कमजोर बैंकों ने ऋण वितरण का कार्य काफी हद तक सीमित कर दिया है लेकिन ऋण उपलब्धता में इस अंतर को पूरा करने के लिए सरकार समर्थित बैंक आगे आए हैं। फेडरल रिजर्व ने पिछले एक वर्ष में अपने द्वारा दिए जाने वाले ऋण की मात्रा में 12,000 खरब अमेरिकी डालर की वृद्धि की है। अमेरिका के साथ दुनिया के और कई बड़े देशों की सरकारों ने मौजूदा आर्थिक संकट का सामना करने के लिए उपायों की घोषणा की है।

ब्रिटिश सरकार ने वित्तीय संस्थानों को 400 खरब पाउंड की मदद पहुंचाई। इसमें से 50 खरब पाउंड बैंकिंग उद्योग को दिए गए। 250 खरब पाउंड के नए बैंक ऋणों की गारंटी दी तथा बैंक ऑफ इंग्लैंड की अल्पकालिक ऋण योजना में 100 खरब पाउंड जोड़े। सरकार ने दो बड़े बैंकों रायल बैंक ऑफ स्काटलैंड एवं हॅलिफैक्स बैंक ऑफ स्काटलैंड का नियंत्रण अपने हाथ में ले लिया। जापान ने 276 खरब अमेरिकी डालर के प्रोत्साहन पैकेज की घोषणा देश की अर्थव्यवस्था को मजबूत करने के लिए की है। बैंक ऑफ जापान ने वित्तीय प्रणाली में करीब 29 खरब डालर डाले एवं 0.3 प्रतिशत ब्याज कटौती भी लागू की। यूरोपीय कमीशन ने 200 खरब यूरो का प्रोत्साहन पैकेज घोषित किया ताकि क्रय शक्ति में वृद्धि हो तथा विकास एवं रोजगार सृजन की दर बढ़े। चीन भी 586 खरब डालर का प्रोत्साहन पैकेज ला चुका है।

ये सभी उपाय वित्तीय प्रणाली में चलनिधि लाने में सहायक हैं। लेकिन संकट को पूरी तरह से मिटा पाने में ये उपाय कहां तक सफल होंगे यह तो समय ही बताएगा।

## भारत पर प्रभाव

अमेरिका में आए वित्तीय संकट को शुरू में भारत में गंभीरता से नहीं लिया गया। इसके लिए कई कारण गिनाए जा सकते हैं। 12-13 प्रतिशत की पूँजी पर्याप्तता के साथ बैंकिंग प्रणाली की वित्तीय सुदृढ़ता इनमें से एक है। बैंकों की शुद्ध अनर्जक आस्ति एक प्रतिशत से कम है और कुल आस्तियों पर शुद्ध लाभ एक प्रतिशत के करीब है। भारतीय बैंकों की स्थिति इसलिए भी मजबूत पाई गयी क्योंकि इनका ऋण जमा अनुपात लगभग 70 प्रतिशत है। भारत में 65 प्रतिशत जमाराशियां सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों के पास हैं जिन पर भारत सरकार का स्वामित्व है। भारतीय वित्तीय बाजार पर भारतीय रिजर्व बैंक एवं भारतीय प्रतिभूति एवं विनिमय बोर्ड (सेबी) जैसे विनियामकों की कड़ी निगरानी रहती है।

इन सभी तथ्यों के बावजूद थोड़े समय बाद यह महसूस किया जाने लगा कि वित्तीय बाजार का स्वरूप वैश्विक होने के कारण भारतीय बैंक अलग-अलग नहीं रह सकते एवं वैश्विक मंदी की उपेक्षा नहीं कर सकते। विश्व बाजार में आई मंदी का असर क्रमश: भारत में भी दिखने लगा। बॉम्बे स्टाक एक्सचेंज का सूचकांक जो 20000 को पार कर गया था गिरकर इसके करीब एक चौथाई तक पहुँच गया। अमेरिका, यूरोप एवं जापान में आए संकट ने भारत की कई निर्यातोन्मुख इकाईयों के कारोबार पर काफी प्रतिकूल असर डाला। इन निर्यातकों को खरीदार नहीं मिल रहे थे। इन कारणों से अक्तूबर 2008 में भारत में औद्योगिक उत्पादन की दर नकारात्मक थी। 2008-09 में औद्योगिक उत्पादन सिर्फ 2.4 प्रतिशत की दर से बढ़ा जबकि 2007-08 में यह दर 8.5 प्रतिशत थी। वित्तीय संकट गहराने के साथ विदेशी संस्थागत निवेशकों ने भारत में निवेश की गई अपनी पूंजी को वापस अमेरिका ले जाना शुरू कर दिया क्योंकि वहां नकदी की कमी थी। इसके चलते भारत में भी चलनिधि का संकट दिखाई देने लगा और भारतीय बैंकों के सामने समस्या खड़ी हो गई कि वे नए ऋण देने के लिए राशि कहां से लाएं। स्थिति की गंभीरता को देखते हुए भारतीय रिज़र्व बैंक एवं भारत सरकार ने कई वित्तीय एवं मौद्रिक उपायों की घोषणा की। आरक्षित नकदी निधि अनुपात (सीआरआर), सांविधिक चलनिधि अनुपात (एसएलआर) एवं रेपो दर में कटौती कर देश की वित्तीय प्रणाली में 3,00,000 करोड़ रुपए डाले गए। निश्चित रूप से इससे तरलता की स्थिति में सुधार हुआ। मुद्रास्फीति की दर भी गिरकर काफी नीचे आ गई।

मुद्रास्फीति की दर घटने का एक कारण अंतरराष्ट्रीय बाजार में तेल के भावों में कमी आना भी था। लेकिन उद्योग एवं सेवा दोनों क्षेत्रों के खराब निष्पादन के कारण सकल घरेलू उत्पाद की दर 6 प्रतिशत पर आकर ठहर गई थी। भारत की ज्यादातर सूचना प्रौद्योगिकी कंपनियों के कारोबार का बड़ा हिस्सा भारत से बाहर का है। वित्तीय संकट का इन कंपनियों पर भी बुरा असर हुआ और जो कंपनियां थोड़े समय पहले तक बड़ी संख्या में लोगों की भर्ती कर रही थीं, वे भी कर्मचारियों की छंटनी के विषय में सोचने लगीं।

आर्थिक संकट के कठिन दौर में संकट के दुष्प्रभावों को कम करने के लिए हमारे देश की सरकार एवं भारतीय रिज़र्व बैंक ने जो सामयिक कदम उठाए, वे वास्तव में सराहनीय हैं। इनकी वजह से स्थिति ज्यादा बिगड़ने से पहले ही संभल गई। सकल घरेलू उत्पाद की वृद्धि दर एवं अर्थव्यवस्था की सामान्य हालत देखते हुए दुनिया के देशों के बीच भारत एवं चीन की प्रगति को उल्लेखनीय माना जा रहा है। 2008-09 में विश्व स्तर पर विदेशी संस्थागत निवेश में जहां 14.5 प्रतिशत की कमी हुई, भारत में यह निवेश 85% बढ़ा। विदेशी संस्थागत निवेशक समझते हैं कि और देशों की तुलना में भारतीय बाजार ज्यादा सुरक्षित है।

सरकार द्वारा दिए गए प्रोत्साहन पैकेज में मूलभूत सुविधाओं (इन्फ्रास्ट्रक्चर) से जुड़ी परियोजनाओं पर जोर दिया गया है। ऐसा दो फायदों को ध्यान में रखकर किया गया है - एक तो इससे सकल मांग बढ़ेगी दूसरे बुनियादी सुविधाओं के विकास से देश की दीर्घकालिक आर्थिक प्रगति का आधार मजबूत होगा।

## वर्तमान स्थिति

इन पंक्तियों को लिखते समय अमेरिका, जो आर्थिक मंदी से बुरी तरह प्रभावित हुआ था, से खबरें मिलने लगी थीं कि वहां मंदी के बादल छंटने लगे हैं। अक्तूबर 2009 में अमेरिकी उपभोक्ताओं द्वारा किया जाने वाला व्यय उम्मीद से ज्यादा बढ़ा। रोजगारहीन लोगों द्वारा सरकारी मदद के लिए दिए गए आवेदनों की संख्या वर्ष के न्यूनतम स्तर तक रही। सितंबर 2009 में उपभोक्ताओं द्वारा किए जाने वाले खर्च में जहां 0.6 प्रतिशत की कमी आई थी वहीं अगले माह अक्टूबर में इसमें 0.7 प्रतिशत की बढ़ोतरी हुई। अमेरिकी शासन के श्रम विभाग द्वारा जारी रिपोर्टों में कहा गया है कि बेरोजगारी भत्तों या लाभों के लिए मिलने वाले आवेदनों की संख्या में सप्ताह दर सप्ताह गिरावट हो रही है। इसका अर्थ यह हुआ कि रोजगार के अवसर बढ़ रहे है। इन बातों से संकेत मिलता है कि अमेरिकी अर्थव्यवस्था में सुधार को गति मिल रही है।

अमेरिकी स्टाक इंडेक्स फ्यूचर्स में भी इधर लगातार वृद्धि हो रही है। यह दर्शाता है कि निकट भविष्य में लोग कंपनियों की बिक्री में सुधार की आशा लगाए बैठे हैं। पिछले अनुभवों से सबक लेकर अमेरिकी सरकार अब आर्थिक मामलों में फूंक-फूंक कर कदम उठा रही है।

## भारत में मौजूदा स्थिति

जैसा कि पहले बताया गया है विश्वव्यापी आर्थिक संकट का असर भारत में उतना गहरा नहीं रहा जितना दुनिया के और देशों में। इससे भी अधिक राहत की बात यह रही कि मंदी का असर जल्दी ही दूर होने लगा।

सितंबर 2009 में समाप्त तिमाही के लिए भारतीय कंपनियों ने जो वित्तीय परिणाम घोषित किए हैं वे अर्थव्यवस्था में मांग एवं उपभोक्ता व्यय में वृद्धि का संकेत देते हैं। अधिकांश कंपनियों के शुद्ध मुनाफे में बढ़ोत्तरी हुई है। औद्योगिक उत्पादन की दर में लगातार सुधार हो रहा है। तमाम कंपनियां जिन्होंने अपनी विस्तार योजनाओं को रोक दिया था, अब इन पर फिर से काम करने लगी हैं और इस दृष्टि से नए लोगों की भर्ती भी करने लगी हैं जिसका स्पष्ट प्रभाव रोजगार के परिदृश्य पर दिखने लगा है।

भारत में मंदी की सबसे अधिक मार रियल्टी अर्थात जमीन जायदाद का कारोबार करने वाली कंपनियों पर पड़ी थी। इन कंपनियों का बाजार मूल्य अचानक से नीचे आ गया था। रियल्टी बाजार में अब वापस जान आ चुकी है। बीच में भारतीय बैंकों ने अपने द्वारा दिए जाने वाले आवास एवं वाहन ऋणों की संख्या काफी कम कर दी थी। अब ये फिर से

रियायती एवं आकर्षक ब्याज दरों पर ऋण देने की पेशकश कर रहे हैं, भले ही वे ग्राहकों के चयन एवं उनके मूल्यांकन में अधिक सावधानी बरत रहे हों।

मंदी के असर से भारतीय शेयर बाजार भी एक प्रकार से सुप्तावस्था में आ गया था। शेयरों का मूल्य काफी कम हो जाने के बावजूद बाजार से खरीदार नदारद थे। थोड़े उतार चढ़ाव के बाद बीएसई का सूचकांक 17000 को पार कर चुका है और उच्चतम स्तर से ज्यादा दूर नहीं हैं।

भारत में आजादी के बाद मिश्रित अर्थव्यवस्था अपनायी गई थी और अनेक उद्योग सरकारी निवेश से शुरू किए गए थे। कुछेक अपवादों को छोड़ कर देश में सार्वजनिक क्षेत्र की कंपनियों की उत्पादकता बेहतर होती जा रही है एवं उनका लाभ भी बढ़ रहा है। यह कहना गलत न होगा कि भारतीय अर्थव्यवस्था की सार्वजनिक क्षेत्र पर आंशिक निर्भरता ने भी अर्थव्यवस्था को मंदी के संकट से उबरने में मदद की है।

आर्थिक सुधारों के कई प्रस्तावों से केन्द्र सरकार ने अपना ध्यान हटाकर मंदी से निबटने को अपनी प्राथमिकता बना ली थी। अब इन प्रस्तावों पर सरकार फिर से विचार करने लगी है और चूंकि नयी सरकार ज्यादा मजबूत है, इसे प्रस्तावों को लागू करने में अधिक दिक्कत नहीं आनी चाहिए। पिछले कुछ वर्षों से भारतीय अर्थव्यवस्था दुनिया में सबसे तेजी से प्रगति कर रही अर्थव्यवस्थाओं में से एक रही है। हो सकता है अगले 1-2 वर्षों में प्रगति की यह रफ्तार और तेज हो जाय। भले ही विश्वव्यापी आर्थिक संकट का भारत जैसे विकासशील देश की अर्थव्यवस्था पर उतना गहरा असर न पड़ा हो हमें इसे गंभीरता से लेने की जरूरत है और उन सभी कारणों को अपने देश में घटित होने से रोकना है जिनसे यह संकट उत्पन्न हुआ।

देश के लिए एक बड़ी चुनौती आर्थिक विकास की एक न्यूनतम दर सुनिश्चित करना तो है ही, यह भी है कि कोई ऐसा संकट हमारी अर्थव्यवस्था पर न आए जैसा कि अमेरिका एवं कई अन्य विकसित देशों के सामने आया है।

भारतीय बैंक इस संकट से अनेक सबक ले सकते हैं। उन्हें अपने परिचालनों में ऋण निगरानी एवं ऋण मूल्यांकन जैसे पहलुओं की उपेक्षा नहीं करनी चाहिए। ऋण मूल्यांकन की गुणवत्ता में भारतीय बैंकों को और सुधार लाने की जरूरत है। यह कारोबार अथवा उद्यम से अर्जित आय पर आधारित होनी चाहिए और केवल आस्तियों या प्रतिभूतियों के मूल्य पर नहीं। ऋण मंजूरी एवं आवधिक समीक्षा के समय पर्याप्त सावधानी बरतना जरूरी है। ऋणों की वसूली के लिए बैंक प्रतिभूतिकरण पर ज्यादा निर्भर रहने की बजाय ऋण किस्तों की नियमित वसूली सुनिश्चित करें तो बेहतर होगा। बैंकों के ऋण पोर्टफोलियो में विविधता जरूरी है। ताकि कुछ खास क्षेत्रों को उनके ऋणों की बहुतायत न रहे। ब्याज एवं शुल्क से अधिकाधिक आय जुटाने के ज्यादा लालच में न पड़ते हुए बैंकों को अनाप-शनाप ऋण देने से बचना चाहिए। रेटिंग एजेंसियों एवं बीमा कंपनियों को भी अपनी भूमिका और गंभीरता से लेने की जरूरत है।

**किसी भी तरह की सहायता कमज़ोरी का ही संकेत देती है,**
**वास्तव में यह सुधार करने का ही संकेत है।**

# अंतरराष्ट्रीय आर्थिक मंदी का भारत पर असर

● निधि चौधरी
प्रबन्धक
भारतीय रिज़र्व बैंक, कोलकाता

अंतरराष्ट्रीय आर्थिक मंदी आज विश्व के सभी देशो में गहरे तक उतर आई है और शायद ही कोई ऐसा देश हो जो इससे अछूता रहा हो। यही कारण है कि विश्व प्रसिद्ध अर्थशास्त्री पॉल क्रुगमैन वर्तमान आर्थिक मंदी की तुलना 1930 की महामंदी से करते हैं और कई मायनो में तो इसे 1930 की महामंदी से भी अधिक नुकसानदायक मानते हैं। परस्पर निर्भरता और वैश्वीकरण के इस दौर में अंतरराष्ट्रीय अर्थव्यवस्था में आई मंदी से विकासशील देश अछूते नहीं रह सकते हैं तथापि मंदी का संक्रमण उभरती अर्थव्यवस्थाओं में उतना नहीं है जितना विकसित अर्थव्यवस्थाओं में क्योंकि मंदी का असर मुक्त बाजार अर्थव्यवस्था के स्वरूप पर निर्भर करेगा। रिज़र्व बैंक की वार्षिक रिपोर्ट, 2009 के अनुसार, मंदी के बावजूद जो उभरती बाजार अर्थव्यवस्थाएं अब तक उल्लेखनीय रूप से प्रभावित नहीं हुई हैं, उनमें तीव्र गति से वृद्धि जारी रहेगी तथा वे वैश्विक वृद्धि का समर्थन करेंगी क्योंकि घरेलू मांग उभरती बाजार व्यवस्थाओं में वृद्धि की मुख्य चालक है।

रिज़र्व बैंक की वार्षिक रिपोर्ट, 2009 के अनुसार, मंदी के बावजूद जो उभरती बाजार अर्थव्यवस्थाएं अब तक उल्लेखनीय रूप से प्रभावित नहीं हुई हैं, उनमें तीव्र गति से वृद्धि जारी रहेगी तथा वे वैश्विक वृद्धि का समर्थन करेंगी क्योंकि घरेलू मांग उभरती बाजार व्यवस्थाओं में वृद्धि की मुख्य चालक है।

आईएमएफ के अनुसार ''अमरीकी जीडीपी में 1% की गिरावट होने पर यूरोपीय अर्थव्यवस्थाओं में 0.5% की गिरावट आती है और इन दोनों के संयुक्त प्रभाव को हिसाब में लेने पर उभरती बाजार अर्थव्यवस्थाओं में 0.75% की गिरावट की संभावना रहती है।'' उभरती बाजार अर्थव्यवस्थाओं पर मंदी का जोखिम मुख्यत: व्यापार एवं वित्तीय संपर्क से होता है । इसी जोखिम से बचने की प्रवृति में वृद्धि ने अनेक उभरती बाजार अर्थव्यवस्थाओं में निजी बांड निर्गम में मंदी ला दी है तथा पूंजी आवक की संभावना भी समाप्त होती दिख रही है किन्तु मंदी का प्रतिकूल असर विकासशील देशो की बीपीओ कंपनियों और रियल एस्टेट में तत्काल प्रभाव से पड़ा है ।

उन अर्थव्यवस्थाओं पर मंदी का अधिक असर पड़ा है जो अमरीका के साथ भारी मात्रा में व्यापार करती हैं अथवा जो अपनी वृद्धि के वित्तपोषण के लिए ज्यादातर बाह्य देशों पर निर्भर करती हैं । एक शुभ संकेत यह है कि पिछले कुछ वर्षों में उभरती अर्थव्यवस्थाओं का आपस में व्यापार बढ़ा है और अमरीका के साथ घटा है । उभरती विकासशील अर्थव्यवस्थाओं के मंदी से अप्रभावित रहने की उनकी योग्यता तथा उनके लचीलेपन की मात्रा दो कारकों पर निर्भर करेगी (1) वैश्विक अर्थव्यवस्थाओं में निरन्तर समेकन से उत्पादकता लाभ कमाना एवं (2) समष्टि आर्थिक नीतिगत ढांचे में सुधार से स्थिरीकरण लाभ ।

## अंतरराष्ट्रीय आर्थिक मंदी और भारतीय अर्थव्यवस्था

प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह का कहना है कि ''जहां तक भारतीय अर्थव्यवस्था पर अंतरराष्ट्रीय आर्थिक मंदी के प्रभाव का प्रश्न है, हम इससे अधिक प्रभावित नहीं होंगे, क्योंकि हमारे यहां बैंकों ने अमरीका की तर्ज पर उधार नहीं दिया है... वैश्विक अर्थव्यवस्था में मंदी से हमारी अर्थव्यवस्था पर बहुत कम प्रभाव पड़ेगा।'' तथापि वैश्वीकरण को अपनाने के कारण भारतीय अर्थव्यवस्था अंतरराष्ट्रीय अर्थव्यवस्था में काफी सीमा तक समन्वित हो गयी है जिसके कारण वर्तमान अंतरराष्ट्रीय मंदी कई माध्यमों से भारत को भी प्रभावित कर सकती है, विशेषकर अग्रलिखित पहलुओं को-

## विदेशी पूंजी भंडार

विगत दशक में सुदृढ़ आर्थिक मूलभूत तत्वों के साथ बड़ी मात्रा में विदेशी पूंजी के अंतर्वाह से भारत में विदेशी मुद्रा भंडार

बढ़ा है किन्तु मौजूदा वित्तीय संकट में भारत में विदेशी प्रत्यक्ष निवेश और विदेशी संस्थागत निवेश घट सकता है तथा विदेशी निवेशक अपनी पूंजी वापस भी खींच सकते हैं । साथ ही, भारतीय कम्पनियों को विदेशी बैंकों के पास पूंजी का अभाव एवं ब्याज दरों में वृद्धि से वित्तीय संसाधन जुटाने में कठिनाइयां हो सकती हैं ।

## भुगतान संतुलन

उच्च विदेशी मुद्रा भंडार के कारण भारत की स्थिति विगत वर्षों में भुगतान संतुलन के लिए अच्छी बनी हुई है किन्तु मंदी के कारण प्रवासी भारतीयों के बेरोजगार होने या आमदनी कम होने से उनके द्वारा भेजी जाने वाली रकम में गिरावट आई है, निर्यातित माल की मांग में कमी हुई है, देशी-विदेशी कंपनियों द्वारा कारोबार का पैमाना घटाने से रोजगार के अवसरों में कटौती, डॉलर के मुकाबले भारतीय मुद्रा के विनिमय मूल्य का ह्रास होने से भुगतान संतुलन प्रतिकूल हुआ है ।

## आर्थिक विकास दर

निवेश, व्यापार और वित्तीय संबंधों के ज़रिए अमरीका में आई मंदी ने देश की विकास दर को काफी सीमा तक प्रभावित किया है जैसा कि तालिका 1 से स्पष्ट है कि पिछले 5 वर्षों से 8 प्रतिशत से अधिक की दर से बढ़ रहा सकल घरेलू उत्पाद वर्ष 2008-09 में घटकर सिर्फ 6.7 प्रतिशत रह गया है । भारतीय रिज़र्व बैंक द्वारा जारी वार्षिक नीति विवरण में वर्ष 2009-10 के लिए आर्थिक विकास दर घटकर 6 प्रतिशत रह जाने का अनुमान लगाया गया है ।

## विदेशी बाजारों पर निर्भरता

भारत विश्व व्यापार व्यवस्था में शामिल जरूर है लेकिन उसका निर्यात सामान और बाजार के आधार पर विविधता से भरा है। फिर भी इसका असर भारतीय अर्थव्यवस्था पर होने की चिंता बनी हुई है क्योंकि हमारा देश अपने उत्पादों के निर्यात और विदेशी पूँजी जुटाने के लिए कुछ सीमा तक अमरीका पर निर्भर है। अमरीकी संकट का असर तब सामने आया जब

**तालिका 1: 1999-2000 मूल्यों पर कारक आधारित वृद्धि दर (प्रतिशत)**

| | 2003-04 | 2004-05 | 2005-06 | 2006-07 | 2007-08 | 2008-09 |
|---|---|---|---|---|---|---|
| कृषि, वानिकी, मत्स्ययन | 10.0 | - | 5.8 | 4.0 | 4.9 | 1.6 |
| खनन | 3.1 | 8.2 | 4.9 | 8.8 | 3.3 | 3.6 |
| उत्पादन | 6.6 | 8.7 | 9.1 | 11.8 | 8.2 | 2.4 |
| विद्युत, गैस एवं जलापूर्ति | 4.8 | 7.9 | 5.1 | 5.3 | 5.3 | 3.4 |
| निर्माण | 12.0 | 16.1 | 16.2 | 11.8 | 10.1 | 7.2 |
| व्यापार, होटल एवं भोजनालय | 10.1 | 7.7 | 10.3 | 10.4 | 10.1 | 9.0 |
| यातायात, भंडारण एवं संचार | 15.3 | 15.6 | 14.9 | 16.3 | 15.5 | 9.0 |
| वित्त, बीमा, रियल एस्टेट एवं वाणिज्यिक सेवाएँ | 5.6 | 8.7 | 11.4 | 13.8 | 11.7 | 7.8 |
| सामुदायिक, सामाजिक एवं निजी सेवाएँ | 5.4 | 6.8 | 7.1 | 5.7 | 6.8 | 13.1 |
| **सकल घरेलू उत्पाद (कारक मूल्य पर)** | **8.5** | **7.5** | **9.5** | **9.7** | **9.0** | **6.7** |

स्रोत: केन्द्रीय सांख्यिकीय संगठन

विदेशी निवेशकों ने सितम्बर-अक्तूबर 2008 में 13.3 बिलियन अमरीकी डालर भारतीय बाजार से खींच लिए परिणामस्वरूप डालर की तुलना में भारतीय मुद्रा 21.2 फीसदी की दर से अवमूल्यित हुई जो वर्ष 1991 के आर्थिक संकट के बाद सबसे बड़ा अवमूल्यन था।

## पूंजी बाजार में गिरावट

मौजूदा आर्थिक संकट से एशिया में सर्वाधिक प्रभावित बाजारों में भारतीय पूंजी बाजार भी है जो 20000 के स्तर से गिरकर 9000 से नीचे आ गया और भारतीय बाजार को अकेले जनवरी 2008 में 450 बिलियन अमेरीकी डालर का नुकसान उठाना पड़ा । भारतीय शेयर बाजार में उछाल से जो कंपनियां अरबपति बन गई थीं, मंदी के असर से उनकी संख्या 227 से घट कर मात्र 139 रह गई है । टाटा मोटर्स और हिंडाल्को जैसी कम्पनियो ने अपने प्रेफरेंस शेयरों को जारी करना रोक दिया है। यहां यह बताना मुनासिब होगा कि अमरीकी बाजार डाउ जोन्स में होने वाली कोई भी हलचल से भारतीय स्टाक बाजार घनिष्ठ रूप से प्रभावित होता है विशेषकर संकटपूर्ण स्थितियों में। तालिका 2 से स्पष्ट है कि अगस्त 2007 और दिसम्बर 2007 में डाउ जोन्स में हुई भयानक गिरावट से भारतीय बाजार भी उतनी ही गंभीरता से प्रभावित हुआ।

**तालिका 2: बीएसई सेन्सेक्स एवं डाउ जोन्स के मध्य अंतर्सम्बन्ध (%)**

| अवधि | कोरिलेशन गुणांक (Correlation coefficient) |
|---|---|
| 2005 | 0.31 |
| 2006 | 0.38 |
| 2007 | 0.56 |
| अगस्त 07 | 0.48 |
| सितम्बर 07 | 0.86 |
| अक्तूबर 07 | 0.05 |
| नवम्बर 07 | 0.48 |
| दिसम्बर 07 | 0.53 |
| जनवरी 08 | 0.67 |
| फरवरी 08 | 0.21 |
| मार्च 08 | 0.07 |
| अप्रैल 08 | 0.74 |
| मई 08 | 0.89 |
| जून 08 | 0.90 |
| जुलाई 08 | 0.51 |
| अगस्त 08 | 0.32 |
| सितम्बर 08 | 0.79 |

स्रोत: ब्लूमबर्ग डाटाबेस

> भारत में पिछले कुछ वर्षों में बैंकिंग क्षेत्र की लाभप्रदता और आस्ति गुणवत्ता सम्बन्धी मानदंडों में तीव्र सुधार हुआ है जिससे इस क्षेत्र में लचीलापन आया है किन्तु वर्तमान संकट से जिस तरह देश के कई नामी बैंकों के बारे में अफ़वाहों का बाजार गर्म हुआ उससे स्पष्ट है कि मंदी से बैंकिंग तंत्र भी प्रभावित हुआ है ।

## बैंकिंग

भारत में पिछले कुछ वर्षों में बैंकिंग क्षेत्र की लाभप्रदता और आस्ति गुणवत्ता सम्बन्धी मानदंडों में तीव्र सुधार हुआ है जिससे इस क्षेत्र में लचीलापन आया है किन्तु वर्तमान संकट से जिस तरह देश के कई नामी बैंकों के बारे में अफ़वाहों का बाजार गर्म हुआ उससे स्पष्ट है कि मंदी से बैंकिंग तंत्र भी प्रभावित हुआ है । मंदी के कारण ब्याज दरे में वृद्धि एवं शेयर बाजार में गिरावट से बैंकों में अनर्जक परिसंपत्तियो का स्तर बढ़ सकता है।

भारतीय बैंकों का संकटग्रस्त वैश्विक बैंकों या संस्थाओं के साथ व्यवसाय नुकसानदायक हो सकता है तथापि यह इतना नहीं है कि भारतीय बैंकों का तुलनपत्र प्रबंधन प्रभावित हो । भारतीय रिज़र्व बैंक और केन्द्रीय सरकार द्वारा संयुक्त रूप से गठित विशिष्ट समिति (CFSA) के अनुसार भारतीय वित्तीय तंत्र मूलत: सुदृढ़ है और भारतीय बैंक वर्तमान वैश्विक संकट का सामना करने में पूर्णत: सक्षम हैं ।

## भारत में अंतरराष्ट्रीय मंदी से सर्वाधिक प्रभावित होने वाले क्षेत्र

यह सच है कि यदि मंदी समुद्र के मध्य में भँवर बनकर आई

है तो हम किनारे की हलचलों की भांति ही प्रभावित होंगे किन्तु वैश्विक समाज की ये हलचलें भी हमारी अर्थव्यवस्था के कुछ क्षेत्रो को अधिक प्रभावित कर सकती हैं, जैसे-

## वित्तीय क्षेत्र

निश्चित तौर पर वित्तीय संकट का थोड़ा-बहुत असर बैंक, बीमा एवं अन्य वित्तीय संस्थानों पर जरूर पड़ेगा । पिछले दिनों आईसीआईसीआई एवं एसबीआई जैसे दिग्गज बैंकों को लेकर अफ़वाहें उड़ी थीं किन्तु आरबीआई ने यह घोषणा कर जनता को विश्वास दिलाया कि भारतीय बैंकों का एक्सपोज़र वैश्विक बाजार में इतना नहीं कि कोई बड़ा नुकसान हो । बीमा क्षेत्र में थोड़ी मंदी आ सकती है, यद्यपि आशंका के विपरीत एआईजी के साथ मिलकर काम कर रही टाटा को बहुत नुकसान नहीं हुआ है। स्टॉक बाजार की माली हालत से निवेशक चिंतित हैं अपितु उन्हें आश्वस्त रहना चाहिए क्योंकि भारतीय अर्थव्यवस्था की नींव मज़बूत है ।

## रोजगार

इस मंदी के परिणामस्वरूप अनेक विदेशी निवेशक भारत से अपने हाथ खींच सकते हैं जिनसे जुड़े तमाम लोग बेरोज़गार हो सकते हैं । उदाहरणार्थ लीमन ब्रदर्स ने ही भारत में ढ़ाई हजार लोगों को रोजगार विहीन बना दिया है । देश की पाँच प्रमुख बीपीओ कंपनियों - टीसीएस, इंफ़ोटेक, विप्रो, सत्यम और एचसीएल टेक्नोलॉजी में कार्यरत 23 लाख युवकों की नौकरियां खतरे में पड़ गई हैं क्योंकि इनकी सेवाओं की खरीददार मुख्यतया अमरीकी कॉरपोरेशन है । वाणिज्य मंत्रालय द्वारा कराए गए एक सेम्पल सर्वेक्षण के अनुसार अगस्त से अक्तूबर 2008 के बीच 1,09,513 लोगों ने केवल निर्यात सम्बन्धी कम्पनियों जैसे वस्त्रोद्योग, चर्मोद्योग, अभियांत्रिकी, आभूषण उद्योग, हस्तशिल्प आदि में नौकरियां खोई हैं ।

## पोर्टफोलियो निवेश

वैश्विक मंदी का सबसे ज्यादा असर पोर्टफोलियो निवेश पर पड़ा है जिसका प्रत्यक्ष असर विदेशी हस्तांतरण रिजर्व पर पडेग़ा किन्तु भारत के पास विदेशी मुद्रा का पर्याप्त भंडार मौजूद है, इसलिए किसी भी नकारात्मक प्रभाव को असरहीन करना संभव है । तथापि मंदी का लम्बे समय तक गहराना भारत के लिए भी चिन्ताजनक हो सकता है ।

## आम निवेशक एवं पेंशन

शेयर बाजार की गिरावट उनका नुकसान करेगी, जिन्होंने पैसे से पैसा बनाने के फेर में कम अवधि के लिए पूंजी लगाई है। जिन निवेशकों ने दीर्घावधि निवेश किया है, उन्हें घाटा नहीं होगा। जहां तक पेंशन का प्रश्न है, अधिकतर सरकारी और निजी कंपनियां पेंशन का पैसा प्राय: बाज़ार में नहीं लगाती हैं किन्तु यदि किसी कंपनी ने बाज़ार में पैसा लगाया है तो मंदी के दिनों में सेवानिवृत्त हो रहे लोगों को नुकसान होगा।

## रियल एस्टेट

वैश्विक मंदी का सर्वाधिक असर जिस क्षेत्र पर पड़ा है वह है- रियल एस्टेट । उदाहरणार्थ रियल एस्टेट की अगुआ कंपनियों डीएलएफ़, यूनिटेक और अंसल्स प्रापर्टीज आदि इस भूचाल में उखड़ गए हैं । आधारभूत क्षेत्र की जयप्रकाश एसोशिएट, जेपी हाइड्रो, रिलांयस पावर और रिलांयस इंफ़्रास्ट्रक्चर का भी कमोबेश यही हाल है ।

## मंदी के प्रभाव को कम करने के उपाय

इस मंदी से उबरने के लिए सभी देशों द्वारा आवश्यक कदम उठाए गए हैं जैसे अमरीकी कॉंग्रेस ने सात खरब डॉलर के बेल-आउट पैकेज की घोषणा की है, जर्मनी ने भी अपने बैंकों को दिवालियेपन से बचाने हेतु बड़ी मुक्ति-राशि की घोषणा की है इत्यादि । ज़रूरी है कि मंदी-प्रभावित संस्थान शीघ्रातिशीघ्र अपने असली और पूरे नुक़सान को स्वीकारें ताकि पारदर्शी तरीके से वास्तविक नुक़सान का आकलन करके तदनुरूप सुधार लागू किए जा सकें। जहाँ तक भारतीय अर्थव्यस्था का प्रश्न है हम आर्थिक मंदी से अधिक प्रभावित नहीं हुए हैं, फिर भी जो कदम उठाए जा सकते हैं वे हैं-

## बैंकिंग सुधार

बैंकों और वित्तीय संस्थाओं को सतर्क करने और उन्हें उन उधारकर्ताओं के प्रति जागरूक करने के लिए, जिन्होंने अन्य उधारदाता संस्थाओं के प्रति ऋण अदायगी में चूक की है, एक सुदृढ़ ऋण सूचना प्रणाली स्थापित करनी होगी । यही कारण है कि भारतीय बैंकिंग प्रणाली को अधिक समुत्थानशील बनाकर

सर्वोत्तम अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिबद्धताओं के साथ पंक्तिबद्ध करने के लिए भारतीय रिज़र्व बैंक ने भारत में कार्यरत वाणिज्यिक बैंकों पर (ग्रामीण क्षेत्रीय बैंकों को छोड़कर) मार्च 31, 2009 से बासल  के संशोधित ढाँचे को लागू कर दिया है।

## दीर्घावधि निवेश

मंदी के परिणामस्वरूप सेंसेक्स 21 हज़ार से घटकर 9 हज़ार से भी नीचे पहुंच गया था किन्तु शेयर बाजार की यह गिरावट मुख्यत: वैश्विक अन्तर्सम्बद्धता विशेषकर डाउजोन्स से घनिष्ठ अंतर्सम्बन्धता का नतीजा है जिसे ऊपर स्पष्ट किया गया है । यही कारण है कि शेयर बाजार ने फिर से वृद्धि का रुख पकड़ लिया है क्योंकि भारतीय कम्पनियां एवं अर्थव्यवस्था अन्य देशों के मुक़ाबिल सुदृढ़ हैं । फिर भी नियामकीय संगठनों एवं सरकार को चाहिए कि वे निवेशकों को बाजार में लंबी अवधि के लिए बने रहने तथा लघु कालिक बिकवाली नहीं करने हेतु प्रोत्साहित करें।

## ब्याज दरों में कमी

वैश्विक आर्थिक मंदी से भारत को बचाने के लिए भारतीय रिज़र्व बैंक ने अपनी प्रमुख ब्याज दरों में कई चरणों में कटौती की है (तालिका 3) जिसके परिणामस्वरूप अधिकांश बैंकों ने विभिन्न प्रकार के ऋणों पर ब्याज दरों में कटौती कर दी है किन्तु अभी भी और कटौती की गुंजाइश है।

**तालिका 3: 2008-09 के दौरान नियामकीय दरों में परिवर्तन**

| अवधि | रेपो दर | रिवर्स रेपो दर | आरक्षित नकदी निधि अनुपात |
|---|---|---|---|
| अक्तूबर 2008 से पूर्व | 9.0 | 6.0 | 6.5 |
| अक्तूबर 20, 2008 | 8.0 | 6.0 | 6.5 |
| नवम्बर 03, 2008 | 7.5 | 6.0 | 5.5 |
| दिसम्बर 06, 2008 | 6.5 | 5.0 | 5.5 |
| जनवरी 02, 2009 | 5.5 | 4.0 | 5.0 |
| जुलाई 29, 2009 | 4.75 | 3.25 | 5.0 |

स्रोत: भारतीय रिज़र्व बैंक

## आत्मनिर्भरता की जरूरत

80 के दशक में एशियाई देशों (थाईलैंड, मलेशिया इत्यादि) का अनुभव यह सिखाता है कि किसी भी अर्थव्यवस्था को केवल बाह्य विदेशी पूंजी पर निर्भर न रहकर आत्मनिर्भर बनाने की कोशिश करनी चाहिए। केवल बाह्य निवेश के भरोसे टिकी अर्थव्यवस्था विदेशी निवेशकों के हाथ खींचते ही औंधे मुंह गिर सकती है। जनवरी 2008 में भारतीय शेयर बाजार की गिरावट मूल रूप से विदेशी निवेशकों द्वारा अपना निवेश अंधाधुंध तरीके से खींच लेने के कारण ही हुई जबकि भारतीय अर्थव्यवस्था का मूलाधार सुदृढ़ था। अत: भारतीय अर्थव्यवस्था को आत्मनिर्भर बनाने हेतु देशी निवेशकों को अधिकाधिक प्रोत्साहित करना चाहिए।

## चलनिधि में वृद्धि

कुछ विश्लेषको की राय में आर्थिक मंदी चलनिधि के संकट का परिणाम है अत: इसका निदान भी चलनिधि में वृद्धि से ही संभव है। इसी के मद्देनज़र रिज़र्व बैंक ने सीआरआर, एसएलआर एवं रेपो दर में कमी की है जिससे बाजार में 601,700 करोड़ रुपए अंतर्वाह किए गए हैं । यह स्पष्ट है कि हमारे बाजार में तरलता की कमी नहीं है क्योंकि बैंकों में एनपीए औसतन दो प्रतिशत से कम है जो कि बैंकों के उत्तम स्वास्थ्य का प्रतीक है तथा उनकी वित्तीय स्थिति ऋण देने के अनुकूल है किन्तु फिर भी अर्थव्यवस्था के मंदी प्रभावित क्षेत्रों में तेजी लाने के लिए ब्याज दरों में कटौती नितान्त आवश्यक है।

## कृषि एवं लघु उद्योगों को प्रोत्साहन

अपने देश में कृषि की उन्नत पैदावार बढ़ाकर, लघु एवं कुटीर उद्योगों को प्रोत्साहित कर तथा आर्थिक सुधारों को मानवीय पहलू के साथ लागू कर हम वैश्विक मंदी की चपेट में आने से बच सके । यह सुविदित है कि अपने विशाल जनबल के कारण भारतीय बाजार में मांग बनी हुई है विशेष रूप से भारत के 72 फीसदी ग्रामीण समुदाय में विविध सेवाओं एवं उत्पादों के लिए मांग लगातार बढ़ रही है इसे और तीव्र करने के लिए गांवों में आधारभूत सुविधाओं, रोजगार के अवसरों आदि में बढ़ोतरी करना नितान्त आवश्यक है ।

## गैर जरूरी आयात पर कटौती हो

भारत सरकार को मंदी से उबरने के लिए बतौर एहतियात गैर जरूरी आयातों में कटौती करनी चाहिए । संकटकाल में विकसित देशों द्वारा भी तेल एवं गैर आवश्यक वस्तुओं के आयात में कमी दर्ज की गई है । वैश्वीकरण के परिणामस्वरूप भारतीय आयातों में निर्यातों की तुलना में अधिक वृद्धि देखने को मिली है जो सुखद संकेत नहीं है । हमें यथासंभव भारतीय माल के लिए भारतीय बाजार को परिपक्व बनाने की कोशिश करनी चाहिए ।

सार रूप में यह कहा जा सकता है कि अंतरराष्ट्रीय आर्थिक मंदी का प्रभाव भारत में गहरा न होकर सतही है क्योंकि जो कुछ दिखाई दे रहा है, वह अमरीकी घटनाओं की प्रतिध्वनि भर है। तथापि, भारत को सचेत रहकर इस संकट के प्रभाव को न्यूनतम करने के लिए प्रयासरत होना चाहिए। अंतरराष्ट्रीय मंदी की वजह से भारतीय बाजार में जो हलचल देखी जा रही है, वह स्थायी नहीं है। अमरीकी बैंकिंग तंत्र और विकसित देशों के कुछ वित्तीय संस्थानों के धराशायी हो जाने के बाद हमारे बैंकिंग तंत्र को लेकर जो आशंकाएं हैं वे निराधार हैं क्योंकि हमारे बैंकों का विदेशों में बहुत कम एक्सपोजर है। साथ ही आरबीआई का बैंकिंग तंत्र पर प्रभावी एवं वृहत नियंत्रण है। स्पष्ट है कि अंतरराष्ट्रीय मंदी के बावजूद उत्तम वित्तीय नियंत्रण एवं घरेलू मांग बनी रहने के कारण भारतीय अर्थव्यवस्था वर्ष 2009 में 6 फीसदी प्रतिवर्ष की दर से वृद्धि कर सकेगी और वर्ष 2010 से विकास दर बढ़ने लगेगी।

यह संकट कब और कैसे दूर होगा, कहना मुश्किल है । यदि यह संकट गहराता है तो भारत पर इसका अधिक प्रभाव होगा वहीं संकट हल्का रहने पर देश में इसका गंभीर असर नहीं होगा। आर्थिक विकास की तेज रफ्तार को बनाये रखने के लिये कृषि क्षेत्र में वृद्धि और आधारभूत संरचना को मजबूत करने पर ध्यान देना होगा । भारतीय उद्यमों को बड़े पैमाने पर छंटनी जैसी कार्रवाइयों से बचना चाहिए क्योंकि बेरोजगारी मंदी को और गंभीर कर सकती है । आईएमएफ की ताजा रिपोर्ट के अनुसार, वैश्विक अर्थव्यवस्था में हो रही वर्तमान हलचलों से भारतीय अर्थव्यवस्था बेअसर रहेगी जिसका कारण भारतीय अर्थव्यवस्था की संरचना और वित्तीय बाजार है । भारत वैश्विक अर्थव्यवस्था में तेजी से अपनी हिस्सेदारी बढ़ाता जा रहा है एवं इसमें गिरावट की संभावना शेष विश्व के मुकाबले काफी कम है। वैश्विक अर्थव्यवस्था में मंडरा रहे मंदी के संकट का असर भारत पर दूसरे देशों के मुकाबले बेहद कम होगा क्योंकि भारत में घरेलू मांग की दर सशक्त है।

### वैश्विक सकल देशी उत्पाद में वृद्धि

(प्रतिशत)

| देश / क्षेत्र | 2009 | 2010 |
|---|---|---|
| 1 | 2 | 3 |
| अमरीका | (-) 2.7 | 1.5 |
| ब्रिटेन | (-) 4.4 | 0.9 |
| यूरो क्षेत्र | (-) 4.2 | 0.3 |
| जापान | (-) 5.4 | 1.7 |
| चीन | 8.5 | 9.0 |
| भारत | 5.4 | 6.4 |
| उन्नत देश | (-) 3.4 | 1.3 |
| उभरते और विकासशील देश | 1.7 | 5.1 |
| **विश्व** | **(-) 1.1** | **3.1** |

**स्रोत :** अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष वैश्विक आर्थिक परिदृश्य, अक्तूबर 2009

# विश्वव्यापी आर्थिक मन्दी और भारतीय बीमा उद्योग

● डॉ. सुबोध कुमार
एवं हरीश चन्द्र रतूडी
हे.न.ब.ग. केन्द्रीय विश्वविद्यालय
टिहरी गढ़वाल, उत्तराखण्ड

बाजार भौतिक जगत की परिधि के भीतर है फिर भी बाजार की संवेदनाएं होती हैं। शेयर बाजार का सूचकांक संवेदी सूचकांक है। बाजार संवेदनाओं से प्रभावित होता है। एक समाचार बाजार को उत्कर्ष की ओर ले चलता है, तब ही दूसरा समाचार सूचकांक को धराशायी कर सकता है। लाभ-हानि की सम्भावना भविष्य का विषय है और भविष्य का अर्थ है - 'अनिश्चितता'। अनिश्चितता व्यवसाय का अनिवार्य अंग है। ब्याज निश्चित और नियमित आय हो सकती है लाभ नहीं। लाभ की सम्भावना के गर्भ में जोखिम की परवरिश होती है। भविष्य चिन्ता देता है और अनिश्चितता भयभीत करती है। बाजार जोखिम में हानि की आशंका के साथ-साथ लाभ की सुखद आशा भी पल्लवित होती है। जोखिम उठाकर जो लाभ और हानि के उस पार जाने को उद्यत होता है उसे व्यवसाय जगत 'साहसी' की संज्ञा देता है और वह उद्यमी कहलाता है। जोखिम को वहन करना उद्यम है।

वर्तमान स्थिति को लेकर वैश्विक मन्दी के एक वर्ष के बाद बाजार विश्लेषकों की राय में भिन्नता है। चार प्रकार की टिप्पणियां मिल रही हैं - मन्दी का दौर समाप्त हो चुका है, मन्दी अभी बनी रहेगी, मन्दी का प्रभाव कम हुआ है, वर्तमान सुधार स्थाई नहीं है और इसमें **प्रतिगमन** हो सकता है। इस दृष्टि से निवेशकों को सलाह दी जा रही है कि अभी भी सावधान रहें क्योंकि सुधार के क्रम में भी बाजार एक बार फिर पीछे की ओर जा सकता है। साथ ही, लम्बे समय तक बने रहने वाले निवेशकों के लिये सुझाव मिल रहे हैं कि उन्हें इस समय खरीददारी करना लाभप्रद रहेगा। भौगोलिक दृष्टि से मन्दी का प्रभाव अर्थव्यवस्थाओं पर एक-सा नहीं पड़ा और तद्नुरूप वर्तमान स्थिति भी पृथक-पृथक है, जैसे कुछ अर्थव्यवस्थायें प्राय: प्रभाव मुक्त हो गयी हैं, दूसरी ओर कुछ अर्थव्यवस्थायें दुष्प्रभाव ग्रसित हैं। अत्यधिक अस्थिरता की अवस्था में एक दौर ऐसा भी आया कि किसी विश्लेषक की राय सुनने के बाद अन्य बैंकों के ग्राहकों ने अपनी जमाराशियां निकालकर स्टेट बैंक में जमा करना शुरू कर दिया फलस्वरूप स्टेट बैंक की शाखाओं में अनियंत्रित लाईन लगने लगीं, लेकिन यह स्थिति ज्यादा समय नहीं चली। वस्तुत: शेयर बाजार में अफवाहों का बाजार सदैव गर्म रहता है और अल्पकाल में अफवाहें बाजार पर खूब प्रभाव दिखाती हैं।

बाजार मांग और पूर्ति की शक्तियों से संचालित होता है। मांग और पूर्ति को प्रभावित करने वाले अनेक तत्त्व सदैव विद्यमान रहते हैं और न्यूनाधिक मात्रा में सक्रिय रहते हैं। बाजार को उर्ध्वमुख और अधोमुख करने वाले दोनों ही प्रकार के कारण सदैव अस्तित्व में होते हैं समान परिस्थितियों में कारोबारियों का एक वर्ग तेजी का अनुमान करता है और दूसरा वर्ग उसी परिवेश में मन्दी का आकलन करता है। परिकल्पी बाजार में इन्हें **तेजड़िया** और **मन्दड़िया** की संज्ञा दी जाती है।

बीमा की विषय वस्तु जोखिम है। जोखिम भविष्य का विषय है। बीमा में जोखिम की परिभाषा है - भविष्य में हानि होने की सम्भावना और तत्सम्बन्धी अनिश्चितता । बीमा योग्य जोखिम में हानि और केवल हानि की सम्भावना होती है। बीमा की जोखिम में लाभ की सम्भावना नहीं होती है। बीमा जोखिम का समाधान करता और भविष्य के आर्थिक संकट के प्रति सुरक्षा कवच देता है। जोखिम के समाधान की पांच रीतियां हैं -

- **अपवर्जन**
- **निवारण**
- **अधिग्रहण**
- **अन्तरण**
- **बीमा**

बीमा आर्थिक सुरक्षा देता है। बीमा एक व्यवसाय है जो उन्नत अर्थव्यवस्था में अधिक प्रभावशील भूमिका रखता है।

अर्थव्यवस्था के प्रारम्भिक चरण में बीमा उद्योग की उल्लेखनीय भूमिका नहीं होती, किन्तु उत्तरोत्तर विकास के साथ बीमा प्रभावी भूमिका में आ जाता है। वस्तुत: बीमा का विकास समग्र आर्थिक विकास का मानदण्ड है। भविष्य का आर्थिक संकट और तत्सम्बन्धी अनिश्चितता ने बीमा अवधारणा को जन्म दिया। बीमा जब वर्तमान व्यावसायिक स्वरूप में विकसित नहीं हुआ था तब प्रारम्भ में भावी आर्थिक संकटों की व्यवस्था के रूप में इसका उद्‌भव हुआ।

'जोखिम' का आशय है कि किसी प्रतिकूल घटना द्वारा अनिष्ट या हानि होने की सम्भावना तथा तत्संबंधी अनिश्चितता। हानि की अनिश्चितता जोखिम का सबसे महत्त्वपूर्ण लक्षण है। यदि हमें पहले से ही पता हो कि अमुक प्रतिकूल घटना अथवा अमुक हानि कदापि नहीं होगी, अथवा अमुक समय में अमुक मात्रा में अवश्य होगी, तब ऐसी हानि में किसी प्रकार की अनिश्चितता नहीं है, इसलिए इसे जोखिम नहीं कहा जाएगा। इसी प्रकार, यदि हम यह निश्चित रूप से जानते हों कि अमुक प्रतिकूल घटना घटित ही नहीं होगी, अथवा उस घटना के होने पर हानि कदापि नहीं होगी तब वहां भी 'जोखिम' नहीं है, क्योंकि इसमें हानि सम्बन्धी अनिश्चितता नहीं है। जोखिम हानि की अनिश्चितता के कारण ही उपस्थित होती है - यदि अनिश्चितता न हो तब जोखिम भी नहीं होगी। किसी आपदा के परिणामस्वरूप हमें हानि पहुंचेगी या नहीं पहुंचेगी, अथवा हानि कब होगी और कितनी होगी, ऐसी समस्त अनिश्चितताओं को ही बीमा की भाषा में 'जोखिम' कहा जाता है।

## निजी क्षेत्र की तुलना में सरकारी कंपनियों का प्रदर्शन बेहतर

अप्रैल-अगस्त 2009 के दौरान गैर जीवन बीमा कंपनियों के प्रीमियम संग्रह में अच्छी-खासी बढ़ोतरी दर्ज हुई है, इस दौरान गैर जीवन बीमा कंपनियों का कुल प्रीमियम संग्रह 7.6 फीसदी बढ़कर 14,226 करोड़ रुपये रहा, जबकि चारों सरकारी साधारण बीमा कंपनियों का प्रीमियम संग्रह 10 फीसदी बढ़कर 8,415 करोड़ रुपये हो गया, हालांकि इस दौरान सरकारी गैर-जीवन बीमा कंपनियों का निष्पादन निजी कंपनियों के मुकाबले काफी बेहतर रहा। निजी क्षेत्र की गैर-जीवन बीमा की सबसे बड़ी कंपनी आईसीआईसीआई लोंबार्ड और बजाज एलयांज का प्रीमियम संग्रह घटा है, टाटा एआईजी के प्रीमियम संग्रह में भी गिरावट आई है। इससे लगता है कि लोगों का विश्वास एक बार फिर सरकारी कंपनियों की ओर बढ़ा है, समीक्षाधीन अवधि में सर्वाधिक बढ़त यूनाइटेड इंडिया के प्रीमियम संग्रह में दर्ज हुई।

**प्रीमियम संग्रह**

(राशि करोड़ रुपये में)

| कम्पनी | अप्रैल 2008 | अगस्त 2009 | बदलाव प्रतिशत में |
|---|---|---|---|
| न्यू इंडिया | 2334 | 2541 | 8.42 |
| नेशनल | 1818 | 1847 | 1.59 |
| यूनाइटेड इंडिया | 1779 | 2069 | 16.36 |
| ऑरिएंटल | 1716 | 1957 | 14.05 |
| आईसीआईसीआई लोंबार्ड | 1654 | 1357 | -16.83 |
| बजाज एलयांज | 1203 | 1040 | -13.60 |
| रिलायंस जनरल | 840 | 877 | 4.36 |
| इफको टोक्यो | 618 | 644 | 4.20 |
| टाटा एआईजी | 438 | 398 | -9.16 |

(स्रोत: इरडा)

## गैर जीवन बीमा मंदी का समाधान :

## खुदरा कारोबार

कॉर्पोरेट जगत में हुए नुकसान को देखते हुए अब सामान्य बीमा कम्पनियां खुदरा क्षेत्र की तरफ अपना ध्यान केंद्रित कर रही हैं। नई दरें लागू होने के बाद फायर और इंजीनियरिंग क्षेत्रों में इन कंपनियों को काफी नुकसान उठाना पड़ा है। सामान्य बीमा कंपनियों के लिए कॉर्पोरेट जगत में कीमतों का दबाव और इसमें होने वाले नुकसान का खतरा बहुत ज्यादा बढ़ गया है। इसके

अलावा पिछले कुछ सालों में सामान्य बीमा कम्पनियाँ कॉर्पोरेट क्लाइंटों को भारी छूट और अन्य तरीकों के जरिए रिझाते हुए नजर आईं। इसके बाद अचानक वे अजीब दुविधा में फंस गई हैं। इसकी वजह यह है कि पुनर्बीमाकर्ता कंपनी समान जोखिम की राशि को कम प्रीमियम दरों पर बीमित करने पर चिंता जाहिर कर रही है। मार्च के अंत में पुनर्बीमा फिर से शुरू करने का वक्त आता है तो उस समय सामान्य बीमाकर्ता को अधिक राशि का भुगतान करना पड़ता है। इस दौरान यह देखा गया है कि खुदरा कारोबार, जिसमें स्वास्थ्य और मोटर कारोबार शामिल हैं, तेजी से बढ़ रहा है। बीमाकर्ता कंपनियों को मोटर थर्ड-पार्टी जोखिम के लिए एक अलग से पूल विकसित करने के साथ ही यह कारोबार करने में कोई खास दिक्कत नहीं आ रही है। इसके अलावा मार्च में एड-ऑन कवर शुरू कर देने के बाद से बीमाकर्ताओं को इसका लाभ मिलने की संभावना है। ठीक इसी तरह अब स्वास्थ्य बीमा के दावों को भी बेहतर तरीके से प्रबंधित किया जा रहा है जिससे कंपनियों को नुकसान से भरपाई करने में काफी मदद मिलती है।

*बजाज एलयांज जनरल इंश्योरेंस के अंडरराइटिंग प्रमुख टी. ए. रामलिंगम के अनुसार सामान्य जीवन बीमा कंपनियों के रुख में यह परिवर्तन हाल में खुदरा कारोबार खासकर, स्वास्थ्य बीमा कारोबार में बेहतर बढ़ोतरी को देखते हुए आया है। जहां उछाल की नई कहानी लिखी जा रही है।* आईसीआईसीआई लोम्बार्ड जैसी कंपनियों को खुदरा क्षेत्र से 60 फीसदी प्रीमियम प्राप्ति की उम्मीद है। निरंतर विकास और लोगों के बीच बीमे में बढ़ती जागरुकता से खुदरा कारोबार तेजी से बढ़ेगा। आईसीआईसीआई लोम्बार्ड के कॉर्पोरेट केन्द्र के निदेशक और सीएफओ राकेश जैन के अनुसार खुदरा क्षेत्र के मुनाफे को वितरण, उत्पादों और सेवा में नई तकनीक शामिल कर और ज्यादा बढ़ाया जा सकता है।

## जीवन बीमा कंपनियों का मूल्यांकन घटा

नई बीमा पॉलिसियों की बिक्री की दर धीमी पड़ जाने से जीवन बीमा कंपनियों का मूल्यांकन 40 फीसदी तक गिर गए हैं। एक अंतरराष्ट्रीय निवेश बैंक ने आईसीआईसीआई प्रूडेंशियल लाइफ इंश्योरेंस का मूल्यांकन 41 फीसदी से भी ज्यादा घटाकर 9.2 अरब डॉलर कर दिया है। फरवरी में इसका मूल्यांकन 15.7 अरब डॉलर था। यह दोनों मूल्यांकन 2009-10 के लिए थे। सिर्फ एक साल पहले ही अधिकांश बैंकों ने इस कंपनी का मूल्यांकन 12 अरब डॉलर से 17 अरब डॉलर के बीच किया था। आईसीआईसीआई प्रूडेंशियल के कम मूल्यांकन का कारण उसकी वृद्धि दर का धीमा पड़ना है।

एक अन्य वैश्विक निवेश बैंक के विश्लेषक के अनुसार शेयर बाजार में मची उथल-पुथल से बीमा कंपनियों के प्रमोटरों के शेयरों के मूल्य का भी पुनर्निर्धारण किया गया है। एसबीआई लाइफ के सूत्रों के अनुसार इस समय मुद्रास्फीति की दर 12.63 फीसदी तक चढ़ चुकी है। इसकी सबसे बड़ी वजह कच्चे तेल की कीमतों में हुआ इजाफा है। नतीजतन पूंजी बाजार तंग हाल है। ब्याज दरें लगातार ऊपर जा रहीं है। अंतरराष्ट्रीय बाजार भी कुछ ढाढ़स नहीं बंधा पा रहा है। इस स्थिति में विकास दर के 8 फीसदी रहने का अनुमान लगाया गया है। इसी के चलते विश्लेषकों के अगले 12 माह में विकास दर के अनुमान प्रभावित हो रहे हैं। मार्च 2008 पहले साल की प्रीमियम आय 74 फीसदी चढ़कर 33,800 करोड़ रुपये हो गई थी। यह दर 2006-07 में 90 फीसदी थी। एचडीएफसी स्टैंडर्ड लाइफ के प्रबंध निदेशक और सीईओ दीपक सतवालकर के अनुसार ऊंची मुद्रास्फीति और अर्थव्यवस्था की धीमी गति ने लोगों की बचत को भी प्रभावित किया है।

**मंदी का प्रभाव : निजी कम्पनियों का मूल्यांकन**

| कंपनी | फरवरी 2008 | अगस्त 2008 | गिरावट |
|---|---|---|---|
| आईसीआईसीआई प्रूडेंशियल | 15.7 | 09.2 | 41.40 |
| एचडीएफसी स्टैंडर्ड लाइफ | 04.3 | 02.6 | 39.53 |
| एसबीआई लाइफ | 06.6 | 04.2 | 36.36 |
| बजाज एलायंज | 08.6 | 06.8 | 20.93 |
| रिलायंस लाइफ | 05.5 | 04.6 | 16.36 |
| मैक्स न्यूयार्क लाइफ | 01.9 | 01.6 | 15.79 |

हालांकि आईसीआईसीआई प्रूडेंशियल के कार्यकारी निदेशक एन. एस. कन्नन के अनुसार मूल्यांकन के कम होने

का पिछले माह मुद्रास्फीति के चढ़ने से कोई संबंध नहीं है। आईसीआईसीआई प्रूडेंशियल की पहली तिमाही में वृद्धि दर 50 फीसदी रही और उसने नए बिजनेस से 240 करोड़ रुपये का लाभ कमाया। अगर विशेषज्ञ मूल्यांकन कम कर रहे हैं तो यह उनका निजी विचार है।

## एलआईसी ऑफ इण्डिया - मंदी में भी वृद्धिमान

ऐसा लगता है कि भारतीय ग्राहकों ने अमेरिका व अन्य विकसित देशों में निजी क्षेत्र के बैंकों व बीमा कंपनियों के डूबने से खासा सबक लिया है। उन्होंने निजी क्षेत्र की जीवन बीमा कंपनियों से तौबा करनी शुरू कर दी है। ताजा आंकड़े कुछ ऐसी ही गवाही दे रहे हैं। आम आदमी को निजी क्षेत्र की जीवन बीमा कंपनियों से पॉलिसी लेने में हिचकिचाहट होने लगी है, जबकि मंदी के बावजूद सरकारी कंपनी भारतीय जीवन बीमा निगम की पॉलिसियों को हाथों-हाथ लिया जा रहा है। अप्रैल से अगस्त, 2009 के बीच एलआईसी की प्रथम प्रीमियम आय (एफपीआई) में 45 फीसदी की वृद्धि हुई है, जबकि सभी 21 निजी जीवन बीमा कंपनियों की एफपीआई में गिरावट दर्ज की गई है।

भारतीय बीमा नियामक और विकास प्राधिकरण (इरडा) के आंकड़ों के मुताबिक इस अवधि में देश की सभी 22 बीमा कंपनियों की पहली प्रीमियम आय 31 हजार 39 करोड़ रुपये है। पिछले वर्ष की इसी अवधि में यह 26 हजार 449 करोड़ रुपये थी। यह बीते साल के मुकाबले 17 फीसदी ज्यादा है। लेकिन तस्वीर का दूसरा पहलू यह है कि निजी बीमा कंपनियों की एफपीआई इस दौरान 12 हजार 89 करोड़ से घटकर 10 हजार 227 करोड़ रुपये रह गई है। एलआईसी की प्रीमियम आय में 45 फीसदी की वृद्धि होने से पूरे जीवन बीमा क्षेत्र की साख बची रह गई। अन्यथा दुनिया के अन्य देशों की तरह यहां भी जीवन बीमा प्रीमियम में गिरावट हुई होती। देश की सबसे बड़ी निजी जीवन बीमा कंपनी होने का दावा करने वाली आईसीआईसीआई प्रूडेंशियल की आमदनी इस अवधि में 40 फीसदी तक घटी है। दूसरी सबसे बड़ी निजी जीवन बीमा कंपनी एसबीआई लाइफ की प्रीमियम आमदनी भी इस दौरान 1,763 करोड़ से घट कर 1,703 करोड़ रुपये रह गई है। अगर सभी निजी बीमा कंपनियों को संयुक्त तौर पर देखें तो इनकी प्रीमियम वसूली में 15 फीसदी की गिरावट हुई है। भारत में निजी बीमा कंपनियों से ग्राहकों का मोह भंग होने की एक प्रमुख वजह हाल के वर्षों में कई प्रमुख विदेशी बीमा कंपनियों का दिवालिया हो जाना है। यही कारण है कि कई पॉलिसियां लांच करने के बावजूद निजी बीमा कंपनियां ग्राहकों को आकर्षित नहीं कर पा रही हैं। वहीं दूसरी तरफ भारतीय जीवन बीमा निगम की वर्षों पुरानी पॉलिसियों पर ग्राहक एक बार फिर से भरोसा करने लगे हैं।

## दो वर्षों में सबसे अधिक बढ़ा जीवन बीमा कारोबार

भारतीय जीवन बीमा निगम के प्रीमियम में आई तेजी ने पूरे जीवन बीमा कारोबार को फायदा पहुंचाया है। प्रीमियम में बढ़ोतरी की वजह से बाजार में एलआईसी की हिस्सेदारी बढ़कर 58.67 फीसदी हो गई है। इसके अलावा अप्रैल में एलआईसी के पहले साल के प्रीमियम में 69.33 फीसदी की बढ़ोतरी हुई, जिसमें सिंगल-प्रीमियम कारोबार की अहम हिस्सेदारी रही। देश की 22 जीवन बीमा कंपनियों के नई पॉलिसियों से आने वाले प्रीमियम में 29.5 फीसदी की बढ़ोतरी हुई है। अप्रैल 2009 में नये प्रीमियम से 3,602 करोड़ रुपये प्रीमियम के तौर पर जुटाए गए हैं जबकि पिछले साल की इसी अवधि में 2,780 करोड़ रुपए आए थे। अप्रैल 2007 के बाद से प्रीमियम में आई यह सबसे बड़ी तेजी है। उल्लेखनीय है कि इसी समय पहले साल की प्रीमियम आय में 29.5 फीसदी की तेजी आई थी। हालांकि नई पॉलिसियों की बिक्री की वजह से प्रीमियम की रकम में इजाफा होने के बाद भी बीमा कंपनियां अभी भी काफी सतर्क हैं। यह कहना अभी जल्दबाजी होगी कि बीमा कारोबार एक बार फिर से अपने उफान पर हैं, क्योंकि कारोबार विकास का एक बहुत बड़ा हिस्सा समूह बीमा कारोबार से आया है। वित्त वर्ष 2008-09 में निवेशकों के यूनिट लिंक्ड इंश्योरेंस प्लान से अपने आप को अलग कर लेने से बीमा पॉलिसियों की बिक्री में 6.32 फीसदी की कमी आई थी। यूलिप का 85-90 फीसदी तक निवेश शेयरों में था। वैश्विक वित्तीय संकट की वजह से पिछले वर्ष बाजार में 38

फीसदी की गिरावट आई थी जिससे ऐसी योजनाओं से लोग मुंह मोड़ने लगे जिसने शेयरों में ज्यादा निवेश किया था। हालांकि कारोबार में आई तेजी में सिंगल-प्रीमियम सेगमेंट की काफी बड़ी हिस्सेदारी रही है।

### मन्दी का उपाय :
### गारंटीड रिटर्न जीवन बीमा योजनायें

सितम्बर 2008 के दलाल स्ट्रीट के अनुभव के बाद छोटे निवेशकों का बाजार से बड़ी मात्रा में पलायन हुआ। अब उनके पास अपनी बचत को बैंकों में रखने के अलावा कोई दूसरा विकल्प नहीं था, जहां वे सुरक्षित मूलधन के प्रति आश्वस्त रह सकते हैं। दूसरी ओर, प्रतिस्पर्धा के चलते बैंकों ने बेहतर ब्याज दर की पेशकश की और बैंकों में बड़ी राशि संग्रहित हुई। वहीं जीवन बीमा कम्पनियों की प्रीमियम आय में चिन्ताजनक गिरावट दर्ज हुई। बीमा कम्पनियों ने अपने वृद्धि के इतिहास पर दृष्टि डाली तब उत्तर मिला कि ग्राहक उनके द्वार पर तब तक नहीं आयेगा जब तक इस बात को लेकर आश्वस्त नहीं होता कि उसका निवेश धन न केवल सुरक्षित है बल्कि उसे बीमा कम्पनी की ओर से निश्चित लाभ की गारंटी भी है। इसके साथ अगर बीमा कम्पनी जोखिम आवरण भी दे दें तो यह अवश्य ही ग्राहक के लिये आकर्षक संविदा होगी। यह तथ्य प्रमाणित भी हुआ, जब भारतीय जीवन बीमा निगम की क्लोज एन्डेड 'जीवन आस्था' एकल प्रीमियम पॉलिसी ने मात्र 45 दिनों में दस हजार करोड़ रुपये एकत्र किये। निगम के लिये यह अत्यन्त उत्साहवर्धक अनुभव था। इसके तुरन्त बाद सतत् प्रीमियम भुगतान वाली पॉलिसी 'जीवन वर्षा' प्रस्तुत की गई। इस प्रकार की सफलता का यह एकमात्र उदाहरण नहीं है बल्कि प्रत्येक जीवन बीमा कम्पनी की **उत्पाद शृंखला** में एक न एक ऐसा उत्पाद अवश्यक मौजूद है।

### आर्थिक संकट और कालातीत जीवन बीमा दर

वर्ष 2008-09 की अवधि में जीवन बीमा में कालातीत पॉलिसियों पर हुये एक अध्ययन में पाया गया कि कुल कालातीत पॉलिसियों में 2 प्रतिशत यूलिप पॉलिसियां केवल इस कारण रद्द हुईं कि उनकी एनएवी कीमत लगातार कम चल रही थी और निवेशक को इनमें बने रहने का कोई औचित्य दिखाई नहीं दिया। यूलिप प्लान में कालातीत पॉलिसियों का यह प्रतिशत काफी अधिक हो सकता है क्योंकि यह सर्वेक्षण उत्तराखण्ड के ग्रामीण और शहरी क्षेत्र तक सीमित था। खण्डित हुई पॉलिसियों में निजी बीमा कम्पनी के ग्राहक थे। महानगरों में निजी बीमा कम्पनियों का विस्तार अधिक है और निवेशक वर्ग अधिक जागरुक और सजग है। वहाँ अवश्य ही यूलिप प्लान की **कालातीत दर** कहीं ज्यादा होगी। जीवन बीमा व्यवसाय में उच्च कालातीत दर संकट की अवस्था मानी जाती है। सर्वेक्षण में 1000 बीमा ग्राहक सम्मिलित हुये जिनके पास पन्द्रह बीमा कम्पनियों की 2646 जीवन बीमा पॉलिसियां थीं। व्यवसाय संरचना के अनुसार प्रमुख रूप में 63 प्रतिशत वेतनभोगी 23 प्रतिशत व्यापारी और 10 प्रतिशत पेशेवर व्यक्ति थे। पॉलिसी वर्गीकरण के अनुसार कुल पॉलिसियों में बन्दोबस्ती बीमा 1629 और यूलिप पॉलिसी 829 थीं।

### पॉलिसी कालातीत होने पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है -

- **ग्राहक हित पर**
- **अभिकर्ता की आय पर**
- **बीमा कम्पनी पर**
- **नियामक संस्था पर**

- बीमादार बीमा के लाभ से वंचित हो जाता है। यदि पॉलिसी प्रथम तीन वर्षों के अन्दर ही कालातीत हो गयी तब तो सारे प्रीमियम की ही रकम डूब जाती है। तीन वर्षों के उपरान्त कालातीत होने पर **'अहरण नियम'** के अन्तर्गत एक अल्प अवधि तक दावों की सुविधा और तुरन्त पॉलिसी के चुकता होने की सुविधा अवश्य मिलती है किन्तु जितनी सुरक्षा के लिए बीमा कराया गया था उसमें कमी आ जाती है।

- बीमा अभिकर्ता की आय पर धक्का पहुँचता है। उसे चालू पॉलिसियों पर निश्चित दर से वार्षिक कमीशन मिलता है। पालिसियों के कालातीत होने पर वह उन पर मिलने वाले कमीशन से वंचित रह जाता है। इसके अतिरिक्त उसके द्वारा किये गये जीवन बीमा के कारोबार में पॉलिसी के कालातीत होने के कारण कमी आती है जो उसकी कार्यक्षमता के मूल्यांकन के लिए प्रतिकूल परिस्थिति मानी जाती है।

- पॉलिसी के कालातीत होने के कारण जीवन बीमा कम्पनी के कुल बीमा कारोबार की धनराशि में कमी आती है, उन पॉलिसियों पर किया गया समस्त व्यय व्यर्थ हो जाता है और भविष्य की प्रीमियम आय घट जाती है। यह स्थिति व्यावसायिक दृष्टि से प्रतिकूल मानी जाती है। अत: बीमा कम्पनियां अपने विकास अधिकारियों और बीमा अभिकर्ताओं को बराबर हिदायत देती रहती हैं कि वे बीमादारों से निरन्तर सम्पर्क बनाये रखें और उन्हें प्रीमियम चुकाने के लिए सचेत रखें। इसके अतिरिक्त कालातीत पॉलिसियों को पुन: चालू कराने के लिए भी प्रोत्साहन दिया जाता है।

- बीमा व्यवसाय के नियामक के लिए भी यह महत्त्वपूर्ण विषय है कि जीवन बीमा पॉलिसियाँ कालातीत न हों क्योंकि बीमा उद्योग के सभी पक्षकारों के हितों पर इसका प्रतिकूल प्रभाव होता है। नियामक संस्था सदैव इस स्थिति के अध्ययन और विश्लेषण के लिए प्रयासरत रहती है कि कालातीत पॉलिसियों का प्रतिशत न बढ़ने पाये। उद्योग के नियमन स्तर पर कालातीत पॉलिसियों पर नियन्त्रण के लिए उपाय किये जाते हैं।

बीमा आर्थिक संकट का व्यापार है। बीमा की विषय वस्तु है - 'जोखिम'। मानव के सम्मुख दो जोखिम सदैव रहते हैं - जीवन सम्बन्धी जोखिम और सम्पत्ति सम्बन्धी जोखिम। जीवन में मृत्यु के अलावा स्वास्थ्य, दुर्घटना, असमर्थता, बेरोजगारी, अशक्तता आदि संकट भी रहते हैं। सम्पत्ति में चोरी, अग्नि, दुर्घटना, प्राकृतिक आपदा, दायित्व उदय आदि सम्भावनायें सदा व्याप्त रहती हैं। बीमा आर्थिक संकट का समाधान करता है। बीमा का मूल प्रयोजन आर्थिक सुरक्षा व्यवस्था है। किन्तु, जीवन बीमा में सुरक्षा तत्त्व के साथ-साथ विनियोग तत्व भी सम्मिलित रहता है। विशेषकर, जब से यूलिप योजनाओं का चलन हुआ और इनकी लोकप्रियता बढ़ी, जीवन बीमा निवेश के विकल्प के रूप में स्थापित हो गया। यूलिप योजनायें बाजार से सीधे तौर से सम्बद्ध हैं और बाजार की जोखिम बीमा निवेश में भी समाहित हो गयी। बीमा जिस जोखिम का समाधान प्रस्तुत करता है, बाजार की जोखिम उससे भिन्न है। अपितु, बीमा में जोखिम का निराकरण होता है और बाजार में प्रवेश करते ही जोखिम का सृजन होता है। यूलिप योजनाओं के जरिए बीमादार शेयरधारक बन गए और एक ओर जीवन जोखिम का आवरण मिला, दूसरी ओर निवेश जोखिमग्रस्त हो गया। बाजार के जोखिम को परिकल्पी जोखिम कहा जाता है जिसमें लाभ अथवा हानि दोनों की सम्भावना रहती है। परिकल्पी जोखिम का बीमा कदापि नहीं होता। केवल शुद्ध जोखिम का बीमा होता है जिसमें हानि और केवल हानि की सम्भावना हो। जीवन बीमा आर्थिक संकट के प्रति सुरक्षा देता है किन्तु जब योजना यूनिट सम्बद्ध हो तब यह आर्थिक संकट को आमंत्रित भी करता है। इस प्रकार जीवन बीमा में आर्थिक सुरक्षा और आर्थिक संकट दोनों एक साथ रह सकते हैं। **जोखिम आवरण** के रूप में सुरक्षा और बाजार की चाल के साथ प्रतिफल की न्यूनता अथवा विपुलता की अनिश्चितता, दोनों ही जीवन बीमा में विद्यमान रहते हैं।

## पारिभाषिक शब्दावली

| | | |
|---|---|---|
| 1) | प्रतिगमन | regression |
| 2) | तेजड़िया | bull |
| 3) | मन्दड़िया | bear |
| 4) | निवारण | prevention |
| 5) | अधिग्रहण | acquisition |
| 6) | अन्तरण | transfer |
| 7) | उत्पाद शृंखला | product range |
| 8) | कालातीत दर | lapsation rate |
| 9) | अहरण नियम | non forfeiture rules |
| 10) | जोखिम आवरण | risk cover |
| 11) | प्रतिफल | return |
| 12) | बन्दोबस्ती | endowment |
| 13) | अपवर्जन | exclusion |

# अनुचिंतन

मुझे भारतीय रिज़र्व बैंक की प्रतिष्ठित पत्रिका ''बैंकिग चिंतन-अनुचिंतन'' के जुलाई-सितंबर 2009 अंक की प्रतियां प्राप्त हुईं। धन्यवाद।

बैंकिंग चिंतन-अनुचिंतन में शामिल बैंकिंग लेख बहुत ही ज्ञानवर्धक और उपयोगी हैं। केन्द्रीय बैंकिंग पर डॉ. रमाकांत शर्मा का लेख ''केंद्रीय बैंकिंग-स्वरूप, कार्य और कार्यपद्धति'' भारतीय रिज़र्व बैंक के कार्यकलापों के बारे में पाठकों को उत्कृष्ट जानकारी देने में सक्षम रहा है। इसके अतिरिक्त अन्य लेख भी बैंकिंग क्षेत्र के पाठकों को अद्यतन जानकारी देने में सफल सिद्ध हुए हैं। पत्रिका की साज-सज्जा व संपादन उत्तम है। हिंदी में ज्ञान-वर्धक और बैंकिंग क्षेत्र की अद्यतन सूचनाओं के साथ उत्कृष्ट पत्रिका के प्रकाशन के लिए मेरी ओर से आपको एवं आपकी पूरी टीम को हार्दिक बधाई।

पत्रिका के इस अंक में साक्षात्कार हेतु मुझे चुनने के लिए धन्यवाद।

● **डी. एल. रावल**
अध्यक्ष एवं प्रबंध निदेशक
देना बैंक, मुंबई

बैंकिंग चिंतन-अनुचिंतन, अप्रैल-जून 2009 के सम्पादकीय में सारगर्भित बातें कही गई हैं। दृष्टि बदलने पर दृष्टिकोण स्वयं बदल जाता है। प्राचीन काल में एक लुहार युद्ध के आयुध बनाता था। उसने अपने बनाये हुए हथियारों से लोगों को मरते देखा। उसने आयुध बनाना बंद कर दिया और जीवन उपयोगी सामान बनाने लगा। दृष्टि बदलने पर उसका दृष्टिकोण स्वत: ही बदल गया।

आईसीआईसीआई बैंक की मुख्य कार्यकारी अधिकारी और प्रबंध निदेशक श्रीमती चंदा कोचर से मुलाकात रोचक है।

श्री के. सी. मालपानी का आलेख पारस्परिक निधियां (म्यूचुअल फंड) रोचक एवं जानकारी पूर्ण है। श्रीमती सावित्री सिंह के इधर उधर से नये शब्दों की अद्यतन जानकारी मिलती है। अन्य आलेख भी उपयोगी और सूचनाप्रद हैं।

● **विश्वनाथ सिंहानिया**
ई 33, आर.बी.आई. फ्लैटस्
बैरामजी टाऊन, नागपुर 440 013

बैंकिंग चिंतन-अनुचिंतन-अप्रैल-जून, 2009 अंक आद्योपांत पढ़ा। अंक की समस्त सामग्री स्तरीय एवं उपयोगी है। आईसीआईसीआई की मुख्य कार्यकारी अधिकारी और प्रबंध निदेशक श्रीमती चंदा कोचर से साक्षात्कार उनके बहुआयामी व्यक्तित्व के अनेक पहलुओं यथा-ऊंचे लक्ष्य रखने और उन्हें पूरा करने के लिए अपेक्षित प्रतिबद्धता दर्शाने, सुचिंतित दीर्घकालिक योजनाएं बनाने, समाज की नब्ज़ पर सधा हुआ हाथ रखने और निरंतर आगे निकलने की होड़ में भी व्यवसाय के मानवीय चेहरे को न भूलने एवं ग्राहकों के शिक्षण को यथेष्ट महत्त्व देने की विशिष्टताओं को उजागर करता है। ''बासल समझौता'' शीर्षांकित लेख अपेक्षाकृत जटिल विषय को सरल भाषा में बोधगम्य बनाता है। विजय प्रकाश श्रीवास्तव ''संगठन एवं मानव पूंजी'' लेख में ज्ञान आधारित अर्थव्यवस्था में ज्ञान कर्मियों की विकासात्मक अपेक्षाओं को उचित परिप्रेक्ष्य में रखने में पूरी तरह से सफल हुए हैं।

राजभाषा हिन्दी में इतनी लाभकारी सामग्री उपलब्ध करवाने के लिए संबंधित लेखक एवं संपादक मंडल बधाई के पात्र हैं।

● **एस. डी. शर्मा**
पंज़ाब नैशनल बैंक
मंडल कार्यालय, शिमला

आप द्वारा प्रकाशित त्रैमासिक पत्रिका 'बैंकिंग चिंतन-अनुचिंतन का अंक मुझे पहली बार पढ़ने को मिला। मेरी अभी तक यह धारणा थी कि भारतीय रिज़र्व बैंक में अधिकतर कार्य अंग्रेजी में होता होगा एवं इसी तरह वह अंग्रेजी की पत्रिकाएं भी निकालता होगा। लेकिन बैंकिंग चिंतन अनुचिंतन का अंक पहली बार पढ़कर मुझे गर्व महसूस हुआ कि हमारा केन्द्रीय बैंक कितनी शानदार हिन्दी पत्रिका का प्रकाशन करता है। इस जर्नल में मुझे निम्नलिखित लेखों ने अत्यधिक प्रभावित किया :

(1) श्री के. आर. कामत - अध्यक्ष एवं प्रबंध निदेशक, इलाहाबाद बैंक का साक्षात्कार प्रभावी लगा एवं इससे मुझे काफी प्रेरणा मिली।

(2) श्री मुकेश पोपली द्वारा लिखित ''बैंकों में सतर्कता'' में विभिन्न प्रकार की सतर्कता को अच्छी तरह वर्णित किया गया है। यह लेख काफी सारगर्भित लगा।

(3) श्री के. सी. मालपानी द्वारा डी-मैट प्रणाली पर दी गयी जानकारी बहुत अच्छी लगी।

**● विष्णु कुमार गोयल**
सेन्ट्रल बैंक ऑफ इंडिया
जेडएसटीसी, 92 ए, लखनऊ

पत्रिका के नवीनतम अंक का अध्ययन-चिन्तन-अनुचिन्तन किया। किसी भी पत्रिका का सम्पादकीय प्रवेश द्वार होता है । चिन्तन-अनुचिन्तन के सम्पादकीय की विशेषता होती है कि विचार समसामयिक समस्या से जुड़े होते हैं जबकि उसका आधार भारतीय साहित्य-निधि वेद होता है। यही कारण है कि सम्पादकीय सिर्फ पठनीय ही नहीं अनुचिन्तनीय भी होता है। चूंकि मैं अभी भी बैंकों एवं केन्द्रीय कार्यालयों में अतिथि वक्ता/संकाय के रूप में सेवाएं देता रहता हूँ अत: पत्रिका के हर अंक से कुछ न कुछ नवीन जानकारियाँ मिल जाती हैं जो व्याख्यान देने में मेरे लिए सहायक होती हैं। अत: मैं इसका आभारी हूँ और मुझे हर अंक की प्रतीक्षा रहती है। अंक 21-4 में केन्द्रीय बैंकिंग - स्वरूप, कार्य और कार्यपद्धति (डॉ. रमाकान्त शर्मा) का आलेख ज्ञानवर्धक लगा जिसमें तौला डि कान्वी से लेकर केन्द्रीय बैंक के कार्यों और उत्तरदायित्व की महत्वपूर्ण जानकारियां मिलीं । भारत में बासल-II का मूल्यांकन - निधि चौधरी की - ज्ञानपरक प्रस्तुति लगी। ग्राहक सेवा - पर अक्सर कहीं न कहीं कुछ न कुछ प्रश्नवाचक आलेख-मिलते रहते हैं । एक तरफ बैंकिंग सेवाओं में अप्रत्याशित बदलाव आए हैं तो दूसरी तरफ सेवा में गिरावट के स्तर का ग्राफ बढ़ता ही जा रहा है । 'कम्प्यूटर वरदान बना तो अभिशाप भी' आलेख में जो शिकायत के आधारभूत कारण बताए गए हैं उनमें असभ्य व्यवहार नहीं जोड़ा गया है । यही कारण है कि बैंकिंग व्यवसाय के प्रगति पथ पर - गिरती ग्राहक सेवा के कांटे भी बढ़ते जा रहे हैं जिनका निदान त्वरित आवश्यक है ।

**● हरेराम वाजपेयी 'आश'**
अध्यक्ष, हिन्दी परिवार (साहित्यिक संस्था)
इंदौर

इस अंक में देना बैंक के अध्यक्ष एवं प्रबंध निदेशक श्री डी. एल. रावल जी से लिया गया साक्षात्कार अत्यंत प्रेरणास्पद है । डॉ. रमाकांत शर्मा लिखित ''केन्द्रीय बैंकिंग - स्वरूप, कार्य और कार्यपद्धति'' और श्री परवेज अख्तर द्वारा लिखित ''सूचना का अधिकार अधिनियम, 2005'' सूचनाप्रद लेख हैं। सुश्री निधि चौधरी ने अपने निबंध ''भारत में बासल-II का मूल्यांकन'' में बासल-II के गुण-दोषों का प्रभावशाली विवेचन किया है । परंतु समाहार में उन्होंने जो निष्कर्ष दिया है, वह उस विवेचन पर आधारित नहीं, बल्कि आरोपित या किसी मजबूरी के तहत दिया गया निष्कर्ष लगता है । श्री तपन कुमार प्रधान ने अपने पुरस्कृत निबंध ''जीवन स्तर के सुधार में माइक्रो फाइनांस की भूमिका'' में अपने विषय के प्रति पूर्णत: न्याय किया है ।

कुल मिलाकर पत्रिका के इस अंक की सामग्री हमेशा की तरह सूचनाप्रद एवं ज्ञानवर्द्धक रही ।

**● मुख्याधिकारी**
राजभाषा कक्ष, यूको बैंक
अंचल कार्यालय, सैनिक बाजार
मेन रोड, रांची 834001

# लेखकों से

**इस पत्रिका का उद्देश्य बैंकिंग और उससे संबंधित विषयों पर हिन्दी में मौलिक सामग्री उपलब्ध कराना है। बैंकिंग विषयों पर हिन्दी में मूल रूप से लिखने वाले सभी लेखकों से सहयोग मिले बिना इस उद्देश्य की पूर्ति कैसे होगी? हमें इसमें आपका सक्रिय सहयोग चाहिए। बैंकिंग विषयों पर हिन्दी में मूल रूप से लिखे स्तरीय लेखों की हमें प्रतीक्षा रहती है।** साथ ही, अर्थशास्त्र, वित्त, मुद्रा बाज़ार, पूंजी बाज़ार, वाणिज्य, विधि, मानव संसाधन विकास, कार्यपालक स्वास्थ्य, मनोविज्ञान, परा बैंकिंग, कम्प्यूटर, सूचना प्रौद्योगिकी आदि क्षेत्रों से जुड़े विशेषज्ञ इन विषयों पर व्यावहारिक या शोधपूर्ण मौलिक लेख भी हमें प्रकाशनार्थ भेज सकते हैं। प्रकाशित लेखों और पुस्तक समीक्षाओं पर **मानदेय देने** की व्यवस्था है। **कृपया प्रकाशनार्थ सामग्री भेजते समय यह देख लें कि :**

- सामग्री बैंकिंग और उससे संबंधित विषयों पर ही है।
- उसमें दी गयी जानकारी उपयोगी और अद्यतन है एवं अधिकतम 8 टंकित पृष्ठों में है।
- लेख यदि संभव हो तो सी.डी. में आकृति/एपीएस फांट में भेजने की व्यवस्था की जाए।
- वह कागज़ के एक ओर स्पष्ट अक्षरों में लिखित अथवा टंकित है।
- यथासंभव सरल और प्रचलित हिंदी शब्दावली का प्रयोग किया गया है और अप्रचलित एवं तकनीकी शब्दों के अर्थ कोष्ठक में अंग्रेज़ी में दिये गये हैं।
- यह प्रमाणित करें कि लेख मौलिक है, प्रकाशन के लिए अन्यत्र नहीं भेजा गया है और 'बैंकिंग चिंतन-अनुचिंतन' में प्रकाशनार्थ प्रेषित है।
- लेख में शामिल **आंकड़ों, तथ्यों आदि के संबंध में स्रोत का स्पष्ट उल्लेख करें।**
- प्रकाशन के संबंध में यह सुनिश्चित करें कि **जब तक लेख संबंधी अस्वीकृति की सूचना प्राप्त नहीं होती, संबंधित लेख किसी अन्य पत्र-पत्रिका में प्रकाशनार्थ न भेजा जाए।**

# प्रकाशकों से

जो प्रकाशक अपनी पुस्तक की समीक्षा करवाना चाहते हैं
वे कृपया अपनी पुस्तकों की दो प्रतियां भिजवाने की व्यवस्था करें।

# पाठकों से

इस पत्रिका को आप **नि:शुल्क** प्राप्त कर सकते हैं। इसके लिए आपको लिखित रूप में 'कार्यकारी संपादक, बैंकिंग चिंतन अनुचिंतन' से अनुरोध करना होगा। आपका पत्र मिलते ही आपका नाम डाक सूची में शामिल कर लिया जाएगा और तदनंतर आपको पत्रिका निरंतर मिलती रहेगी। आपसे अनुरोध है कि अपने सहयोगियों को भी यह जानकारी प्रदान करें तथा अपनी मांग से हमें तत्काल अवगत कराएं ताकि हम तदनुसार प्रतियों का मुद्रण कर सकें। **पुराने पाठक कृपया पत्राचार करते समय अपनी सदस्यता संख्या का उल्लेख अवश्य करें।**

# लेखकों से

**इस पत्रिका का उद्देश्य बैंकिंग और उससे संबंधित विषयों पर हिन्दी में मौलिक सामग्री उपलब्ध कराना है। बैंकिंग विषयों पर हिन्दी में मूल रूप से लिखने वाले सभी लेखकों से सहयोग मिले बिना इस उद्देश्य की पूर्ति कैसे होगी? हमें इसमें आपका सक्रिय सहयोग चाहिए। बैंकिंग विषयों पर हिन्दी में मूल रूप से लिखे स्तरीय लेखों की हमें प्रतीक्षा रहती है।** साथ ही, अर्थशास्त्र, वित्त, मुद्रा बाज़ार, पूंजी बाज़ार, वाणिज्य, विधि, मानव संसाधन विकास, कार्यपालक स्वास्थ्य, मनोविज्ञान, परा बैंकिंग, कम्प्यूटर, सूचना प्रौद्योगिकी आदि क्षेत्रों से जुड़े विशेषज्ञ इन विषयों पर व्यावहारिक या शोधपूर्ण मौलिक लेख भी हमें प्रकाशनार्थ भेज सकते हैं। प्रकाशित लेखों और पुस्तक समीक्षाओं पर **मानदेय देने** की व्यवस्था है। **कृपया प्रकाशनार्थ सामग्री भेजते समय यह देख लें कि :**

- सामग्री बैंकिंग और उससे संबंधित विषयों पर ही है।
- उसमें दी गयी जानकारी उपयोगी और अद्यतन है एवं अधिकतम 8 टंकित पृष्ठों में है।
- लेख यदि संभव हो तो सी.डी. में आकृति/एपीएस फांट में भेजने की व्यवस्था की जाए।
- वह कागज़ के एक ओर स्पष्ट अक्षरों में लिखित अथवा टंकित है।
- यथासंभव सरल और प्रचलित हिंदी शब्दावली का प्रयोग किया गया है और अप्रचलित एवं तकनीकी शब्दों के अर्थ कोष्ठक में अंग्रेजी में दिये गये हैं।
- यह प्रमाणित करें कि लेख मौलिक है, प्रकाशन के लिए अन्यत्र नहीं भेजा गया है और 'बैंकिंग चिंतन-अनुचिंतन' में प्रकाशनार्थ प्रेषित है।
- लेख में शामिल **आंकड़ों, तथ्यों आदि के संबंध में स्रोत का स्पष्ट उल्लेख करें।**
- प्रकाशन के संबंध में यह सुनिश्चित करें कि **जब तक लेख संबंधी अस्वीकृति की सूचना प्राप्त नहीं होती, संबंधित लेख किसी अन्य पत्र-पत्रिका में प्रकाशनार्थ न भेजा जाए।**

# प्रकाशकों से

जो प्रकाशक अपनी पुस्तक की समीक्षा करवाना चाहते हैं
वे कृपया अपनी पुस्तकों की दो प्रतियां भिजवाने की व्यवस्था करें।

# पाठकों से

इस पत्रिका को आप **नि:शुल्क** प्राप्त कर सकते हैं। इसके लिए आपको लिखित रूप में 'कार्यकारी संपादक, बैंकिंग चिंतन अनुचिंतन' से अनुरोध करना होगा। आपका पत्र मिलते ही आपका नाम डाक सूची में शामिल कर लिया जाएगा और तदनंतर आपको पत्रिका निरंतर मिलती रहेगी। आपसे अनुरोध है कि अपने सहयोगियों को भी यह जानकारी प्रदान करें तथा अपनी मांग से हमें तत्काल अवगत कराएं ताकि हम तदनुसार प्रतियों का मुद्रण कर सकें। **पुराने पाठक कृपया पत्राचार करते समय अपनी सदस्यता संख्या का उल्लेख अवश्य करें।**

भारतीय रिज़र्व बैंक द्वारा प्रकाशित
नवीनतम हिन्दी पुस्तक

## 'वित्तीय समावेशन के विविध आयाम'

### पुस्तक मिलने का पता

मै. आधार प्रकाशन प्रा. लि.
एस.सी.एफ. 267, सेक्टर 16
पंचकुला (हरियाणा)

## हमारा नया पता

कार्यकारी संपादक
बैंकिंग चिंतन-अनुचिंतन
भारतीय रिज़र्व बैंक
राजभाषा विभाग, केंद्रीय कार्यालय
गारमेंट हाउस, वरली, मुंबई 400 018

इस अंक के प्रकाशन में राजभाषा विभाग, केन्द्रीय कार्यालय, भारतीय रिज़र्व बैंक की सहायक महाप्रबंधक (राजभाषा) श्रीमती सावित्री सिंह, प्रबंधक (राजभाषा) श्री के. पी. तिवारी एवं सहायक प्रबंधक (राजभाषा) श्री पंढरीनाथ का सहयोग प्राप्त हुआ।

पंजीकरण संख्या - 47043/88

## भूसम्पदा की बढ़ती कीमतें

## भूसम्पदा के मूल्यों में गिरावट